श्रीजानकीजी—'*सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा॥*' (३। ६। १)

श्रीनारदमुनि—'*सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए॥*' (३। ४५। १)

'*सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।*' (३। ४६)

तारा—'*उपजा ग्यान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर माँगी॥*' (४। ११। ६)

पुरवासी—'*सुनत सुधा सम बचन राम के। गहे सबन्हि पद कृपा धाम के॥*''''''''' (७। ४७। १)

भरतादि भाई—'*श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई॥ करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हिय हरष अपारा॥*' (७। ४२। १-२)

गरुड़जी—'*मैं कृतकृत्य भयउँ तब बानी।''''''''मो कहँ नाथ बिबिध सुख दए॥ मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदउँ तव पद बारहिं बारा॥''''जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहइ बिहंगबर॥*'

'*तासु चरन सिरु नाइ करि प्रेम सहित मतिधीर॥ गएउ*''''''''' (गरुड़० ७। १२५)

पु० रा० कु०—१ (क) '**सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषो ह्रीः क्षमार्जवम्। ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः॥**' (महाभारत) अर्थात् सत्य, दम, तप, शौच, सन्तोष, लज्जा, क्षमा, कोमलता, ज्ञान, शम (शान्ति), दया और दान, ये (सब जो रूपकमें कहे गये हैं) सनातन धर्म हैं। (ख) '*बंदि चरन*' उपक्रम और '*गहे पदकंज*' उपसंहार है।

वि० त्रि०—१ (क) '*सुनि प्रभु बचन बिभीषन*''''''''' इति। '*देखि बिभीषन भएउ अधीरा।*' उन्हीं विभीषणका सन्देह प्रभुके वचन सुनते ही नष्ट हो गया। ☞संग्रामके समय जब कि जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित होता है, मानुषी प्रकृति कृत्रिम आडम्बरको छोड़ अपने यथार्थरूपमें आ जाती है और वही उपदेशका यथार्थ समय है। (ख) '*प्रभु बचन*' का भाव कि वे '**कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ**' हैं। अतः संग्राम-जयके साधन तथा सिद्धिका निश्चय उनको ही हो सकता है। ये संग्राममें जीत-हारको समान माननेका उपदेश नहीं देते, परन्तु ऐसी विधिका उपदेश देते हैं, जिससे पराजय हो ही नहीं सकती।

वि० त्रि०—२ '*गहे पदकंज*'—यह सफलताका सूचक है। यथा—'*रिपुदल धरषि हरषि हिय बालितनय बलपुंज। पुलक सरीर नयन जल गहे रामपद कंज॥*' (३४) ['*गहे पद*' का भाव कि अब इन्हें न छोड़ूँगा, मेरे भवसागर पार होनेका 'अवलम्ब' आपका चरण ही है और कोई साधन मुझसे कब सध सकता है। (बं० पा०)]

वि० त्रि०—३ '*एहि मिस*''''''''*।*' —रावणके विजयकी विधि बतलानेके मिषसे मुझे उपदेश दिया। संसार-सागरसे तरनेका यथार्थ उपाय बतलाया, सो भी दूसरे ब्याजसे, क्योंकि सरकार '*कृपा सुखपुंज*' हैं, बिना कहे ही दुःख दूर करते हैं। ब्याजसे उपदेशका दूसरा भाव यह है कि पहले विभीषण कह चुके हैं कि '*उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभु पद प्रीति सरित सो बही॥*' फिर भी इन्हें रावणके विजयकी चिन्ता है, अपने परलोककी नहीं।

*सिंहावलोकन वा दिग्दर्शन *

१—प्राकृत शत्रुके लिये प्राकृत रथ	अजय संसार-शत्रुके लिये धर्म-रथ
२-रथमें पहिये दो	यहाँ शौर्य और धैर्य
(क) पहियोंसे रथ चलता है (रा० कु०)	शूरता—धीरतासे धर्म रहता है,—'*कोटि बिघ्न ते संत''''जिमि नीति न त्याग।*'
(ख) पहियोंके पीछे हटनेसे वीरतामें न्यूनता आती है। (जा० दा०)	शौर्य—धैर्य छूटनेसे धर्मरथारूढ़ पुरुषकी न्यूनता।
३ (क) ध्वजा-पताकासे जय और उनके गिरनेसे पराजय सूचित होती है	सत्य-शीलहीन होनेसे संसार-रिपुसे पराजय।
(ख) ध्वजासे रथ लक्षित होता है। और पताकासे जय। (रा० कु०)	सत्यसे धर्म लक्षित होता है, यह सर्व-धर्म-श्रेष्ठ है—'*सत्य मूल सब सुकृत सुहाए।*'

(ग) ध्वजा-पताका सबसे ऊँचे रहते हैं। —(जा० दा०)।	सत्य और शील सब गुणोंमें श्रेष्ठ और शिरोमणि हैं और दोनों मुख और नेत्रोंद्वारा प्रकट होते हैं।
४—रथमें कम-से-कम चार घोड़े जुड़े रहते हैं।	बल, विवेक, दम और परहित धर्ममय रथमें जुड़े हैं, यही उसे खींचते हैं।
५—बागडोरसे वह घोड़े काबूमें रखे जाते हैं।	क्षमा, दया और समता तीनों रस्सियोंसे ये जुड़े हैं। भाव कि क्षमा, दया और समताद्वारा बल, विवेक, दम और परहितपर काबू रहता है।
६—प्राकृत रथको चतुर सारथी चलाता है	धर्म-रथको ईशका भजन चलाता है।
७—रथीके पास ढाल-कृपाण, परशु, प्रचंड शक्ति, कठिन कोदण्ड, तरकश, नाना प्रकारके बाण और अभेद्य कवच होते हैं।	यहाँ वैराग्य, सन्तोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठ विज्ञान, निर्मल और दृढ़ मन, शम, यम, नियम और विप्र गुरुपूजा हैं।

☞ अध्यात्म तथा वाल्मीकि रामायणोंमें यह वर्णन नहीं है। इस वर्णनमें महाभारतके गीतोपदेशके प्रसङ्गकी छटा है। वहाँ अर्जुनको मोह हुआ था। इसलिये श्रीकृष्णजीने उन्हें सखा-भावसे उपदेश किया। यहाँ सखा विभीषणको मोह हुआ; उन्हें श्रीरामजीने भी सखाभावसे धर्मोपदेश किया।—'*एहि बिधि मोहि उपदेसेहु।*' इस वाक्यसे गुसाईंजीने विभीषणकी ओरसे श्रीरामजीका गुरूपदेश निर्दिष्ट किया। श्रीरामजीके धर्मोपदेशमें गीताके तेरहवें अध्यायके '**अमानित्वमदंभित्वम्**' इत्यादिकी जैसी छटा दिखायी देती है, वैसी ही भा० स्कं० ७ अ० ११ नारदोक्त राज्य-धर्मकी भी छटा दिखायी देती है।

चाहे कुछ भी हो, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस रूपकमेंका धर्म प्रवृत्ति-लक्षण-धर्म न होनेके कारण सर्वसामान्य धर्म नहीं कहा जा सकता। इसे निवृत्ति-लक्षणधर्म समझना चाहिये और ऐसा जान पड़ता है कि वह विभीषणको उपदेश करनेके लिये ही कहा गया है। यदि वह वर्णाश्रम धर्म रहता तो हम उसे (प्रवृत्ति) धर्म कहते। गीताके '**एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तम्**' कथनानुसार हम भी उसे वैसा ही, यानी निवृत्ति-धर्म कहते हैं।—(मानस-हंस)

वे० भू०—अनेक लोग महाभारतकी गीता और मानसकी इस गीता-(धर्मरथ-) की समानता देते हुए दोनोंका सर्वांशिक मिलान भी करते हैं। परन्तु मेरी समझसे दोनोंकी तुलना नहीं हो सकती। यह ठीक है कि भारतीय गीता सात सौ श्लोकोंकी होनेसे उसमें अनेक प्रकारके कर्म, ज्ञान, उपासना, भक्ति, प्रपत्ति, शरणागति आदि जालको बड़ी सुन्दरतासे बुना गया है। और यह भी ठीक है कि रामायण और महाभारत दोनोंमें मध्य समरभूमिमें ही अपने-अपने सखा भक्तोंको स्वयं भगवान्ने ही श्रीमुखसे परम ज्ञानका उपदेश दिया है, इसी तरह दोनों उपदेशके सिद्धान्तोंमें भी रूपकके अतिरिक्त कोई विशेष अन्तर नहीं है। परन्तु जो अन्तर है, वह सबसे महान् है और विचार करनेपर खटकने लगता है कि लङ्का-युद्धमें विभीषणको केवल रथ लेकर ही मोह हुआ था। इससे रथ-वर्णनके ही बहानेसे अध्यात्मज्ञानका उपदेश हुआ परन्तु भारतीय युद्धोंमें अर्जुनने मुख्य सन्देह यही किया था कि युद्धमें जनसंहार एवं कुलक्षय होना ही है। कुलक्षय होनेपर सनातन कुलधर्म नष्ट हो जायगा। सबसे बड़ा दोष यह होगा कि वीर युवकोंके संहार हो जानेसे कुलयुवतियाँ दूषित हो जायँगी। जिससे वर्णसंकर सन्तान पैदा होने लगेंगी। यथा—'**कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।**' से '**नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम॥**' तक (गीता १। ४०, ४४)

अर्जुनकी इस मुख्य शङ्काका समाधान भगवान्ने कहीं नहीं किया, वरन्—'**अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे॥**' (२। ११) इन शब्दोंसे फटकारते हुए बहुत ज्ञानोपदेश दिया तथा अर्जुनकी अन्य बहुत-सी शङ्काओंका समाधान भी किया परन्तु इस मुख्य शङ्काका कोई समाधान नहीं किया। उलटे उसे डाँट दिया कि यदि तुम सीधे युद्ध नहीं करोगे तो मेरी प्रकृति (शक्ति) तुम्हें बलात् युद्धमें लगा देगी। '**प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति**' और विराट्रूप दिखाकर अपनी प्रकृतिके बलकी धाक भी अर्जुनके हृदयमें बैठा दी। हो सकता

है कि बहुत लम्बे-चौड़े ज्ञानगाथाके सुनते-सुनते अर्जुनको अपनी शङ्का ही भूल गयी हो अथवा अर्जुनने डरसे कबूलकर लिया हो कि—'**नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत**॥' (१८। ७३) और जो आपकी प्रकृति बलात् ही करा लेगी तो फिर आप जबरदस्ती क्यों करेंगे, मैं ही '**करिष्ये वचनं तव**।'

परन्तु यहाँ तनपदत्राण और रथ लेकर विभीषणकी शङ्का थी, अतः श्रीरामजीने केवल रथके सम्बन्धमें ही कहा। रथके ही वर्णनमें अग्रत्राणका भी स्पष्ट वर्णन कर दिया, परन्तु इधर-उधरकी बहुत-सी बातें कहकर विभीषणका प्रश्न गोल नहीं कर दिया और डाँट भी नहीं बतायी।

यही रामायणी धर्मरथ और भारतीय भगवद्गीताका स्थूल अन्तर है।

नोट—३ भगवान्‌का उपदेश नित्य और सत्य होता है। आज भी इसी धर्मरथपर आरूढ़ हो वर्तमान जगत्‌के पुरुषोत्तम महात्मा गाँधी संसारकी सबसे बड़ी शक्तिसे, जिसे वह रावणराज्य कहते हैं, महासमर कर रहे हैं और पार्थिव हथियारोंका सर्वथा त्याग कर रखा है (प्र० सं०)। जय भी प्राप्त हो ही गयी।

श्रीरामगीता—धर्मरथ-प्रकरण समाप्त हुआ।

दो०—उत पचार दसकंधर* इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन॥ ७९॥

शब्दार्थ—**पचार** (प्रचार)=ललकारता। **आन**=शपथ, दुहाई।

अर्थ—उधरसे रावण ललकारता था और इधरसे अङ्गद और हनुमान्‌जी ललकारते थे। निशिचर और रीछ-बन्दर अपने-अपने स्वामीकी दोहाई कर-करके लड़ रहे हैं॥ ७९॥

प० प० प्र०—१ (क) *'भिरे बीर इत राम हित उत रावनहिं बखानि॥'* (७८) पर युद्धका प्रसङ्ग छोड़ा था, वह *'उत पचार दसकंधर'*……'से फिरसे उठाया। (ख) दोहा ७८ में *'इत उत'* है और यहाँ *'उत इत।'* यह सहेतुक है। भाव यह है कि श्रीरामजीका प्रतापादि सुनकर वानर वीर रावण-वाहिनीपर टूट पड़े, तब उधर निशाचरोंको रावण प्रेरणा देने लगा। यह देखकर इधर अङ्गद और हनुमान् वानरसेनाका उत्साह बढ़ाने लगे। (ग) *'निसाचर'* शब्दको प्राधान्य देकर जनाया कि वे विशेष जोशमें आकर लड़ रहे हैं।

नोट—☞ यहाँ अङ्गद-हनुमान् और रावणकी बराबरी दिखायी। मिलान कीजिये—*'उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई॥'* (४०। ७), *'रजनीचर मत्तगयंद घटा बिघटै मृगराज के साज लरै। झपटै भट कोटि मही पटकै गरजै रघुबीर की सौंह करै॥ तुलसी उत हाँक दसानन देत अचेत भे बीर को धीर धरै। बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत जो कालहु काल सो बूझि परै॥'* (क० ३६)

बं० पा०—रावणकी जोड़में अङ्गद-हनुमान्‌को कहा, श्रीरामचन्द्रजीको नहीं। इसका कारण यह है कि श्रीरामजी अभी वहाँसे दूर थे।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥ १॥
हमहूँ उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरंगा॥ २॥

अर्थ—ब्रह्मादि सब देवता और अनेक सिद्ध एवं मुनि विमानोंपर चढ़े हुए आकाशसे युद्ध देख रहे हैं॥ १॥ (शिवजी कहते हैं) हे उमा! हम भी उन सबोंके साथ थे और श्रीरामचन्द्रजीके रणोत्साहका चरित देखते थे॥ २॥

पं०—१ *'सुर ब्रह्मादि'* मेघनाद-युद्धतक रणभूमिमें रण देखने पहले कभी न आये थे, अब राम-रावण युद्धमें प्रथमसे इनका आगमन कवि बता रहे हैं। पूर्व न आनेका कारण कि—(क) ऐसा युद्ध पहले कभी न हुआ था जैसा अब होनेको है। राम-रावण-युद्ध अप्रतिम हुआ है, इसकी उपमा यही है, दूसरा नहीं। यथा—'**गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम्। गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमम्॥**

* दसकंठ भट—(का०)।

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव। एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम्॥' (वाल्मी० ११०। २३-२४, च० सं०) वा, (ख) जबतक मेघनाद जीवित था तबतक देवताओंको बड़ा भय था कि 'हमको देखकर रावण कहीं हमें पीड़ित करनेके लिये उसे न भेज दे। अब वह अकेला हो गया। इससे डर कम है क्योंकि अब अकेला वह कहाँ-कहाँ दौड़ेगा। वा, (ग) अब रावणका मरण-काल समझकर आये।'

पं०—२ '*हमहू उमा रहे तेहि संगा।*' (क) 'उमा सम्बोधनसे शिवपार्वती-संवाद जनाकर सूचित किया कि भगवान् शङ्कर उन्हें जनाते हैं कि तुम सतीरूपमें उस समय कैलासमें थीं, हम तुम्हारा त्याग कर चुके थे, इससे हम अकेले आये थे, तुम साथ न थीं। (ख) अन्य कल्पोंकी कथामें इसका भाव यह लेंगे कि शिवजी उन्हें सावधान करते हैं कि हम और तुम दोनों ही वहाँ थे, तुम्हें याद होगा।

एक शङ्का यहाँ लोग यह करते हैं कि शिवजीने तो वनवासके समय दण्डकवनमें प्रभुके दर्शन किये थे। उसके बाद तो ८७ हजार वर्षकी समाधि लगी थी तब राम-रावण-युद्धमें एवं युद्धके अन्तमें कैसे आये? इसका समाधान पूर्व किया जा चुका है। यहाँ भी संक्षेपसे लिखा जाता है।

शिवजी ईश्वरकोटिमें हैं। वे एक ही समयमें जितने रूप चाहें, धारण कर सकते हैं। लीलाविभूतिमें शामिल होकर वे समाधिस्थ हुए और ऐश्वर्यरूपसे वे सर्वत्र उसी समय कार्य कर रहे हैं। ऐसा न हो तो वे संहारके देवता हैं, संहारका काम ही बन्द हो जाय। इसी प्रकार श्रीहनुमान्‌जी एक रूपसे सदा श्रीरामजीकी सेवामें रहते हैं और दूसरे रूपोंसे जहाँ-जहाँ रामचरित होता है, वहाँ भी रहते हैं।

दूसरा समाधान इस प्रकार लोग करते हैं कि मानसमें कई कल्पोंकी कथा है, जिस कल्पमें समाधि लगी थी, उस कल्पमें युद्धके समय न थे, अन्य कल्पोंमें थे। स्मरण रहे कि ऋषि, सिद्ध, देवगण आदिमें एक ही समयमें अनेक रूप धारण करनेकी शक्ति है। (ग) '*रहे तेहि संगा*' से शङ्करजी गौण हुए और सब देवता प्रधान हुए। यह शिष्ट पुरुषोंकी रीति है। मिलान कीजिये—'*तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ।*'

नोट—सुर ब्रह्मादिके विषयमें कहा कि '*देखत रन नभ चढ़े बिमाना*' और अपने लिये कहते हैं कि—'*देखत रामचरित रनरंगा।*' इस भेदमें आशय यह है कि वे सब रण देखते थे और हम प्रभुके समररसके चरित देखते थे कि प्रभु रणमें क्रोधादिका कैसा-कैसा अभिनय (नरनाट्य) करते हैं।

भगवान् शङ्कर प्रभुके चरित ही देखते हैं; ऊपरी बातोंपर उनका ध्यान नहीं आकर्षित होने पाता। आप बाल, विवाह, रण और राज्यादि सभी लीलाओंके ज्ञाता हैं, लीलारसिक हैं, सब चरित आपने देखे हैं, यथा—(१) '*देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे॥ चितवहिं चकित बिचित्र बिताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥*'.......*बिधिहि भएउ आचरजु बिसेषी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी॥*' यह तो ब्रह्मादिक देवताओंका हाल था और उसी समय—'*रामरूप नखसिख सुभग बारहिं बार निहारि। पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि॥*' (१। ३१५), (२) '*संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिय अति हरष बिसेषा॥ भरि लोचन छबि सिंधु निहारी। कुसमय जानि न कीन्ह चिन्हारी॥*' (१। ५०), (३) '*कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानइ नहिं कोऊ॥ परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥*' (१। १९६), (४) '*वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस। बरनइ सादर सेष श्रुति सो रस जान महेस॥*' (७। १२), (५) '*पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता*' (वनमें देखकर) इत्यादि।

इन प्रसङ्गोंसे स्पष्ट है कि शिवजी प्रभुके जन्म, बाल, विवाह, रण और राज्याभिषेक सभी अवसरोंपर प्रभुके रूप और चरित ही देखा करते थे। ये अन्य देवताओंकी तरह प्रभुको छोड़ इधर-उधर अपनी दृष्टि और ध्यान नहीं ले जाते और नाम तो सदा ही स्मरण करते रहते हैं।

रा० प्र०—शिवजी रणके देवता हैं, अतः देखते हैं कि कैसा रणरङ्ग होगा। रामेश्वर-प्रतिष्ठा-समय रा० प० में इसका इशारा कर चुके हैं।

प० प० प्र०—कविके हृदयमें भी यहाँ (दोहा ७८) से वीररस व्याप्त है। यहाँसे लेकर रावणवधतक प्रत्येक दोहेपर छन्द आया है। केवल धर्मरथवर्णनमें छन्द नहीं है, क्योंकि वहाँ शान्तरस प्रधान है। मानसनिर्माताके

तीनों उपास्य (श्रीराम, श्रीहनुमान् और श्रीशङ्कर) रणभूमिमें उपस्थित हैं; इससे भी उत्साह बढ़ा। उसका रूपान्तर भयानक, रौद्र, अद्भुत और बीभत्सादि रसोंमें यथासम्भव होता है और अन्तमें दोहा १०३ से आगे शान्त और भक्तिरसमें परिणत होता है। रसका विशेष परिपाक करनेके लिये ही छन्दोंका प्रयोग हुआ है।

सुभट समररस दुहुँ दिसि माते। कपि जयसील रामबल ताते॥ ३॥
एक एक सन भिरहिं पचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥ ४॥

शब्दार्थ—समररस=वीररस। यथा—*'एतना कहत नीतिरस भूला। रनरस बिटप पुलक मिस फूला……… ॥' 'उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहुँ बीररस सोवत जागा॥'* (२। २२९। ५, २। २३०। १) माते=मतवाले थे।

अर्थ—दोनों ओरके योद्धा वीररसमें मतवाले थे। वानरोंको श्रीरामजीका बल है इससे वे जयशील हैं॥ ३॥ एक-एकसे भिड़ते और ललकारते हैं और एक-एक-(दूसरे-) को मर्दन करके पृथ्वीपर डाल देते हैं॥ ४॥

नोट—१ (क) ऊपर दोहा ७८ में 'राम-रावण-दलका युद्धारम्भ' कहकर 'धर्मरथ'-प्रसङ्ग कहने लगे थे। दोहा ७९ से फिर पूर्व प्रसङ्गको उठाया। पूर्व कहा था कि *'भिरे बीर इत रामहित उत रावनहिं बखानि'* और यहाँ कहा कि *'लरत निसाचर भालु कपि करि निज निज प्रभु आन।'* प्रसङ्गको इस तरह मिलाकर देवतादिका रण देखना कहकर अब युद्धका वर्णन करते हैं। (ख) दोहा ७८ में कहा था कि *'दुहुँ दिसि जयजयकार करि निज निज जोरी जानि भिरे।'* और यहाँ कहते हैं कि *'एक एक सन भिरहिं पचारहिं'* इस प्रकार *'एक एक सन'* से जोड़ियोंका परस्पर युद्ध जनाया। मेघनाद-लक्ष्मण-प्रथम-युद्धमें भी जोड़ी-जोड़ीका युद्ध कहा था, यथा—*'भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जय इच्छा नहिं थोरी॥'* (५२। ४) (ग) *'भिरहिं पचारहिं'* के भाव दोहा ४५ (६) *'दोउ दल प्रबल पचारि पचारी। लरत सुभट नहिं मानहिं हारी॥'* और *'कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं।'* (५२। ५) में देखिये। भाव कि परस्पर एक-दूसरेसे लड़ते हैं, एक-दूसरेको मारते हैं, पर हार कोई नहीं मानते। छूटनेपर एक-दूसरेको ललकारकर फिर भिड़ते हैं; इस तरह परस्पर बराबरका युद्ध जनाया। पुनः *'पचारहिं'* का दूसरा भाव कि कोई भागता है तो उसे ललकारते हैं, यथा प्रथम युद्धमें *'झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं।'* (४० छंद) रा० प्र० का मत है कि पहले एक-एकसे भिड़ते हैं और उसको मार भगाते हैं तब दूसरेको ललकारते हैं। (घ) *'एकन्ह एक मर्दि………।'* अर्थात् अपने शरीरसे रगड़ डालते हैं, यथा—*'कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा।'* (६६। ३), *'गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा'*—(सुं० १९)। वा दोनों हाथोंसे मसल देते हैं, यथा—*'लागे मरदइ भुजबल भारी।'* (४३। ७)

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥ ५॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं *। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं †॥ ६॥

अर्थ—वे मारते, काटते, पकड़ते और पछाड़ते हैं तथा सिर तोड़कर (=धड़से अलग करके) उन्हीं सिरोंसे औरोंको मारते हैं॥ ५॥ पेट फाड़ डालते हैं, भुजाएँ उखाड़ते हैं और योद्धाओंको पैर पकड़कर पृथ्वीपर पटककर डाल देते हैं॥ ६॥

नोट—१ (क) ऊपर जो ७८ छंदमें कहा था कि *'नख दसन सयल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं'* उसीका यहाँ चरितार्थ है। पर्वत, वृक्ष और घूँसोंसे *'मारहिं'* दशनोंसे *'काटहिं'* भुजाओंसे *'धरहिं पछारहिं'* *'सीस तोरि मारहिं'* *'भुजा उपारहिं'* और नखोंसे *'उदर बिदारहिं।'* (ख) *'सीस तोरि।'* यह अङ्गद और हनुमान्‌जीसे सीखा है, उनको प्रथम युद्धमें सिर धड़से अलग करते देखा है, यथा—*'एक एक सों मर्दहिं तोरि चलावहिं मुंड।'* (४३) पूर्व देखा है वही अब स्वयं करते हैं। (ग) *'पटकि भट डारहिं'* के दो अर्थ हो सकते हैं। (१)—योद्धाओंको पटक देते थे। (२)—योद्धाओंको पृथ्वीपर पटककर समुद्रमें डाल देते हैं, यथा—*'गहि*

* उपाटहिं † डाटहिं—(का०)।

पंद डारहि सागर माहीं। मकर उरग झष धरि धरि खाहीं॥' (४६। ८)

निसिचर भट महि गाड़हिं भालू। ऊपर ढारि* देहिं बहु बालू॥७॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥८॥

शब्दार्थ—ढारना=ऊपरसे गिराना, छोड़ना वा डालना। विरुद्ध=(१) विपरीत (२) घिरे हुए (३) विरोध भावको प्राप्त।

अर्थ—निशाचर योद्धाओंको भालू पृथ्वीमें गाड़ देते हैं और ऊपरसे बहुत-सी बालू डाल देते हैं॥७॥ युद्धमें विरोध भावको प्राप्त [वा घिरे हुए—(गौड़जी)] वीर वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो बहुत-से मूर्तिमान् क्रोधित काल ही हों॥ ८॥

पं०—*'महि गाड़हिं'* अर्थात् निशिचरोंको जीता ही गाड़ देते हैं॥

वि० त्रि०—जो-जो अन्याय राक्षसोंने किया था, सबका बदला हनुमान्‌जीने चुकाया। जैसे—*'जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आग लगावहिं'*॥ इसके बदलेमें हनुमान्‌जीने लङ्का जलायी (यथा—*'उलटि पलटि लंका कपि जारी'*)। *'चलत दसानन डोलत अवनी। गरजत गर्भ स्त्रवहिं सुर रवनी॥'* इसके बदलेमें उसी भाँति हनुमान्‌जीके गर्जनेपर निशाचरियोंका गर्भ गिरा (यथा—*'चलत महा धुनि गरजेसि भारी। गर्भ स्त्रवहिं सुनि निसिचर नारी॥'* पर *'निशिचर निकर सकल मुनि खाए'* का बदला हनुमान्‌जी नहीं चुका सके। इसे भालू चुका रहे हैं। उन्हें पृथ्वीमें गाड़कर ऊपर बालूके ढेरका निशान बना देते हैं; जिसमें दूसरे दिन कलेवाके लिये उन्हें ढूँढ़ना न पड़े।

गौड़जी—(१) विरुद्ध युद्धसे अभिप्राय विपरीत युद्ध है अर्थात् दुर्बलोंका सबलोंपर प्रबल होना। बलीमुख वानर हैं जो राक्षसोंके भोजन हैं; परन्तु इस समय विपरीत युद्ध है, बलीमुख (वानर) वीर हैं और एक-एक कालकी तरह क्रुद्ध हैं। मिलान कीजिये *'जुद्ध बिरुद्ध क्रुद्ध दोउ बंदर'*। दोनों वानर हैं तो राक्षसोंके भक्ष्य, परन्तु विपरीत अवस्था है, रामप्रताप स्मरण करके प्रबल हो गये हैं। 'विरुद्ध' का दूसरा अर्थ है 'घिरे हुए'। तात्पर्य यह कि राक्षसोंसे घिरे होनेपर वानर क्रुद्ध हैं, एक-एक वीर कालके समान क्रुद्ध हैं, एक-एक वानर घेरनेवाले अनेक राक्षसोंका मुकाबला कर रहे हैं। दोहा ४३ (१) देखिये।

छंद—क्रुद्ध कृतांत समान कपि-तनु स्त्रवत सोनित राजहीं।
मर्दहिं निसाचर कटकु भट बलवंत घन जिमि गाजहीं॥
मारहिं चपेटन्हि डाँटि दाँतन्ह काटि लातन्ह मीजहीं।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहिं जेहि खल छीजहीं॥१॥

शब्दार्थ—कृतांत=यम—**'कृतान्तो यमुनाभ्राता शमनो यमराड् यमः।'** (अमरकोष)

अर्थ—कालके समान क्रोधको प्राप्त और खून बहते हुए शरीरोंसे वानर शोभित हो रहे हैं। वे बली योद्धा, बलवान् निशाचर सेनाके योद्धाओंको मर्दन करते और मेघके समान गरजते हैं। चपेटोंसे मारते हैं, फिर डाँटकर दाँतोंसे काटकर लातोंसे मसल देते हैं। वानर-भालु चिंघाड़ते हैं और इस प्रकार छलबल करते हैं जिससे दुष्टोंका नाश हो॥ १॥

नोट—१ *'राजहीं'* का भाव कि रणमें इनसे शोभा होती है, अन्य अवसरोंपर रक्तका बहना शोभित नहीं होता, वरन् वीभत्स देख पड़ता है। *'राजहीं'* से जनाया कि ऐसे दिखते हैं मानो टेसू फूला हो, यथा—*'घायल बीर बिराजहिं कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥'* (५३। १)

नोट—२ *'मर्दहिं निसाचर''''''घन जिमि गाजहीं।'* इससे जनाया कि पहले मर्दन करते हैं तब जय होनेपर गरजते हैं। यह गर्जन जय और ललकारका है, यथा—**'गरजहिं भालु बलीमुख रिपुदल बल बिचलाइ॥'** (४६)

* डारि।

विशेष *'सिंहनाद करि गर्जा मेघनाद बलबीर॥'* (४९) में देखिये।

नोट—३ *'चिक्करहिं'* पदसे जनाया कि गजराजकी तरह चिंघाड़ते वा गर्जते हैं। यह भी आनन्द सूचित करता है।

'छलबल करहिं..........'

मेघनादने छलबल किया। तब तो कहा था कि *'निसिचर छलबल करइ अनीती॥'* (५३। ३) अब वानर छलबल करते हैं पर इसे कवि अनीति नहीं कह रहे हैं, यह क्यों? उत्तर—यहाँ छलसे कपटका तात्पर्य नहीं है, वरन् बुद्धिबल अभिप्रेत है। यथा—*'सो मति मोरि भरत महिमाही। कहँ काह छलि छुअसि न छाँही॥'* (२। २८८। ५) और बलसे शारीरिक बल अभिप्रेत है॥ दोहा ५३। (३) देखिये।

२ गौड़जी—*'निसिचर छलबल करई अनीती'* में यह भाव है कि निशाचर छल और बल दोनोंसे वा छलके बलसे अनीति करता है। यहाँ छलद्वारा बल अथवा छल और बल दोनों इसलिये करते हैं कि जिसमें खलोंका क्षय हो। खलक्षय अनीति नहीं है।

३ रा० प्र०—यहाँ छलसे वह छल अभिप्रेत है जो वीरोंमें विहित है। यथा—*'बहु छल बल सुग्रीव करि हिय हारा भय मानि॥'* (४। ८) भाव यह कि उनके अस्त्र-शस्त्रादिकी चोटको युक्तिसे बचा जाते हैं, उनके वार खाली कर देते हैं और प्रशंसा करके उनको भुलावेमें डालकर उन्हें मार देते हैं।

छंद—धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलहीं।
प्रहलादपति जनु बिबिध तनु धरि समर अंगन खेलहीं॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥२॥

शब्दार्थ—**अँतावरि** (अन्त्रावली)=आँतोंका समूह, अँतड़ी। **मेलना**=डालना, यथा—*'सिय जयमाल राम उर मेली॥'* (१। २६४। ८) *'पदसरोज मेले दोउ भाई॥'* (१। २६९) **बिदारना** (विदारण)=चीरना, फाड़ना।

अर्थ—वे गाल पकड़कर फाड़ते हैं, कलेजा चीरते हैं और उनकी आँतें (निकालकर) अपने गलेमें डाल लेते हैं। वे वानर ऐसे देख पड़ते हैं मानो प्रह्लादजीके स्वामी नृसिंहजी अनेक देह धारणकर रणाङ्गणमें खेल रहे हैं। 'पकड़ो, मारो, काटो, पछाड़ो' यह भयंकर शब्द आकाश और पृथ्वीपर भर रहा है। श्रीरामचन्द्रजीकी जय हो कि जो सत्य ही तिनकेको वज्र और वज्रको तिनका कर देते हैं॥ २॥

बं० पा०—*'धरि गाल फारहिं.......'* इति। गाल और उरके फाड़नेका भाव कि इन मुखोंसे तुमने गऊ और ब्राह्मणोंको भक्षण किया और इन पेटोंको भरा है।

पु० रा० कु०—*'प्रहलादपति जनु.......'* इति। यहाँ नृसिंहावतारकी उपमा देकर भालुवानरोंकी शूरता नृसिंहजीसे अधिक दिखायी। इस उत्प्रेक्षासे वानरोंकी प्रबलता कही।

नोट—१ (क) यहाँ नृसिंहजीकी उपमा इससे दी कि नृसिंहजीने भी नखोंसे ही हिरण्यकशिपुका हृदय फाड़ा था और उसकी अँतड़ियाँ निकालकर पहन ली थीं, वे भी क्रोधके कारण दुष्प्रेक्ष्य थे। यथा **'द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाहिं गरुडो महाविषम्॥ संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन् स्वजिह्वया। असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः॥'** (२९-३०) अर्थात् द्वारपर उसको गिराकर नखोंसे खेलसदृश उसको चीर डाला जैसे गरुड़जी महाविषैले सर्पको सहज ही चीर डालते हैं। युद्धमें दुष्प्रेक्ष्य हैं, कराल नेत्रवाले, मुँह फैलाये हुए, जिह्वासे भौहोंको चाटते हैं। जैसे हाथीको मारकर सिंह शोभित हो वैसे ही दैत्यराजकी आँतोंकी माला गलेमें पहिने नृसिंहजीकी शोभा हुई, (भा० ७। ८)। और, यहाँ वानर भी '**क्रुद्धे कृतांत सम**' हैं। नखोंसे हृदयको विदीर्ण करके अन्त्रावलीको मालाकी तरह गलेमें डाले हैं। (ख) प्रत्येक राक्षसके साथ एक-एक वानर ऐसा कर रहा है। अपार सेना है, अतएव अनेक नृसिंहका रणभूमिमें खेलना कहा। एक-एक वानर एक-एक नृसिंह हैं। नृसिंह एक ही हुए थे

और यहाँ वानर अगणित हैं; अतः नृसिंहजीका अगणित तन धरना कहा। *'खेलहीं'* पदका भाव कि वानर सहजहीमें निशिचरोंकी यह दशा कर रहे हैं जैसे नृसिंहजीने हिरण्यकशिपुकी की थी।

नोट—२ *'जय राम जो तृन ते कुलिस·········'* इति। रावण वानरों और मनुष्योंको तृणवत् तुच्छ समझता था, इसीसे उसने इन दोको छोड़ और सबसे अमरत्वका वर माँगा था। यथा—'**नहि चिन्ता ममान्येषु प्राणिष्वमरपूजितः। तृणभूता हि ते मन्ये प्राणिनो मानुषादयः॥**' (वाल्मी० ७। १०। २०) अर्थात् हे देवपूजित ब्रह्माजी! हमको अन्य प्राणियोंकी कोई चिन्ता नहीं। मनुष्यादिको तो हम तृणवत् समझते हैं।* निशिचर वानर-भालुको तो आहार ही जानते थे—*'बानर भालु अहार हमारा', 'आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे॥'* इत्यादि। आज वे ही तृणवत् वानर-भालु वज्रवत् होकर राक्षसोंका नाश कर रहे हैं और वे राक्षस जो बड़े-बड़े देवताओंको कुछ न समझते थे वे आज वज्रसे मानो तृणवत् हो गये।—यह सब क्यों? प्रभुके प्रतापसे। अतएव वानर-भालु यह कहकर श्रीरामचन्द्रजीका जय-जयकार कर रहे हैं। पुनः *'जय राम·········'* ये शब्द वक्ताओंके भी हो सकते हैं। वानरोंकी अद्भुत करनी देखकर वे इन विशेषणोंसे प्रभुका जयजयकार करने लगे जैसे कि शिवजीने अङ्गद-चरण न टलनेपर कहा था। *'तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूतपन कहु किमि टरई॥'* (३४। ८) देखिये।

दो०—निज दल विचलत देखेसि† बीस भुजा दस चाप।
रथ चढ़ि चलेउ दसानन‡ फिरहु फिरहु करि दाप॥८०॥

शब्दार्थ—**विचलत**=तितर-बितर होते। **दाप**=क्रोध, यथा—*'सर संधान कीन्ह करि दापा'*। अहङ्कारके लिये किसीके प्रति कोप।

अर्थ—अपनी सेनाको विचलित होते हुए देखकर दशानन बीस भुजाओंमें दस धनुष लिये रथपर चढ़कर चला और गर्वित एवं क्रोधित होकर बोला कि लौटो-लौटो॥ ८०॥

नोट—१ *'दसानन'* पदका भाव कि क्रोधावेशमें दसों मुखोंसे सबको ललकारा।

नोट—२ रावणकी ललकार दोनोंको है। एक तो अपनी सेनाको ललकारा कि 'लौटो, भागो मत', क्योंकि वह मेघनाद-वधपर सबको सचेत कर चुका है कि रण-भूमिसे विमुख होनेमें भलाई नहीं और दूसरे, वानरोंको ललकारा—यह बात *'करि दाप'* से सूचित होती है।

करु०—रावणने क्रोधित हो सबको डाँटा कि तुम बड़े कायर हो, लौटो और खड़े होकर हमारा संग्राम देखो।

वि० त्रि०—जिस भाँति रणमदमत्त होकर कुम्भकर्णने दर्प किया था, (यथा—*रनमदमत्त निसाचर दर्पा*) उसी भाँति आज रावण दर्प कर रहा है। उसने पहले ही कहा था कि *'निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा। दैहौं उत्तर जो रिपु चढ़ि आवा॥'* सेनाके भरोसे नहीं वैर बढ़ाया, आवाज देता है कि लौटो, देखो मैं अकेला सबका संहार करता हूँ।'

भएउ× परम क्रुद्ध दसकंधर। सन्मुख चले हूह दै बंदर॥१॥
गहि कर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहि बारा॥२॥

अर्थ—दशकन्धर परम क्रोधित हुआ। वानर (हर्ष आनन्दसूचक) हूह शब्द करके उसके सन्मुख लड़नेको चले॥ १॥ हाथोंमें वृक्ष, पत्थर, पर्वत ले-लेकर उसपर एक साथ ही एकदम डाले॥ २॥

लागहिं सैल बज्र तन तासू। खंड खंड होइ फूटहिं आसू॥३॥
चला न अचल रहा卐 रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥४॥

---

* वीर—अनेक नृसिंहकी कल्पना अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है। वज्रका तृण और तृणका वज्र होना 'असम्भव' अलङ्कार है। वज्रवत् राक्षस तृणवत् हो गये और तृणवत् वानर वज्र बन गये, यह 'वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यंग' है।

† निज दल बिचल बिलोकि तेहि ‡ चलेउ दसानन कोपि तब। (का०)

× धाएउ—(का०)। 卐 महारथ—(का०)।

शब्दार्थ—**रण दुर्मद**=वीररसमें चूर, मत्त रण करनेवाला। (रा० प्र०)।

अर्थ—उसके वज्रसमान शरीरमें पर्वत लगते थे और शीघ्र फूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाते थे॥ ३॥ रणमें दुर्धर्ष अत्यन्त क्रोधी रावण विशाल रथको रोककर (जमाकर) अचल खड़ा रहा, हटा नहीं॥ ४॥

पां०—एक तो मद्य पान किये, दूसरे रणका मद, अतएव दुर्मद कहा।

इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ* लाग भएउ अति क्रोधा॥५॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥६॥

शब्दार्थ—दपटना=डाँटना, घुड़कना।

अर्थ—इधर-उधर झपटकर और दपटकर वह वानर योद्धाओंको मर्दन करने लगा। उसे अत्यंत क्रोध हुआ॥ ५॥ अनेक वानर-भालु भाग चले। 'हे अङ्गदजी! हे हनुमान्‌जी! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये'॥ ६॥

वीरकवि—जब रावणको निश्चय हो गया कि बन्दरोंकी मारसे मेरा कुछ बिगड़ नहीं सकता तब क्रुद्ध होकर वह रथसे कूद पड़ा और *'इत उत झपटि……।'*

नोट—*'त्राहि त्राहि अंगद……'* इति। रणमें मुख्य सहायक ये ही हैं। सङ्कट पड़नेपर कई बार इन्हींने सहायता की है। अतः इन्हींको पुकारा। प्रथम युद्धमें कईको पुकारा था पर सहायता इन्हींने आकर की थी। यथा—*'कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील दूबिद बलवंता॥'* (४२। २) तब *'निजदल बिकल सुना हनुमाना……गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा॥ कूदि लंक गढ़ ऊपर आवा॥'* (४२। ३—६) और यह सुनकर कि हनुमान्‌जी अकेले गये हैं *'रनबाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल।'* (४२) फिर उसी दिन जब अनिप और अकम्पनकी मायासे व्याकुल हो वानर *'जहँ तहँ करहिं पुकार।'* (४५) तब *'हनूमान अंगद रन गाजे। हाँक सुनत रजनीचर भाजे॥'* (४६। ६) पुनः इस युद्धमें रावणकी ललकार और प्रेरणाके उत्तरमें इधर ये ही दोनों ललकार रहे थे यथा—*'उत पचार दसकंधर इत अंगद हनुमान।'* (७९) अतः प्रथम इन्हींको पुकारा।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाँई। यह खल खाइ काल की नाँई॥७॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक संधाने॥८॥

अर्थ—हे रघुवीर! हे गोसाईं! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। यह दुष्ट कालके समान हमको खाये लेता है॥ ७॥ उसने देखा कि सभी वानर उसे देख भाग चले तब दसों धनुषोंपर उसने बाणोंका सन्धान किया॥ ८॥

नोट—१ प्रथम अङ्गद और हनुमान्‌जीको पुकारा। उनकी सहायता शीघ्र न मिलती देख रघुनाथजीकी शरण गये। अथवा, बहुत व्याकुल होनेसे उनको और इनको पुकारा। कुम्भकर्ण-युद्धसे मिलान कीजिये। उस युद्धमें श्रीरामजीको ही आर्त होकर पुकारा था।

कुम्भकर्ण (दोहा ६९)	रावण
'चले भागि कपिभालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥'	१ *'चले पराइ भालु कपि नाना।'*
'यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल-देस परन अब चहई॥'	२ *'यह खल खाइ काल की नाँई।'*
'कृपाबारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारति हारी॥'	३ *'पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं।'*, *'त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना।'*

नोट—२ *'रघुबीर गोसाँई'* का भाव कि आप पराक्रम वीर एवं इन्द्रियोंके स्वामी हैं। हमारी सब इन्द्रियाँ इसने दस-दस बाण चलाकर व्याकुल कर दी हैं। अतः शीघ्र रक्षा कीजिये। पुनः, गौ और पृथ्वीके आप स्वामी हैं, हम आपकी प्रजा हैं, आप स्वामी हैं। हम सेवक, हमारी रक्षा कीजिये।

नोट—३ *'काल की नाईं'* कहकर दुर्निवार जनाया।

* मर्दै—(भा० दा०)।

छंद—संधानि धनु सर निकर छाड़ेसि उरग जिमि उड़ि लागहीं।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागहीं॥
भयो अति कोलाहल बिकल कपि* दल भालु बोलहिं आतुरे।
रघुबीर करुनासिंधु आरतबंधु जनरक्षक हरे॥

अर्थ—धनुषपर बाण सन्धान (साध वा लगा) कर उसने बाणसमूह छोड़े जो साँपकी तरह उड़कर जा लगते थे। बाण पृथ्वी और आकाशमें, दिशा और विदिशाओंमें भरपूर छा रहे, वानर अब कहाँ भागकर जायँ? अत्यन्त खलबली मच गयी, कपि-भालु-सेना व्याकुल होकर (ये) आर्त्त वचन बोल रही है—'हे रघुवीर! हे करुणासागर! हे आर्त्त (दीन, दुखिया) जनोंके बन्धु (दुःख बटानेवाले भाई)! हे अपने भक्तोंकी रक्षा करनेवाले! हे दुःखोंके हरनेवाले!'

नोट—मेघनादने जो काम अन्तरिक्षमें होकर किया वह रावणने प्रत्यक्षमें किया। कपिदलने कुम्भकर्णसे पीड़ित होकर ऐसे ही आर्त्तवचन कहे थे। मिलान देखिये।—

मेघनाद (अन्तरिक्ष होकर)	रावण (प्रत्यक्ष)
'दस दिसि रहे बान नभ छाई॥ अवघट घाट बाट गिरिकंदर। मायाबल कीन्हेसि सरपंजर॥'	१ *'रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि'*
'जाहिं कहाँ भए ब्याकुल बंदर।'	२ *'कहँ कपि भागहीं'*
कुम्भकर्णसे	रावणसे
'कृपाबारिधर[१] राम[२] खरारी। पाहि पाहि प्रनतारतिहारी[३]॥'	१ *'रघुबीर[२] करुनासिंधु[१] आरतबंधु[३] जनरक्षक हरे।'*

टिप्पणी ☞१—कुम्भकर्णसे पीड़ित होनेपर चार विशेषण देकर रक्षा चाही और रावणसे रक्षाके लिये पाँच विशेषण दिये। इससे जनाया कि रावणने इन्हें कुम्भकर्णसे भी अधिक पीड़ित किया। जो-जो काम मेघनाद और कुम्भकर्ण दोनोंने पृथक्-पृथक् किये वे दोनों रावणमें एकत्र दिखाये हैं। मेघनादने सरपंजर बना दिये थे कि वानर भाग न सकें, वही रावणने किया। कुम्भकर्ण ***'महानाद करि गर्जा कोटि कोटि गहि कीस। महि पटकइ गजराज इव'***, रावणने यह तो किया ही—***'इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग. भएउ अति क्रोधा'***—और, साथ ही बाणोंको छोड़ा। अतएव अब अधिक आर्त्त हैं।

टिप्पणी—२ विशेषणोंमें भेद भी साभिप्राय है। (क)—कुम्भकर्ण जिनको पाता था पटकता था, सब मरते न थे, इससे वहाँ ***'दुकाल'***की उपमा दी थी। दुर्भिक्षमें सब एक साथ नहीं मर सकते। और यहाँ ***'काल'***की उपमा दी। कालसे कोई कहीं नहीं बच सकता, चाहे जहाँ जाय काल वहीं पकड़कर मारता है, वैसे ही रावणसे किसी ओर बचत नहीं देख पड़ी। (ख)—दुकाल वर्षासे मिटता है। इसलिये वहाँ ***'कृपाबारिधर'***कहा। यहाँ ***'काल'***से रक्षा चाहते हैं। इसलिये ***'रघुबीर'*** कहा, क्योंकि रघुवंशीमात्र कालसे नहीं डरते, यथा—***'कहाँ सुभाउ न कुलहि प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥', 'लरहिं सुखेन काल किन होऊ'*** (बा० २८४। ४, २); और आप तो ***'रघुबीर'*** हैं, आपसे तो काल भी डरता है, यही नहीं वरन् आप कालको भी मार सकते हैं, यथा—***'भुवनेस्वर कालहु कर काला।'*** (५। ३९। १), ***'उमा काल मरु जाकी इच्छा। सो प्रभु जन कर प्रीति परीछा॥'*** (१०१। ३) (ग) ***'आरतबंधु'***—आप आर्त्तके बन्धु हैं, बन्धु कुठाँवमें सहायक होते हैं, यथा—***'होहिं कुठायँ सुबंधु सहाए।'*** (२। ३०६। ८) हम आर्त्त हैं और इस समय कुठाँवमें हैं, बुरे फँस गये हैं। (घ)—***'जनरक्षक'***का भाव कि आपका प्रण है अपने जनकी रक्षा करना, यथा—***'जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाई॥'*** (५। ४४। ८) इसीसे तो बालिसे कहा था कि ***'मम भुजबल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥'*** (४। ९। १०) और हम आपके जन हैं। (ङ) ***'हरे'***का भाव कि ***'हरति क्लेशमिति हरिः'***। आप क्लेशके हरण करनेवाले हैं और हम क्लेशमें पड़े हैं।

☞कुम्भकर्ण-प्रसङ्गमें ***'कृपाबारिधर'*** कहा और यहाँ ***'करुनासिन्धु'***। कृपा और करुणामें भेद है। करुणामें

* दल कपि—(का)

दूसरेका दु:ख देखकर स्वयं पीड़ित होने और दु:ख शीघ्र हरण करनेके लिये उत्सुक होनेका भी भाव है। यथा—'*करुनामय रघुनाथ गोसाँई। बेगि पाइअहि पीर पराई॥*' (अ० ८५) वारिधरसे देरमें रक्षा होती है। अत: '*करुनासिन्धु*' सम्बोधन करके जनाया कि शीघ्र हमारी पीर हरिये। '*प्रणतारतिहारी*' '*आर्त्तबन्धु*' और'*जनरक्षक*' एक-से हैं फिर भी '*बन्धु*' शब्द अधिक गौरवका है।—विशेष ६९ (४-५) में देखिये।

दो०—निज * दल बिकल देखि कटि कसि निषंग धनु हाथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ राम पद माथ॥८१॥

अर्थ—अपनी सेनाको व्याकुल देख, कमरमें तरकश कसकर, हाथमें धनुष लेकर श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें माथा नवाकर लक्ष्मणजी क्रोधित होकर चले॥८१॥

नोट—१ यहाँ लक्ष्मणजीका आज्ञा माँगना नहीं लिखा गया यद्यपि पूर्व बराबर आज्ञा माँगकर या पाकर काम करना पाया जाता है। यथा—'*आयसु माँगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥*' (५१), '*जब रघुबीर दीन्हि अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन॥*'......'*रघुपति चरन नाइ सिर चले तुरंत अनंत।*' (७४) इसके दो कारण हो सकते हैं—एक तो यह कि पूर्व सर्वत्र आज्ञा मिलनेपर कार्य करना दिखाकर जना दिया कि यहाँ भी आज्ञा लेकर चले। दूसरे, वाल्मीकिमें भी दो बार शक्तिका प्रसङ्ग है। एक बार सर्ग ५९ में, दूसरी बार सर्ग ९९-१०० में। वहाँ एक बार (सर्ग ५९ में) लक्ष्मणजीका आज्ञा माँगकर जाना लिखा है और दूसरी बार राम-लक्ष्मण दोनोंका युद्धमें साथ जाना दिखाया है, यथा—'**लक्ष्मणेन सह भ्राता विष्णुना वासवं यथा।**' (वाल्मी० ९९। १२) इसीसे वहाँ आज्ञा लेना नहीं कहा है, केवल क्रोधपूर्वक क्रुद्ध हो आगे आकर युद्ध करना लिखा है, यथा—'**एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली। लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा॥**' (१००। १३) इसीसे पूज्य मानसकविने भी एक ठौर आज्ञा माँगकर चलना लिखा और दूसरी जगह न लिखा। इस तरह दोनों स्थलोंमें कविने शब्दोंके भेदमात्रसे वाल्मीकिका मत भी लक्षित कर दिया है। पुनः—

नोट—२ लक्ष्मणजी अपने द्वारा यह दिखा रहे हैं कि छोटे भाईको एवं सेवकको सङ्कटमें सदैव आगे रहना चाहिये—सेनाने आर्त्त होकर पुकारा '*रघुबीर*' को, पर आर्त्तिहरणके लिये बढ़े थे। मिलान कीजिये—'*अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खरदूषन फिरे।*' (३। २० छंद) वहाँ त्रिशिरा छोटा भाई था अत: उसको पहले कहा। इसी तरह मेघनादकी मायासे वानरोंके सभीत और व्याकुल होनेपर भी आप ही आयसु माँगकर मेघनादसे युद्ध करने गये थे। दोहा ५१ देखिये।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी लिखते हैं कि जब बंदर चिल्लाये '*रघुबीर करुनासिंधु आरतबंधु जनरक्षक हरे*', लक्ष्मणजीने देखा कि सरकार उठा ही चाहते हैं, अत: स्वयं आप उठ पड़े। जहाँ कहीं युद्धमें जाना हो तब आज्ञा लेकर जानेकी रीति है, जब शत्रु सिरपर आ गया, तब आज्ञा माँगनेकी कौन-सी बात है? ऐसे अवसरपर आज्ञा माँगना भी कचाई है, अत: लक्ष्मणजी चल पड़े।

पूर्व दोहा ५१ में क्रुद्ध होकर चलना कहकर फिर उनका क्रोधित स्वरूप कविने कहा था, यथा—'*छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥*' अत: यहाँ फिरसे न कहा, '*क्रुद्ध होइ*' पदसे ही स्वरूप यहाँ भी सूचित कर दिया। वहाँपर कटिमें निषंगका कसना न कहा और यहाँ बाणका हाथमें लेना न कहा। एक-एक बात दोनों स्थानोंमें कहकर दोनों प्रसंगोंमें दोनों बातोंका ग्रहण जनाया।

पु० रा० कु०—'*नाइ रामपद माथ*', यह चलते समयका मंगलाचरण हुआ। ☞ आज्ञा, प्रणाम और प्रभुप्रतापके स्मरणके सम्बन्धमें पूर्व दोहा ५१ और ७४ में लिखा जा चुका है।

रे खल का मारसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू॥ १॥
खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावौं छाती॥ २॥

---

* 'बिचल देखि अनीक निज कटि निषंग धनु हाथ। लछिमन चले सरोष तब नाइ रामपद माथ॥'—(का०)

शब्दार्थ—छाती जुड़ाना वा ठंढी करना—यह मुहावरा है।=हृदय शीतल करना; चित्त शान्त वा प्रसन्न करना; इच्छा या हौसला पूरा करना, यथा—*'लेहिं परस्पर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुड़ावहिं छाती॥'* (बा०)

अर्थ—(लक्ष्मणजी सम्मुख पहुँचकर उससे बोले) अरे दुष्ट! तू वानर-भालुको क्या मारता है, मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ॥ १॥ (रावण बोला) अरे मेरे पुत्र (इन्द्रजीतके) घातक! मैं तो तुझे ढूँढ़ता ही था, आज तुझे मारकर अपनी छाती ठंढी करूँगा॥ २॥

पु० रा० कु०—पूर्व *'क्रुद्ध होइ चले'* कहा, अब उसका स्वरूप दिखाते हैं कि परुष वचन कहे—*'रे खल का मारसि·········।'* कठोर वचन क्रोधका स्वरूप है, यथा—*'क्रोध के परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि॥'* (३। ३८)

नोट—१ (क) क्रोध बढ़ानेके लिये *'खल'* सम्बोधन किया। दूसरे, जो दिव्यास्त्र नहीं जानते उनपर भी अस्त्र चलाता है इससे *'खल'* कहा। (ख) *'तोर मैं कालू'।* भाव कि तू वानरोंका कालरूप है, यथा—*'यह खल खाइ काल की नाई'* और मैं तेरा काल हूँ। (बं० पा०) रावणको पहिले ही पत्रमें लिख चुके हैं कि *'सीता देइ मिलहु न त आवा काल तुम्हार'*। अतः उसी बातको पुष्ट करते हुए कहते हैं 'मुझे देख, मैं तेरा काल हूँ, वानर-भालु नहीं हैं। वे तो निशाचर सैनिकोंके काल हैं, और उन्हें उन सबोंने भगा भी दिया। तुम तो भीतरसे हौसला करके चले थे कि *'हौं मारिहौं भूप दौ भाई'* सो बन्दर-भालुको क्या मारने लगे।' (वि० त्रि०)

नोट—२ *'सुतघाती'* और *'जुड़ावौं छाती'* पदोंसे स्पष्ट है कि रावणको मेघनादवधसे परम दुःख हुआ जैसा किसीके वधसे न हुआ था। इसके वधसे अबतक उसकी छाती जल रही है। दूसरे, *'सुतघाती'* विशेषण इससे दिया कि इनके द्वारा ही मेघनादवध हुआ था। श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा और-और योद्धाओंका वध हुआ, अतः उनका सामना होनेपर उन सबका नाम लिया है—८९ (४-५) देखिये। पर छाती जलना यहीं सुतघातकके सम्बन्धमें कहा गया है अन्यके वधपर नहीं, इससे मेघनादवधसे अधिक शोक होना प्रत्यक्ष ही है।

☞ मिलान कीजिये—'**अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि॥**', '**दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्तगामी विपरीतबुद्धिः। अस्मिन्क्षणे यास्यसि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम बाणजालैः॥**' (वाल्मी० ६। ५९। ९४, ९६) अर्थात् हे निशाचरेन्द्र! मैं आ गया हूँ, वानरोंसे तुझे युद्ध करना नहीं शोभा देता। (रावण बोला) हे राघव! आज तुम मुझे देख पड़े हो। हे यमलोकको जानेवाले! हे विपरीतबुद्धि! हमारे बाणोंसे पीड़ित होकर तुम इसी समय मर्त्यलोकको प्राप्त होगे।

अस कहि छाड़ेसि बान प्रचंडा। लछिमन किये सकल सत खंडा॥ ३॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे॥ ४॥

शब्दार्थ—**प्रवान**=प्रमाण, परिमाणमें तुल्य। **निवारे**=निवारण करना, हटाना, दूर करना।

अर्थ—ऐसा कहकर उसने तीक्ष्ण बाण छोड़े। श्रीलक्ष्मणजीने सबके सौ-सौ टुकड़े कर दिये॥ ३॥ फिर रावणने करोड़ों अस्त्र-शस्त्र चलाये, लक्ष्मणजीने उन्हें तिल बराबर काटकर हटा दिये॥ ४॥

नोट—वाल्मी० ५९ में लक्ष्मण-रावण-युद्ध विस्तृतरूपसे वर्णित है।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदन भंजि सारथी मारा॥ ५॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरि सृंगन्ह जनु प्रबिसहिं ब्याला॥ ६॥

अर्थ—फिर श्रीलक्ष्मणजीने अपने बाणोंका प्रहार (चोट) किया और रथ तोड़कर सारथीको मारा॥ ५॥ उसके दसों माथोंमें दस-दस बाण मारे। वे बाण ऐसे दीखते हैं मानो पर्वतशिखरोंमें सर्प प्रवेश कर रहे हैं॥ ६॥

नोट—१ 'शत', 'सहस्र', 'लक्ष' आदि पद 'अपरिमित वा अगणित' वाचक हैं।

नोट—२ *'गिरि सृंगन्ह जनु·········।'* रावण काले पर्वतके सदृश है, रावणके धड़पर सिर पर्वतपरके शिखर हैं और लक्ष्मणजीके बाण सर्प हैं। सर्प पर्वतशिखरोंमें घुसते हैं वैसे ही बाण इसके सिरोंमें घुसते हैं। यह 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा' है।

पुनि सत सर* मारा उर माहीं। परेउ धरनि† तल सुधि कछु नाहीं॥ ७॥
उठा प्रबल पुनि मुरुछा जागी। छाँड़िसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी॥ ८॥

अर्थ—फिर सौ बाण उसकी छातीमें मारे तब वह पृथ्वीपर गिर पड़ा, उसे कुछ होश न रहा॥ ७॥ मूर्च्छा नष्ट होनेपर वह प्रबल रावण फिर उठा और ब्रह्माकी दी हुई शक्ति उसने चलायी॥ ८॥

पं०—*'सत सर मारा उर माहीं।......'* इति। पहले सिरोंमें मारे तब मूर्च्छित न हुआ। अब हृदयमें मारा। हृदय उसका अमृतमय है [क्योंकि नाभिमें अमृत है जैसा आगे विभीषणजीने कहा है, यथा *'नाभिकुंड पियूष बस जाकें। नाथ जिअत रावन बल ताकें॥'* (१०१। ५)]; इसलिये वहाँ सर लगनेसे मूर्च्छित हो गया।

पु० रा० कु०—रावण नरकको पाटने लगा तब ब्रह्माने जाकर मना किया। उसी समय रावणको उन्होंने यह शक्ति दी थी।

नोट—१ *'परेउ धरनितल सुधि कछु नाहीं'*, यह लक्ष्मणजीका हस्तलाघव और उनके बाणोंका प्रभाव दिखाया। *'उठा प्रबल पुनि'* यह रावणका बल दिखाया। रावणको गहरी मूर्च्छा आयी थी, वह बड़ी कठिनतासे पुनः सावधान हुआ। यथा—*'स सायकार्तो विचचाल राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद।'* (वाल्मी० ५९। १०६)

नोट—२ *'छाँड़िसि ब्रह्म दीन्ह जो साँगी'* इति। इससे सूचित हुआ कि उसके प्राणोंपर बन आयी, अभी तो चोटसे मूर्च्छित ही हुआ है, आगे प्राण बचनेकी आशा नहीं है। बल देख विस्मित हो गया, यथा वाल्मीकीये—**'विसिस्मिये लक्ष्मणलाघवेन।'** (५९। १०२) अतः यह अंतिम उपाय इसी समय करना पड़ा। यथा—*'रावनसुत निज मन अनुमाना। संकट भयउ हरिहि मम प्राना॥ बीरघातिनी छाँड़िसि साँगी।'* (५३। ६-७) अनुमान होता है कि ब्रह्माने शक्ति देते समय कह दिया था कि जब प्राणोंपर आ बने तभी इसका प्रयोग करना।

अ० रा० सर्ग ६ में रावणने जो शक्ति विभीषणपर चलायी, उसीसे लक्ष्मणजी (विभीषणको बचाकर) घायल हो मूर्च्छित हुए और हनुमान्‌जी उनको ले आये। कालनेमिका वध और द्रोणगिरिका लाना एवं सुषेणका नास देना भी उसमें वर्णित है। अ० रा० में शक्ति 'मयदत्त' है। अ० रा० की कथा मानसके मेघनाद-लक्ष्मण-युद्ध-प्रसंगसे मिलती है, रावण-लक्ष्मण-युद्धसे नहीं।—विशेष दोहा ५३ में देखिये। वाल्मी० १०२ वाली शक्ति भी मयदानववाली शक्ति है और वाल्मी० ५९ वाली ब्रह्मदत्त है। इस शक्तिका वर्णन वाल्मीकीयमें इस प्रकार है—**'जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयम्भुदत्तां युधि देवशत्रुः॥ स तां सधूमानलसन्निकाशां वित्रासनीं संयति वानराणाम्। चिक्षेप शक्तिं तरसा ज्वलन्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः॥'** (५९। १०७-१०८) अर्थात् उस देवशत्रु रावणने ब्रह्माजीकी दी हुई भयंकर शक्ति उठायी। वह ब्रह्मदत्त शक्ति सधूम अग्निके समान जल रही थी और युद्धमें वानरोंको भयभीत करनेवाली थी। राक्षसराजने वह जलती हुई शक्ति लक्ष्मणजीपर चलायी।

छंद—सो ब्रह्मदत्त प्रचंड सक्ति अनंत उर लागी सही।
पर्‍यो बीर बिकल उठाव दसमुख अतुल बल महिमा रही॥
ब्रह्मांड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रजकनी।
तेहि चह उठावन मूढ़ रावन जान नहिं त्रिभुवन धनी॥

शब्दार्थ—**महिमा**=भारीपन। गुरुता। गौरव, महत्त्व।

अर्थ—वह ब्रह्माकी दी हुई अमोघशक्ति श्रीलक्ष्मणजीकी ठीक छातीमें निश्चय ही जा लगी।‡ वीर लक्ष्मणजी व्याकुल होकर गिर पड़े। अतुलबल महिमावाले दसमुखने व्याकुल हो उठाया पर उनके अपरिमित बलकी महिमा (भारीपन) बनी रही (उसको न तो ब्रह्मदत्त शक्ति ही हटा सकी और न रावण ही। वह भारीपन ज्यों-का-त्यों बना रहा, इसीसे वे रावणके उठाये न उठ सके। यदि वह उठा लेता तो महिमा न रह जाती, यह निश्चय हो जाता कि साङ्गीसे वह महिमा भी क्षीण हो गयी।) जिनके एक ही सिरपर

* सत सर पुनि। † अवनि—(का०)।
‡ अर्थान्तर—वह शक्ति लगी। (उसकी अमोघता रखनेके लिये) उन्होंने उसे सह लिया। (रा० प्र०)

सब ब्रह्माण्डोंके लोक (वा, इस ब्रह्माण्डके समस्त भुवन) रजकणकी तरह विराजते हैं उन्हें (एक पर्वतके उठानेवाले) मूर्ख रावणने उठाना चाहा, वह यह जानता नहीं कि ये तीनों भुवनोंके स्वामी हैं।

नोट—१ *'दसमुख'* से जनाया कि उसके बीस भुजाएँ हैं यह समझकर तावमें आकर घबड़ाकर वह बीसों भुजाओंसे उठाने लगा। तब भी न उठा सका।

नोट—२☞ (क)—रावण क्यों न उठा सका, इसका कारण वाल्मीकिजी यह लिखते हैं कि 'विष्णु भी जिसको ठीक-ठीक नहीं जानते ऐसे ऐश्वर्यमान् श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण वे करते रहे'। अथवा, विष्णुकी भी समझमें न आ सकनेवाले अपने ऐश्वर्यका, अपनी शक्तिका, अपने आत्मस्वरूपका उन्होंने स्मरण किया; इसीसे दानवदर्पदलन लक्ष्मणजीको देवशत्रु रावण उठाकर ले जानेको समर्थ न हुआ। यथा—'**शक्त्या ब्राह्म्या तु सौमित्रस्ताडितोऽपि स्तनान्तरे। विष्णोरमीमांस्य भागमात्मानं प्रत्यनुस्मरत्॥ ततो दानवदर्पघ्नं सौमित्रिं देवकण्टकः। तं पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुर्लङ्घनेऽभवत्॥**' (११०—१११)

अ० रा० सर्ग ६ में लिखा है कि ये शक्तियाँ मायाकृत हैं, लक्ष्मणजी साक्षात् हरिके तन शेषांश हैं, समस्त जगत्के सार विराजमान परमेश्वर लोकाश्रय विष्णु हैं। तब लघु राक्षस कैसे उठा सके? यथा—'**मायाशक्त्याभवेत्किं वा शेषांशस्य हरेस्तनोः॥........सर्वस्य जगतः सारं विराजं परमेश्वरम्॥......कथं लोकाश्रयं विष्णुं तोलयल्लघुराक्षसः॥**' (९—१२)

(ख)—रावणने लक्ष्मणजीको उठा ले जाना चाहा जिसमें अबकी बार इनको वैद्य जिला न सके। मेघनादसे अपनेमें अधिक बल समझता था, अतएव उठाया; पर लक्ष्मणजीकी महिमा जैसे मेघनादके मुकाबिलेमें बनी रही थी वैसे ही अब भी बनी रही, उलटे उसकी महिमा जाती रही। (ग) करुणासिन्धुजी और बैजनाथजी *'अतुल बल महिमा रही'* को रावणका विशेषण मानते हैं अर्थात् जिसके बलकी महिमाको कोई तोल न सका था उस रावणने उठाना चाहा। पर मेरी समझमें यह दोनों ओर लगता है। (घ) यहाँ लक्ष्मणजीके दोनों स्वरूप कहे गये हैं—*'त्रिभुवन धनी'* और *'शेष'*। इस प्रकार कवि सब अवतारोंमें इस कथाका होना सूचित कर रहे हैं। प्र० स्वामीजी *'त्रिभुवन धनी'* को रावणका विशेषण मानकर अर्थ करते हैं कि 'रावण स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन लोकोंका धनी होकर भी (ऐसे अनन्त सिरवाले शेषावतार) लक्ष्मणजीकी महिमा नहीं जानता। *'ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी॥'* तथा वाल्मी० उ०। १६। ३८, ३९ के अनुसार वह *'त्रिभुवन धनी'* है ही। उनका मत है कि ऐसा अर्थ करनेसे 'दूरान्वय दोष' भी मिट जाता है। [ये ही विशेषण अ० १२६ में वाल्मीकिजीने इनको दिये हैं। यथा—*'जो सहससीसु अहीसु महिधरु लषन सचराचर धनी।'* *'सचराचर धनी'* वहाँ कहा है वही यहाँ *'त्रिभुवन धनी'* है। (मा० सं०)] (ङ) रावणको कैलाश उठानेका अभिमान है। अतः यहाँ *'ब्रह्मांड भुवन'* पद दिया और मेघनादके प्रसङ्गमें केवल *'जगदाधार'* पद दिया था।

नोट—३ (क) *'ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति'* और *'लागी सही'* कहकर वाल्मी० ५९। (१०६, १०९) की शक्ति सूचित की। ८२ (७-८) और दोहा ५३ देखिये। *'लागी सही'* से वह भाव भी जना दिया कि लक्ष्मणजीने उसे बाणोंसे मारा तथापि वह उनके विशाल वक्षःस्थलमें प्रवेश कर गयी। यथा—'**तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च हताग्निकल्पैः। तथापि सा तस्य विवेश शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम्॥**' (१०९) (ख) *'मूढ़ रावन'* इति। *'मूढ़'* क्योंकि एक पर्वतका उठानेवाला असंख्य ब्रह्माण्डोंके स्वामी और जगदाधारको उठानेकी इच्छा करे यह मूर्खता ही तो है। पुनः *'मूढ़'* पदसे जनाया कि लज्जित हो गया; क्योंकि उठा न सका, यथा—*'देखि प्रताप मूढ़ खिसियाना'*, *'जगदाधार सेष किमि उठै चले खिसियाइ।'* (५३) *'रावन'* नाम भी यहाँ साभिप्राय है क्योंकि कैलाश उठानेपर शिवजीने अँगूठेसे पर्वतको दबाया तो वह रोने लगा था। और इसने जगत्मात्रको रुला डाला था, सो भी हार गया। यथा—'**देवता मानुषा यक्षा ये चान्ये जगतीतले। एवं त्वामभिधास्यन्ति रावणं लोकरावणम्॥ यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्। तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना राजन्भविष्यसि॥**' (वाल्मी० ७। १६। ३८, ३७)

दो०—देखि पवनसुत धाएउ* बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हन्यो तेहि† मुष्टि प्रहार प्रघोर॥ ८२॥

अर्थ—(उठाते) देख पवनसुत श्रीहनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते हुए दौड़े। कपिके आते ही उसने उनपर बहुत भयंकर (कठोर एवं वज्रवत्) घूँसेका प्रहार किया॥ ८२॥

नोट—१ *'देखि पवनसुत'* इति। पवनसुत शब्द देकर श्रीहनुमान्‌जीका अत्यन्त शीघ्रतासे आना और बलपूर्वक एवं बड़ी फुर्तीसे रावणको डाँटना जनाया।

नोट—२ (क) *'बोलत बचन कठोर'* इति। हनुमान्‌जी दूर थे। वहाँसे इसके पास पहुँचना था। इसलिये जोरसे कठोर वचन बोले जिसमें उसका ध्यान लक्ष्मणजीकी ओरसे हटकर इनकी ओर हो जाय और वह उनको उठाने न पाये कि ये पहुँच जायँ।

(ख) हनुमान्‌जी सन्त होकर कठोर वचन कैसे बोले? उत्तर यह है कि रामविमुखसे कठोर वचन बोलना दोष नहीं है। दूसरे, लक्ष्मणजीको मूर्च्छित देख इनको परम क्रोध हुआ। अतः क्रोधमें कठोर वचन कहे। (कठोर वचन, पदसे ही क्रोधका होना निश्चित होता है—*'क्रोधके परुष बचन बल'*) (पं०)

☞ प्रायः जब-जब कठोर वचन कहे गये तब-तब क्रोधमें ही—

१ *'लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ रामपद माथ॥'* (८१), *'रे खल का मारसि............।'*

२ *'सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥ रन ते निलज भाजि गृह आवा।*
इहाँ आइ बक-ध्यान लगावा॥ अस कहि अंगद मारेउ लाता॥' (८४। ६—८)

३ *'तब लंकेस क्रोध उर छावा॥ गर्जत तर्जत सनमुख आवा॥*
जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥.........' (८९। २-३)

४ *'पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोले बचन सकोपा॥......*
सठ स्वपच्छ तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पच्छी चंडाला॥' (उ० ११२),

५ *'सुनत बचन उपजा अति क्रोधा। मायाबस न रहा मन बोधा॥ पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरिषा कपट बिसेषी॥ डहकि डहकि परचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू॥'* (१। १३६। ६-१३७। ३)

६ *'धावा क्रोधवंत खग कैसे। छूटइ पबि पर्बत कहुँ जैसे॥*
रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥' (आ० २९। १०, ११)

७ *'जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी॥'* (आ० २६। १)

८ *'सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥'* (सुं० ४१। २)
'जियसि सदा सठ मोर जियावा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥' इत्यादि
क्रोधके अतिरिक्त करुणा वा दुःख-वश भी कठोर वचन कहे गये हैं।

नोट—३ मेघनादने जब उठाना चाहा तब हनुमान्‌जीका उसे ललकारना नहीं कहा गया और यहाँ रावणको ललकारना कहते हैं। इसका एक कारण तो यह है कि मेघनादादिसे जब लक्ष्मणजी न उठ सके तब वे सब स्वंय चल दिये थे, हनुमान्‌जीके मर्मको मेघनाद भली प्रकार जानता है। यथा—*'निकट न आव मरम सो जाना।'* अतएव हनुमान्‌जीके निकट आनेके पूर्व ही वे चल दिये। यथा—*'जगदाधार अनंत किमि उठइ चले खिसिआइ।'* (५३) और यहाँ रावण उठाता था तब श्रीहनुमान्‌जी तुरंत पहुँच गये थे। दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि मेघनादसे जब लक्ष्मणजीका द्वन्द्व-युद्ध होने लगा तब कहीं दूरीपर हनुमान्‌जी मेघनादकी सेनासे या किसी सेनापतिसे युद्ध कर रहे थे, यथा—*'भिरे सकल जोरिहि सन जोरी'* इससे हनुमान्‌जीने मेघनादको उठाते नहीं देखा। तीसरे हनुमन्नाटकके लक्ष्मण-रावण-युद्ध-प्रसङ्गकी कथाका भाव यदि लक्ष्मण-मेघनाद युद्धमें लें तो यह कारण कह सकते हैं कि हनुमान्‌जी उस स्थलसे इसलिये दूर हटा दिये गये थे कि लक्ष्मणजीको शक्ति लगे।

---

* देखत धाए पवनसुत। † आवत तेहि उर महँ हतेउ—(का०)

☞ मानसमें प्रथम रावणका मुष्टिप्रहार है, अ० रा० और वाल्मी० में प्रथम हनुमानजीने घूँसा मारा है। वाल्मी० ५९ में लिखा है कि रावणके रथपर पहुँचकर दाहिनी भुजाको उठाकर और उसको धमकाकर बुद्धिमान् हनुमान्जी बोले—'देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसोंसे तूने अवध्यता पायी है, पर वानरोंसे तुझे भय है। यह हमारा उठा हुआ दाहिना हाथ, पञ्चशाखा (अँगुलियों) युक्त तेरे देहमें चिरकालसे स्थित प्राणोंको निकाल देगा—ये ही वचन *'कठोर'* विशेषणसे यहाँ सूचित किये गये हैं, यथा—**'रथं तस्य समासाद्य बाहुमुद्यम्य दक्षिणम्। त्रासयन् रावणं धीमान् हनूमान् वाक्यमब्रवीत्॥ देवदानवगन्धर्वैर्यक्षैश्च सह राक्षसैः। अवध्यत्वं त्वया प्राप्तं वानरेभ्यस्तु ते भयम्॥ एष मे दक्षिणो बाहुः पञ्चशाखः समुद्यतः। विधमिष्यति ते देहे भूतात्मानं चिरोषितम्॥'** (५४—५६)

मानस और वाल्मी० रा० में भेद वहाँ केवल यही है कि यहाँ लक्ष्मणजीको उठाते समय हनुमान्जीके रावणसे ये वचन हैं और वाल्मी० में लक्ष्मण-रावण-युद्धके पूर्व ही। पुनः दूसरा भेद यह है कि लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर रावणका हनुमान्जीको घूँसा मारना वाल्मी० रा० में नहीं है। केवल हनुमान्जीका उसको घूँसा मारना कहा गया है। और लक्ष्मण-रावण-युद्धके पूर्व ही रावणने हनुमान्जीको और हनुमान्जीने रावणको थप्पड़ मारा है।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा॥ १॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा॥ २॥

अर्थ—श्रीहनुमान्जी घुटना टेककर रह गये, पृथ्वीपर न गिरे। सँभालकर उठे और बहुत रिसमें भर गये॥ १॥ श्रीहनुमान्जीने उसको एक घूँसा मारा। वह ऐसा गिर पड़ा मानो वज्रकी चोटसे पर्वत गिरा हो॥ २॥

प० प० प्र०—१ (क) हनुमान्जीने कुम्भकर्णपर प्रथम ही मुष्टिप्रहार किया था पर वह मूर्च्छित न हुआ। यथा—*'तब मारुतसुत मुठिका हन्यो। पर्यो धरनि ब्याकुल सिर धुन्यो॥'* (६४। ७) उस अर्धालीमें भी १५, १५ मात्राएँ हैं। यहाँ रावणने प्रथम प्रहार किया तो हनुमान्जीको मूर्छा न हुई—*'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा……।'* यहाँ इस अर्धालीमें भी एक-एक मात्रा कम है। कुम्भकर्णके घूँसेसे हनुमान्जीकी जो दशा हुई वही दशा हनुमान्जीके घूँसेसे यहाँ रावणकी हुई। यथा—*'घुर्मित भूतल पर्यो तुरंता……। मुरुछा गइ मारुतसुत जागा॥'* यथा—*'परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा। मुरुछा गै बहोरि सो जागा॥'* इससे प्रकट हुआ कि कुम्भकर्णका शारीरिक बल रावणसे बहुत अधिक था। [यह भी हो सकता है कि पहले घूँसा खानेसे क्रोध अधिक बढ़ जानेसे प्रहार पूरे बलसे किया जाता है, इसीसे वहाँ कुम्भकर्णके घूँसेसे हनुमान्जी और यहाँ हनुमान्जीके घूँसेसे रावण मूर्छित हुए। (मा० सं०)] (ख) अर्धालीमें मात्राकी कमी करके जनाया कि *'जानु टेकि कपि……'* यह देखते ही कपि सेना भयभीत हो गयी थी पर उसके उठते ही सब आनन्दित हुए। उनको आश्चर्य हुआ और रावण लज्जित हुआ।

नोट—१ *'बहुत रिस भरा।'* भाव कि लक्ष्मणजीको उठाते देख क्रोध हुआ था तब कठोर वचन कहे थे। अब उसके घूँसेकी चोट खानेपर क्रोध बहुत बढ़ गया तब उसे जोरसे घूँसा मारा। लङ्किनीके भी 'मुठिका' मारी थी, यथा—*'मुठिका एक महाकपि हनी'* तब वह रुधिर उगलती हुई पृथ्वीपर गिरी थी, वैसे ही रावणके मुख, कान और नेत्रोंसे खून गिरा। यथा—**'तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः। जानुभ्यामगमद्भूमौ चचाल च पपात च॥ आस्यैश्च नेत्रैः श्रवणैः पपात रुधिरं बहु। विघूर्णमानो निश्चेष्टो रथोपस्थ उपाविशत्॥ विसंज्ञो मूर्च्छितश्चासीन्निजस्थानं समालभत्। विसंज्ञं रावणं दृष्ट्वा समरे भीमविक्रमम्॥'** (वाल्मी० ५९। ११३—११५) अर्थात्—उस मुष्टिप्रहारसे रावण काँपकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। मुख, कान और नेत्रोंसे रक्त बहुत गिरा और वह चक्कर खाकर रथके समीप आ गिरा। मूर्च्छित हो जानेसे रथमें अपने स्थानपर नहीं जा सका।

नोट—२ *'परेउ सैल जनु बज्रप्रहारा।'* इति। इससे जनाया कि हनुमान्जीने क्रोधयुक्त होकर वज्रसदृश घूँसेसे उसपर प्रहार किया था, यथा—**'आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना।'** (वाल्मी० ५९। ११२) इसी भावको दरसानेके लिये वज्रप्रहारकी उत्प्रेक्षा की। पुनः रावणके **'हन्यो मुष्टि प्रहार प्रघोर'** के उत्तरमें इन्होंने भी वज्रवत् प्रहार किया। उसके प्रहारसे ये न गिरे और इनके प्रहारसे वह चक्कर खाकर संज्ञारहित होकर गिर पड़ा। यह जतानेके लिये *'परेउ'* पद दिया। यथा—*'जो दससीस महीधर ईस को बीस भुजा*

खुलि खेलन हारो। लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो॥ बीर बड़ो बिरुदैत बली अजहूँ जग जागत जासु पँवारो। सो हनुमान हनी मुठिका गिरि गो गिरिराज ज्यों गाजको मारो॥' (क० ३८)

मुरुछा* गै बहोरि सो जागा। कपि बल बिपुल सराहन लागा॥ ३॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तैं जियत रहेसि† सुरद्रोही॥ ४॥

अर्थ—मूर्च्छाके नष्ट हो जानेपर वह फिर सचेत हुआ और कपिके बलकी बड़ी प्रशंसा करने लगा॥ ३॥ (हनुमान्‌जीने उत्तर दिया कि) मेरे पुरुषार्थको बारम्बार धिक्कार है और मुझे भी धिक्कार है जो तू सुरद्रोही! जीता रह गया॥ ४॥

नोट—१ *'बहोरि'* का भाव कि एक बार पहले भी (लक्ष्मणजीके बाणोंद्वारा) मूर्च्छित होनेपर सचेत हुआ था—*'परेउ अवनितल सुधि कछु नाहीं। उठा प्रबल पुनि मुर्छा जागी॥'*

नोट—२ वाल्मी० ५९ में रावण-लक्ष्मण-युद्धके पूर्व ही रावण-हनुमान्‌का यह परस्पर वाक्य है और शक्ति लगनेके पश्चात् केवल उतना ही है जो पूर्व ८३ (१-२) में दिया गया। यथा—**'अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्॥ साधु वानर वीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः। रावणेनैवमुक्तस्तु मारुतिर्वाक्यमब्रवीत्॥ धिगस्तु मम वीर्यस्य यत्त्वं जीवसि रावण। सकृत्तु प्रहरेदानीं दुर्बुद्धे किं विकत्थसे॥ ततस्त्वां मामको मुष्टिर्नयिष्यति यमक्षयम्।'** अर्थात् (होशमें आकर) महातेजस्वी रावण बोला—हे वानर! शाबाश! अपने पराक्रमसे, हमारे शत्रु वीर तुम प्रशंसनीय हो। रावणके ऐसा कहनेपर हनुमान्‌जी बोले—हे रावण! हमारे पराक्रमको धिक्कार है जो तू हमारे मारनेपर भी जीवित ही है। बड़ी शीघ्रतासे तू मुझे मार; अरे दुर्बुद्धि! तू मुझे मार, क्या बकबक करता है। बादमें मेरी मुष्टिका तुझे यमराजके यहाँ पहुँचायेगी। (५९। ६४—६७)

नोट—३ *'कपिबल……'* इति। *'कपि'* शब्दका भाव कि यद्यपि तू कपि है तथापि तुझमें अन्य कपियोंसे अधिक बल है। फिर भी तुझमें मुझे मार डालनेका सामर्थ्य नहीं है, मैं वानरके हाथ मर नहीं सकता। यथा *'रावन मरन मनुज कर जाँचा', 'नर के कर आपन बध बाँची'* (प० प० प्र०)

पं०—*'कपि बल बिपुल सराहन लागा'* शत्रुकी प्रशंसा कैसी? समाधान—(१) उत्तम लोगोंकी रीति है कि किसीमें गुण देखें तो सराहना करें।—*'मैं गुनगाहक……'* वा, (२) उसने विचारा कि प्रशंसा सुनकर आनन्दमें मग्न हो सौमित्रिके उठानेमें मुझे न रोकेगा।

वीर—चोटसे दुःखी होकर शत्रु बड़ाई करता है, वह अनुचित और अयथार्थ होनेसे रसाभास है। क्योंकि वह प्रत्यक्षमें कपिकी प्रशंसाके बहाने अपने पुरुषार्थकी बड़ाई करता है।

गौड़जी—*'कपि……सराहन लागा।'* यह सराहना काकोक्ति है जिससे अपना बड़प्पन, गुणग्राहकता और शत्रुकी तुच्छता अभिप्रेत है।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि‡ ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥ ५॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता॥ ६॥

अर्थ—ऐसा कहकर कपि (श्रीहनुमान्‌जी) लक्ष्मणजीको श्रीरघुनाथजीके पास ले आये। दशानन यह देखकर आश्चर्य और भयको प्राप्त हुआ॥ ५॥ रघुवीर (श्रीरामजी) (भाईको देखकर) बोले—हे भाई! हृदयमें विचारो तो, तुम तो कालके भक्षक और देवताओंके रक्षक हो॥ ६॥

नोट—१ *'कपि ल्यायो……'* इति। रावणसे न उठे, हनुमान्‌जीसे कैसे उठ गये? श्रीहनुमान्‌जीकी परमभक्ति और सौहार्दके कारण उनके लिये वे हल्के हो गये। यथा—**'शत्रूणामप्यकम्प्योऽपि लघुत्वमगमत्कपेः॥'** (वाल्मी० ५९। ११७) **'हनूमतः सुहृत्त्वेन भक्त्या च परमेश्वरः। लघुत्वमगमद्देवो गुरूणां गुरुरप्यजः॥'** (अ० रा० ६। ६। १६) अर्थात् वे अजन्मा और प्रकाशस्वरूप परमेश्वर श्रीलक्ष्मणजी भारी-से-भारी होनेपर भी हनुमान्‌जीके लिये उनके सौहार्द और भक्तिभावके कारण अत्यन्त हल्के हो गये।

नोट—२ *'कह रघुबीर समुझु……'* इति (क) *'समुझु जिय'* का भाव कि अपने स्वरूपका स्मरण

* गै मुरुछा। † उठसि—(का०)। ‡ कपि लछिमन कहुँ (क०)।

करो। उसे स्मरण करते ही मूर्च्छा-विगत हो जाओगे। मूर्च्छालीलाका अन्त हो जायगा।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी कहते हैं कि 'यह ब्रह्मदेवकी दी हुई कराल शक्ति थी, वह चिकित्साके वशकी वस्तु नहीं थी। स्वरूप-ज्ञानसे ही यह दूर की जा सकती थी। इसलिये सरकारने स्वरूप-ज्ञान करा दिया, यथा *'तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता'।* लक्ष्मणजीने अपने स्वरूपको भूलकर, अपनेको काल कहा। वहाँ-तक ब्रह्मदेवकी शक्तिकी पहुँच थी। सरकारने स्मरण करा दिया कि तुम काल नहीं हो, काल-के-काल हो। बस स्वरूप-स्मरण होते ही ब्रह्मदेवके अधिकारके बाहर हो गये, अतः वह शक्ति आकाशमें चली गयी।

(ख) *'तुम्ह कृतांत भच्छक'* इति। भाव कि तुम कालके भक्षक हो तब तुम कालके वश कैसे हो सकते हो? यथा *'काल ब्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥'* (५६। ८) *'कृतांत भच्छक'* कहकर जनाया कि तुम कालका भी अन्त करनेवाले, प्रलय करनेवाले और स्वयं अनन्त हो, तुम्हारा अन्त असम्भव है। (गौड़जी) (ग) श्रीरामचन्द्रजी *'भुवनेस्वर कालहु कर काला'* हैं। श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामजीके अंश हैं; यथा *'अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुखदाता॥'* (१। २५२) अतः वे भी कृतांत-भक्षक हुए। इस तरह भाव यह है कि तुम हमारे अंश हो। यही बात वाल्मी० और अ० रा० में कहा है। भेद यह अवश्य है कि वाल्मीकीय आदिमें श्रीलक्ष्मणजीका स्वयं ही श्रीरामचन्द्रजीका अथवा अपने ऐश्वर्य और आत्मस्वरूपका स्मरण बराबर करते रहना कहा है और मानसमें श्रीरघुनाथजीने उनको अपने स्वरूपका स्मरण कराया है। दोहा ८२ छन्द देखिये। (घ) *'सुरत्राता'* का भाव कि तुम्हारा अवतार देवताओंकी रक्षाके लिये हुआ है; यथा *'सेष सहस्त्रसीस जग कारन। जो अवतरेउ भूमि भय टारन॥'* (१। १७। ७) *'जो सहस सीस अहीस महिधरु लषन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराजतनु चले दलन खल निसिचर अनी॥'* (अ० १२६), इसीसे मूर्च्छालीलाका तुमने अभिनय किया है, नहीं तो तुम तो जन्ममरणादि विकारोंसे रहित हो। मूर्छित पड़े रहोगे तो देवताओंकी रक्षा कैसे होगी? (ङ) बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि '**कृतांत भच्छक**' कहकर विचारा कि '**कृतांत भच्छक**' सुनकर कहीं त्रैलोक्यका नाश न कर दें, अतः फिर *'सुरत्राता'* भी कहा अर्थात् केवल राक्षसोंका नाश उठकर करो जिसमें देवताओंकी रक्षा हो और किसीका नाश न कर देना।' श्रीगौड़जीने इस भावको स्पष्ट कर दिया है। भाव यह कि इसका आशय यह भी नहीं है कि कालका तुम नाश करो, क्योंकि *'काल'* भी सुर है, जो रावणसे हैरान है और तुम सभी देवताओंके त्राता (रक्षक) हो, कालकी भी रक्षा तुम्हें करनी है, तुम्हारे अन्तसे कालका भी अन्त हुआ जाता है, परन्तु प्रलय वा महाप्रलय इस समय कुछ भी नहीं है, अतः इस मूर्च्छालीलाका अन्त करो। लीलाके लिये समय नहीं है। ब्रह्मदत्त शक्तिकी मर्यादाकी रक्षा हो चुकी।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला॥ ७॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए*। रिपु सन्मुख अति आतुर आए॥ ८॥

अर्थ—(प्रभुके ये) वचन सुनते ही कृपालु श्रीलक्ष्मणजी उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाशको चली गयी॥ ७॥ वे फिर कोदण्ड और बाण लेकर दौड़े और अति शीघ्र शत्रुके सामने आ पहुँचे॥ ८॥

गौड़जी—रावणको जितने आयुध मिल चुके हैं, किसी-न-किसी मिषसे सबको समाप्त करना भी प्रभुका अभीष्ट है।

नोट—१ पूर्व जो शक्ति लगी थी उसका आकाशमें जाना न कहा और यहाँ इस शक्तिके सम्बन्धमें कहा कि *'गई गगन सो।'* कारण कि—(क) इस शक्तिमें एक ही प्रहारकी शक्ति ब्रह्माने दे रखी थी, वह प्रहार करके चली गयी। (पं०) (ख) ☞ पहली बार नरनाट्य दिखाया, अबकी ऐश्वर्य। पूर्व ओषधिपर्वत आया था। उसका लौटाया जाना मानसमें नहीं है। अतः अब ऐश्वर्य दिखानेसे वह तो यही समझेगा कि उसी ओषधिसे जिला लिये गये। इसीसे अब नरनाट्यकी आवश्यकता न रह गयी।

(ग) गौड़जी—गोस्वामीजीने रामचरितमानसमें दो प्रकारसे रामचरित दिखाया है। एक तो नरत्वमें और

* 'धरि सर चाप चलत प्रभु भए। रिपु० समीप……'—(का०)

दूसरे ईश्वरत्वमें। इसमें प्रथम प्रकरण अर्थात् पहली बारकी शक्तिका लगना तो नरत्वमें नर-लीला करके दिखाया है जिसका समाधान उसी प्रकरणमें गोस्वामीजीने कर भी दिया है। यथा—'*उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगत कृपाल देखाई॥*' रही दूसरी शक्ति लगनेकी बात, सो उसमें रघुनाथजीने अपने ईश्वरत्वको दिखाया। ऐसा भी कहा जा सकता है कि भगवान् शरणागतपालक हैं, प्रथम शक्ति-प्रकरणमें लक्ष्मणजीमें कुछ भक्ति-भावमें कमी रही। उनको अपने बल और ऐश्वर्यका अहङ्कार आ गया जिसकी ध्वनि उनकी इस कार्यशैलीसे निकलती है।—'*आयसु माँगि राम पहँ अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ॥*'

कहाँ तो स्वामीके पाससे जाना और प्रणाम भी न करना, क्या यह प्रत्यक्ष अहङ्कार नहीं है? अपने धनुषबाण और पराक्रमके अहङ्कारने लक्ष्मणजीको पीड़ा पहुँचायी और सफलता हाथ न लगी। परन्तु दूसरी शक्तिके प्रकरणमें जो सेवकका भाव स्वामीके प्रति होना चाहिये उनका श्रद्धा-भक्तिसमेत लक्ष्मणजीने भलीभाँति पालन किया—'*लछिमन चले सरोष तब नाइ रामपद माथ।*'

यहाँ बात ही दूसरी है। यहाँ रामचरणोंमें सिर नवाकर स्वामीके बलपर लड़नेके लिये चले। फल तत्काल ही उत्तम मिला। दुःख भी नाश हुआ और शक्तिके प्रभावके रहते ही पुनः रावणसे जा युद्धकर उसे व्याकुल और मूर्च्छित कर दिया और पुनः भगवान्‌के चरणोंमें आ सिर नवाया। यहाँ तो भक्तिपक्ष प्रबल था फिर क्योंकर भक्त लक्ष्मणजीका अमङ्गल हो सकता था?—(भूमिकासे उद्‌धृत)

पु० रा० कु०—ऐश्वर्यान्तर्गत माधुर्य भूषण है। यथा—'**माधुर्यभूषणं नित्यमैश्वर्यान्तर्गतं ध्रुवम्।**' (वसिष्ठवचन)

नोट—२ प्रभुने कहा कि तुम कृतान्तभक्षक हो, सुरत्राता हो, यह वचन सुन वे उठ बैठे। इससे ज्ञात हुआ कि प्रभुके वचन सुन वे अपना स्वरूप स्मरणकर उठ बैठे, जैसा कि वाल्मीकीयमें कहा है, यथा—'**आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः। विष्णोर्भागममीमांस्यमात्मानं प्रत्यनुस्मरन्॥**' (५९। १२२) अर्थात् शत्रुसूदन लक्ष्मणजीने अपनेको वैष्णवतेजके एक एश्वर्यरूपसे स्मरण किया वा, अपना आत्मस्वरूप विष्णुअंश स्मरण करते हुए घावरहित और स्वस्थ हो गये। ८२ छंद देखिये।

इस बार इस तरह शीघ्र क्यों स्वस्थ कर लिया और पहिले इतना बखेड़ा क्यों किया गया था, इसका उत्तर पूर्व और यहाँ भी ऊपर लिखा गया। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि पूर्व शक्ति लगनेपर सन्ध्या हो गयी थी, रात्रिभर ओषधिके लिये यत्न करनेका अवसर था और इस बार अभी सन्ध्या नहीं हुई है, शक्ति दिनमें लगी थी और शत्रु रावण रणभूमिमें अभी मौजूद है; हनुमान्‌जीके मुष्टिप्रहारसे मूर्च्छित पड़ा है। मूर्च्छा जानेपर उठेगा तो इनके वहाँ न होनेसे अपनी जय समझेगा। अतएव, रावणके रणभूमिपर मूर्च्छा विगत होतेतक इनको वहाँ तुरंत पहुँचना आवश्यक था। इससे यहाँ ऐश्वर्यसे काम लिया।

छंद—आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।
गिरयौ धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रतापपुंज बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो॥

अर्थ—बड़ी शीघ्रतासे फिर रावणके रथको चूर-चूरकर, सारथीको मारकर, उसे व्याकुल कर दिया। सौ बाणोंसे दसकंधर रावणका हृदय बेध दिया जिससे वह अतिशय व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। तदनन्तर दूसरा सारथी उसे दूसरे रथमें डालकर तुरंत लङ्कामें ले गया। रघुवीर श्रीरामजीके प्रतापपुञ्ज भाईने फिर आकर प्रभुके चरणोंमें प्रणाम किया।

नोट—१ (क) '*आतुर*' का भाव कि रावण अभी रणभूमिमें ही था कि ये फिर आ पहुँचे। '*बहोरि बिभंजि*' कहा क्योंकि प्रथम एक बार ऐसा कर चुके हैं। यथा '*पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदन भंजि सारथी मारा॥*' (८२। ५) (ग) प्रथम रथ टूटनेपर दूसरेका आना नहीं कहा गया और यहाँ फिर दूसरे रथका तोड़ना कहा। इससे जनाया कि जितनी देरमें हनुमान्‌जी लक्ष्मणजीको उठा लेकर गये और

ये फिर आये, इतनेमें ही वह दूसरे रथपर सवार हो आया। वा, रथ वहीं इतनी देरमें आ गया था, जैसे इस समय आ गया जिसमें सारथी उसे उठा ले गया। (घ) *'दसकंधर'* पदसे जनाया कि दसों सिरोंके बल चित्त गिरा। रावण प्रतापी था, यथा—*'देखि प्रताप न कपि मन संका॥'* (५। २०), *'सोइ रावन जग बिदित प्रतापी॥'* (२५। ८), लक्ष्मणजीने उसे हराया इसलिये इन्हें *'प्रतापपुंज'* कहा। (ङ) *'सारथी दूसर घालि.........'* इति। दूसरा सारथी इससे रावणको उठा ले गया कि कहीं लक्ष्मणजी बदला चुकानेके लिये इसे न उठा ले जायँ। (च) *'बहोरि प्रभु चरनन्हि नयो'*। जब चले थे तब प्रणाम करके चले थे—*'लछिमन चले क्रुद्ध होइ नाइ रामपद माथ'*, 'अब लौटे तब पुनः 'चरनन्हि नयो'। वहाँ उपक्रम था यहाँ लक्ष्मण-रावण-युद्धका विजयमें 'उपसंहार' है।

दो०—उहाँ दसानन जाग करि करै लाग कछु जग्य।
रामबिरोध बिजय चह* सठ हठ बस अति अग्य॥ ८३॥

शब्दार्थ—*अग्य*=नासमझ—*'कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य।'* (बा०)

अर्थ—वहाँ (लङ्कामें) दशानन सावधान होनेपर कुछ यज्ञ करने लगा। (वक्ता कहते हैं कि) वह अत्यन्त मूर्ख है, अज्ञानी और हठी है, वह हठवश श्रीरामजीसे विरोध करके भी विजय चाहता है॥ ८३॥

नोट—१ (क) *'दसानन जाग करि'* से पाया गया कि यह मूर्च्छा थोड़ी ही देर रही। रावण बिना किसी उपचारके शीघ्र चैतन्य हो गया। आगे श्रीजाम्बवान्‌जीकी लात खानेपर मूर्छा विशेष हुई, जिसके लिये सारथी आदिको यत्न करना पड़ा। (ख) *'कछु जग्य'* इति। *'कछु'* से जनाया कि यह यज्ञ बहुत गुप्त है, किसीको यह नहीं मालूम कि कौन-सा यज्ञ है। इससे *'कछु'* पद दिया। अ० रा० १०। ५—१२ में यज्ञकी कथा इस प्रकार है कि रावण शुक्राचार्यके पास जा प्रणामकर हाथ जोड़कर बोला—'हे भगवन्! राघवने लङ्काको राक्षसयूथपोंसहित नष्ट कर दिया! पुत्र-बान्धव-सहित बड़े-बड़े दैत्योंको मार डाला। आप ऐसे सद्‌गुरुके रहते हमको यह दुःख कैसे प्राप्त हो गया?' इस तरहसे कही बात सुनकर दैत्यगुरु बोले—'हे दशानन! एकान्तमें तुम यत्नपूर्वक यज्ञ करो। यदि यज्ञ-होम विघ्नरहित हो जाय तो होमके अग्निसे बड़ा भारी रथ, घोड़े, धनुष, तूणीर और बाण निकलेंगे। उन सबके होनेसे तुम अजेय हो जाओगे। इसलिये हम जो मन्त्र देते हैं इसे ग्रहण करो और शीघ्र जाकर होम करो।' ऐसा कहनेपर रावणने शीघ्र जाकर पाताल-सदृश एक गुहा महलमें बनाकर, लङ्काके सब द्वार यत्नपूर्वक बन्द करा और आवश्यक होमद्रव्य एकत्रितकर एकान्त गुहामें प्रवेशकर मौन धारणकर यज्ञ करने लगा। पंजाबीजीके मतानुसार *'कछु जग्य'* का भाव यह है कि वह थोड़े कालमें सिद्ध होनेवाला यज्ञ है, बड़ा यज्ञ नहीं है क्योंकि उसका समय नहीं है। वा, यह यज्ञ बीचमें ही विध्वंस हो जायगा, अतः इसे *'कछु'* कहा। (ग) रावणने विचारा कि अब शत्रुसे बलद्वारा पार न पा सकूँगा, बिना दैवी शक्तिके जीतना असम्भव है। अतः दैवीशक्ति प्राप्तिके लिये यज्ञ करनेकी ठानी जिससे विजय हो। (बं० पा०)

नोट—२ *'हठ बस'* यथा—*'तौ मैं जाइ बैर हठि करिहउँ। कंत रामबिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू॥'* (१४। ८)—विशेष १४ (८) में देखिये। भाव यह है कि विभीषण, मन्दोदरी और माल्यवान् आदिने रामविरोधसे निवारण किया पर उसने हठवश न माना। इसीसे *'अति अग्य'* कहा। रामविरोध करके जय चाहता है इसलिये *'सठ'* कहा। रामविरोधीकी कुशल कहाँ? दोहा १४ (८) देखिये। अथवा, 'देवविरोधी' होनेसे शठादि विशेषण दिये, यथा—*'रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥'* (९२। ५)

नोट—३ *'अति अग्य'* क्योंकि रामसे विमुख है और उन्हींके अङ्गभूत देवताकी पूजासे सुखी होना चाहता है।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई। सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई॥ १॥
नाथ करै रावन एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरिहि अभागा॥ २॥

* 'जय चाहत रघुपति बिमुख'—(का०), राम बिरोधी कुसल चह'—(छ०)

अर्थ—इधर विभीषणजीने सब खबर पायी और शीघ्र जाकर श्रीरघुनाथजीको सुनायी॥ १॥ हे नाथ! रावण एक यज्ञ कर रहा है। उसके सिद्ध होनेपर वह अभागा न मरेगा॥ २॥

नोट—१ *'सब सुधि पाई'* इति। रावण पाताल-समान गहरे स्थानमें महलके भीतर यज्ञ कर रहा था, इससे बाहरके लोगोंको इसका पता मिलना दुर्लभ था। विभीषणजीने धुआँ देखकर जाना तब श्रीरामचन्द्रजीको भी दिखाकर यज्ञकी सूचना दी। यथा—'**उत्थितं धूममालोक्य महान्तं रावणानुजः। रामाय दर्शयामास होमधूमं भयाकुलः॥ पश्य राम दशग्रीवो होमं कर्तुं समारभत्। यदि होमः समाप्तः स्यात्तदाजेयो भविष्यति॥**' (अ० रा० १०। १३-१४) अर्थात् बड़ा ऊँचा उठा हुआ धुआँ देखकर विभीषण भयातुर हो श्रीरामचन्द्रजीको यह धुआँ दिखाने लगे। देखिये वह यज्ञ शुरू करता है। यदि होम समाप्त हुआ तो वह अजेय हो जायगा।

नोट—२ '*........करै एक जागा। सिद्ध भए नहिं मरिहि........*' इति। (क) दैत्यगुरु शुक्राचार्यजीने कहा था कि इस यज्ञके सिद्ध होनेसे तुम अजेय हो जाओगे—*'त्वमजेयो भविष्यसि'* (अ० रा० १०। ९) अतः कहा कि वह न मरेगा। 'अजय' हो जायगा, तब आपकी जय उसपर न होगी। जय तभी हो जब वह मारा जाय अतः कहा कि न मरेगा। (ख)—यह समाचार चाहे गुप्तचरसे मिला हो कि दैत्यगुरुने ऐसा कहा है पर अ० रा० में इसका संकेत नहीं है। अथवा, चाहे अनुमानसे विभीषणने समझा कि इस सेनासे और प्रभुसे अमर होनेके लिये ही यह यज्ञ होगा। इसके अतिरिक्त यज्ञ और किसलिये हो सकता था? (ग)☞ मेघनादके विषयमें कहा था कि *'नाथ बेगि सो जीति न जाई'* और यहाँ रावणके विषयमें कहा कि *'नहिं मरिहि अभागा'*—यह क्यों? मेघनादसे रावणमें अधिकता दिखानेके विचारसे ऐसा कहा। (घ) *'अभागा'* इति। रामविमुख होनेसे अभागा कहा। यथा *'ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी॥'* (वि० १४०) पुनः श्रीरामजीको नर समझता है, इसीसे उनसे अजेय होनेके लिये यज्ञ करता है, अतः अभागा कहा। यथा—*'सो नर क्यों दससीस अभागा॥'* (२६। ४) पुनः, उनके हाथसे मरनेसे भी मोक्ष होगा, यह न सोचकर उनसे अजेय होनेकी मूर्खता कर रहा है; अतः अभागा कहा।

पठवहु नाथ* बेगि भट बंदर। करहिं बिधंस आव दसकंधर॥ ३॥
प्रात† होत प्रभु सुभट पठाए। हनुमदादि अंगद सब धाए॥ ४॥

अर्थ—हे नाथ! शीघ्र योद्धा बंदरोंको भेजिये जो जाकर यज्ञको विध्वंस करें जिससे दशकंधर आवे॥ ३॥ सबेरा होते ही प्रभुने वीर योद्धाओंको भेजा। हनुमान्, अङ्गद आदि (प्रधान) सब सुभट दौड़ चले॥ ४॥

नोट—१ यहाँ रावण-वध-प्रसङ्गमें हनुमान्‌जी आदिमें हैं, शेष सब उनके पीछे हैं और मेघनाद-प्रसङ्गमें अङ्गद आदिमें थे, यथा—*'आयसु माँगि राम पहिं अंगदादि कपि साथ॥'*, *'सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥'* (७४। ६), *'अगंद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥'* (७४), *'धन्य-धन्य तव जननी कह अंगद हनुमान॥'* (७५) अङ्गदको आदिमें देनेका भाव (७४। ६) में दिया गया है। हनुमान्‌जीको यहाँ आदिमें देनेका भाव यह भी है कि रावणसे इनका मुकाबिला अभी-अभी हो चुका है। इनका बल देख वह विस्मित हो चुका है। यथा—*'देखि दसानन बिसमय पायेउ॥'* (८३। ५)

नोट—२ *'हनुमदादि अंगद'*। (क) इन दोके नाम दिये, शेषके न दिये। क्योंकि रावणके मुकाबलेमें ये दोनों परीक्षामें उत्तीर्ण हो चुके हैं; इस ग्रन्थमें अभीतक रावणका सामना इन्हींने किया है। पुनः हनुमान् और अङ्गदका नाम इसलिये दिया कि अ० रा० १० में भी यही दो नाम इस प्रसङ्गमें आये हैं। यथा '**अतो विघ्नाय होमस्य प्रेषयाशु हरीश्वरान्। तथेति रामः सुग्रीवसम्मतेनाङ्गदं कपिम्॥**' (अ० रा० १०। १५), '**हनूमत्प्रमुखान् वीरान् आदिदेश महाबलान्।**' अर्थात् इसलिये होमके विघ्नके लिये बड़े-बड़े वानरोंको शीघ्र भेजिये। 'बहुत-अच्छा' कहकर सुग्रीवकी रायसे श्रीरघुनाथजीने अङ्गद और हनुमान् आदि बड़े-बड़े महाबलवान् वानरोंको आज्ञा दी।

पुनः, (ख) हनुमान्‌जीको आदिमें और अङ्गदको अन्तमें देकर जनाया कि जो प्रधान वानर मेघनाद-

* देव—(का०), नाथ (भा० दा०)। † प्रभात (भा० दा०), प्रात—(का०)।

यज्ञ-विध्वंसके लिये भेजे गये थे जिनमेंसे अङ्गद आदिमें और हनुमान्‌जी अन्तमें कहे गये थे; वे ही सब यहाँ भी गये। यथा—*'अंगद नील मयंद नल संग सुभट हनुमंत॥'* (७४) पुनः, (ग)—अ० रा० १०। १७ में लिखा है कि १० करोड़ महाबली वानर गये। अतः *'आदि'* पदसे वह संख्या जना दी है।

पं०—*'देव'* अर्थात् आप दिव्य हैं, सबके प्रकाशक हैं, सब जानते हैं, मैं तो सेवककी तरह विनय करता हूँ। २—*'प्रात होत'* का भाव कि—समाचार सुनाते रात बीत गयी इतनेमें सबेरा हो गया। अथवा यज्ञ दिनभर होना है इससे रातमें न उपाय किया। वा, रातमें निशाचरोंका बल अधिक होता है और इन्हें घरके भीतर भेजना है।

☞ लक्ष्मण-मेघनाद-युद्धमें भेजनेमें अङ्गदको आदिमें कहा, पर कार्य करनेमें हनुमान्‌जी अगुआ हैं; यथा—*'तब लगि लेइ आएउ हनुमाना॥'* (५४। ८), *'कोपि मरुतसुत अंगद धाये। हति त्रिसूल उर धरनि गिराये॥'* (७५। ६), *'उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहिं कोपि तेहि घाउ न बाजा॥'* (७५। ८), *'बिनु प्रयास हनुमंत उठायो॥'* (७६। १) प्रकरणमें चार बार अङ्गदका नाम प्रथम आया है—वैसे ही कार्य करनेमें हनुमान्‌जीका नाम चार बार आया है, यह उपर्युक्त उद्धरणोंसे स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार अङ्गद और हनुमान्‌जीको कविने बराबर सम्मान दिया है।

इसी प्रकार राम-रावण-युद्ध-प्रकरणमें पाँच स्थलोंपर अङ्गदकी प्रधानता देख पड़ती है और पाँच स्थलोंपर हनुमान्‌जीकी। इस प्रकार इस प्रकरणमें भी दोनोंको कविने समान आदर दिया है।

श्रीअङ्गदजीकी प्रधानता यथा—(१) *'उत प्रचार दसकंधर इत अंगद हनुमान॥'* (७९), (२) *'चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अंगद हनुमाना॥'* (८१। ६), (३) *'अस कहि अंगद मार्‌यो लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥'* (८२। ८), (४) *'देखि बिकल सुर अंगद धाएउ। कूदि चरन गहि भूमि गिरायउ॥'* (९६। ८), (५) *'बालितनय मारुति नल नीला॥'* (९७। ३)

श्रीहनुमान्‌जीकी प्रधानता यथा—(१) *'देखि पवनसुत धायउ बोलत बचन कठोर॥'* (८२), (२) *'प्रात होत प्रभु सुभट पठाये। हनुमदादि अंगद सब धाये॥'* (८४। ४), (३) *'देखा श्रमित बिभीषन भारी। धायउ हनूमान गिरि धारी॥'* (९४। १), *'रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥'* (२), (४) *'हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे॥'* (९५ छंद), (५) *'हनुमदादि मुरछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥'* (९७। ११)

मेघनाद-यज्ञविध्वंसमें यज्ञविध्वंस करनेमें किसीका नाम विशेष नहीं दिया गया, यथा—*'कीन्ह कपिन्ह सब जग्य बिधंसा।'* पर यहाँ रावण-यज्ञविध्वंसमें, यद्यपि भेजे जानेमें हनुमान्‌जीको प्रधान किया है तथापि अङ्गदको प्रधान रखा है। उन्होंने मंदोदरीको घसीटा, इत्यादि। विभीषणकी सहायता हनुमान्‌जीने की तो देवताओंकी व्याकुलता अङ्गदने हरी, लक्ष्मणजीको उठाते देख हनुमान्‌जीने रावणको घूँसा मारा तो यज्ञसे न उठनेपर अङ्गदने रावणको लात मारी। इस प्रकार ग्रन्थकारने इन दोनोंकी वीरता बराबर समान दिखायी है। क्योंकि दोनोंको ही सुबेल पर्वतपर प्रभु चरण सौंप चुके हैं।

कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका। पैठे रावन भवन असंका॥ ५॥
जग्य करत जबहीं* सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥ ६॥

अर्थ—वानर कौतुक ही कूदकर लङ्कापर चढ़ गये और निर्भय होकर रावणके महलमें घुस गये॥ ५॥ ज्यों ही उसे यज्ञ करते हुए देखा त्यों ही समस्त वानरोंको बहुत क्रोध हो आया॥ ६॥

नोट—१ (क) *'कूदि चढ़े'* का भाव कि फाटक बंद थे और कोई रास्ता भीतर जानेका न था। अ० रा० से भी यही बात सिद्ध होती है। यथा—'**प्राकारं लङ्घयित्वा ते गत्वा रावणमन्दिरम्॥ दशकोट्यः प्लवंगानां गत्वा मन्दिररक्षकान्। चूर्णयामासुरश्वांश्च गजांश्च न्यहनत्क्षणात्॥'.........गुहापिधानपाषाणमङ्गदः पादघट्टनैः। चूर्णयित्वा महासत्त्वः प्रविवेश महागुहाम्॥ दृष्ट्वा दशाननं तत्र मीलिताक्षं दृढासनम्। ततोऽङ्गदाज्ञया**

* जबहीं जग्य करत सो देखा—(का०)।

सर्वे वानरा विविशुर्द्रुतम्॥' (अ० रा० १०। १६—२०) अर्थात् उन्होंने चहारदीवारीको लाँघकर रावणके मंदिरमें प्रवेश किया। १० करोड़ वानरोंने जाकर क्षणमात्रमें रक्षकों, घोड़ों, हाथियों आदिको चूर्ण कर डाला। कंदराके द्वारवाले पाषाणको महाबलवान् अङ्गद पैरोंसे चूर्ण करके गुहामें घुस गये और वहाँ रावणको दृढ़ासन लगाये नेत्र मूँदे बैठे देखकर सब वानर उनकी आज्ञासे गुहामें घुस पड़े। (अ० रा० १०) (ख) '*असंका*' क्योंकि अब तो कोई सुभट ऐसा है नहीं जो रोक सके।

पं०—'*भा क्रोध बिसेषा*'।—शत्रुको अपने अनिष्टमें परायण देखकर देवकार्यमें बाधक जानकर क्रोध हुआ—(अपने स्वार्थकी हानि देख क्रोध होना स्वाभाविक ही है)।

रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥ ७॥
अस कहि अंगद मारेउ* लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥ ८॥

अर्थ—अरे निर्लज्ज! तू रणभूमिसे घर भाग आया और यहाँ आकर बगलेका-सा ध्यान लगाया है॥ ७॥ ऐसा कहकर अङ्गदने लात मारी; पर उसने (इनकी ओर) न देखा, क्योंकि उस शठका मन स्वार्थमें अनुरक्त (लगा हुआ) था॥ ८॥

नोट—१ (क) '*निलज*'—रणमें बड़े दावेसे गया था। यथा '*निज भुजबल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥*' (७७। ६), '*हौं मारिहउँ भूप द्वौ भाई।*' (७८। १२), '*खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती। आज निपाति जुड़ावउँ छाती॥*' (८२। २) रणसे भाग आना लज्जाकी बात है। तभी तो मेघनाद मूर्च्छित होकर लङ्कामें गिरनेपर पिताको देखकर लज्जित हुआ था। यथा—'*पितहि बिलोकि लाज अति लागी।*' (७४। १) सुमन्त्रजी श्रीरामजीको लौटा लाने गये और छूछे आये, तब भी कहा है—'*बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥*''''''''*सचिव सोच तेहि भाँति॥*' (२। १४४) वस्तुतः वह भागकर नहीं आया था, सारथी उसे उठा लाया था। पर मूर्छा विगत होनेपर तो उसे तुरत लौट आना था। अथवा सारथीको डाँटना था कि रणभूमिसे क्यों ले आया जैसे दूसरी बार उसने किया है। यथा—'*सठ रन भूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥*' (९९। ८) इससे स्पष्ट है कि रावणके लिये यह लज्जाकी बात थी। अतः निर्लज्ज कहा। अथवा, उसे यज्ञसे उठाना था इससे '*भाजि गृह आवा*' कहा।

नोट—२ (क) '*बक ध्यान*'—ऐसी चेष्टा, मुद्रा या ढंग जो देखनेमें तो बहुत साधु और उत्तम जान पड़े पर जिसका वास्तविक उद्देश्य बहुत ही दुष्ट वा अनुचित हो। जैसे बगला आँख बन्दकर जलाशयपर बैठता है मानो ध्यान लगाये है, भोला-भाला साधु है, पर मछली सामने आयी नहीं कि हड़प लिया। रावण अपना बुरा उद्देश्य सिद्ध करनेके लिये एकाग्रचित्त हो बैठा है मानो क्षमाशील साधु है; इसीसे '*बक ध्यान*' पद दिया। (ख) '*बक ध्यान*' कहकर यहाँ '*स्वारथ मन राता*' उसका धर्म कहा। बकध्यानसे जनाया कि आँख मूँदे हुए है। अतः आगे '*चितव न*' कहा।

नोट—३ '*स्वारथ मन राता*'—स्वारथ यह है कि यदि क्रोध करूँ या यज्ञसे उठ पड़ूँ तो यज्ञ निष्फल हो जायगा, इससे क्षमा करके लात भी सह रहा है। (पं०) जयकी इच्छा एवं शत्रुसे अजय होनेकी अभिलाषा ही स्वार्थ है, यथा—'*करउँ अजय मख मन अस धरा*' (मेघनाद) मनमें अजय-यज्ञकी धारणा करना ही स्वार्थ है। यथा अध्यात्मरामायणे—'**घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः। न जहौ रावणो ध्यानं हतोऽपि विजिगीषया॥**' (१०। २३) अर्थात् वानर उसे दाँतोंसे काटते हैं, लकड़ीसे मारते हैं; इसपर भी जयका इच्छुक रावण ध्यानको नहीं छोड़ता।

नोट—४ (क) पूर्व '*भा क्रोध बिसेषी*' कहा, यहाँ उसका स्वरूप '*परुष बचन*' कहा। '*रन ते निलज भाजि गृह आवा*''''''''' यह कठोर वचन है। (ख) यहाँ मन, वचन और कर्म तीनोंसे क्रोध दिखाया। —'*क्रोध बिसेषी*' (मन), '*रन ते निलज*'''''''*। अस कहि*'—वचन, और, '*मारेउ लाता*' कर्म है।

नोट—५ ☞ इस प्रसङ्गमें प्रधान तो श्रीहनुमान्‌जी हैं, पर कार्य अङ्गदजीने किया।

* मारा—(भा० दा०) मारेउ (का०)।

छंद—नहिं चितव जब करि कोप कपि* गहि दसन्ह लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेति दीन पुकारहीं॥
तब उठेउ कुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मन महुँ हारई॥

अर्थ—जब उसने आँखें न खोलीं तब वानर कोप करके उसे दाँतोंसे काटने और लातोंसे मारने लगे। उसकी स्त्रियोंके बाल पकड़कर उनको बाहर निकाल लाये, वे अत्यन्त दीन होकर पुकारने लगीं। तब वह क्रोधित कालके समान उठा और वानरोंके पैर पकड़कर फेंकने, गिराने, पटकने व यज्ञमें डालने लगा। इसी बीचमें वानरोंने यज्ञ विध्वंस कर डाला, यह देख वह मनमें हारने लगा।

नोट—१ (क) *'करि कोप'* इति। पूर्व तो कोप कह आये अब यहाँ फिर कैसे कहा कि कोप किया? उत्तर—फिर कोप करना लिखकर जनाया कि जब लात मारी तब प्रथम क्रोध कुछ शान्त हो गया था। इसीसे यहाँ फिर *'करि कोप'* कहा। वा, पूर्व क्रोध स्वयं अपनेसे मनमें हो आया था और अब ये अपनी तरफसे कोप करते हैं; इसीसे पूर्व *'भा क्रोध'* और अब *'करि कोप'* कहा। इस प्रकार पूर्ववाले क्रोधकी मात्रा बढ़ाते हैं। (ख) *'गहि दसन्ह………'* इति। मिलान कीजिये—'**तत्र कोलाहलं चक्रुस्ताडयन्तश्च सेवकान्। संभारांश्चिक्षिपुस्तत्र होमकुण्डे समन्ततः॥ स्रुवमाच्छिद्य हस्ताच्च रावणस्य बलाद्रुषा। तेनैव संजघानाशु हनुमान्प्लवगाग्रणी॥ घ्नन्ति दन्तैश्च काष्ठैश्च वानरास्तमितस्ततः।**' (अ० रा० १०। २१—२३) अर्थात् उस गुहामें वानर उन सबको मारते-पीटते बड़ा कोलाहल करने लगे। जो सामग्री थी वह सब होमकुण्डमें छोड़ दी। रावणके हाथसे स्रुवाको जबरदस्ती छीनकर वानरोंमें अग्रगण्य हनुमान्जी उसीसे उसको मारने लगे।

नोट—२ *'पुकारहीं'* और *'ते'* बहुवचन पद देकर जनाया कि सभी स्त्रियोंको निकाल लाये। ☞ यहाँ मन्दोदरीको कौन लाया, यह न कहा। अ० रा० १०। २४ में अङ्गदका घसीट लाना वर्णित है। यथा '**प्रविश्यान्तःपुरे वेश्मन्यङ्गदो वेगवत्तरः। समानयत्केशबन्धे धृत्वा मन्दोदरीं शुभाम्॥**' और विनयमें हनुमान्जीका उसे घसीट लाना कहा है, यथा—*'जयति मंदोदरी केसकर्षन बिद्यमान दसकंठ भट मुकुट मानी।'* (वि० २९) मतभेदके कारण यहाँ मन्दोदरीका पृथक् नाम देकर नहीं कहा। केवल *'नारि'* पद दे दिया, इसमें वह भी आ गयी। रामचंद्रिकामें भी अङ्गद इस प्रसंगमें मुख्य हैं। पद बड़ा मनोरम और पढ़नेयोग्य है; पर यह नहीं मालूम कि किस आधारपर केशवदासजीने यह चरित-चित्रण किया है। वह पद यह है—*'भजी देखि कै शंकि लंकेशबाला। दुरी दौरि मंदोदरी चित्रशाला॥ तहाँ दौरि गो बालिको पूत फूल्यो। सबै चित्र की पुत्रिका देखि भूल्यो॥ गहै दौरि जाको तजै ताकि ताको। तजै जा दिशाको भजैं बाम वाको॥ भले कै निहारी सबै चित्र सारी। लहै सुंदरी क्यों दरीको बिहारी॥'* (१—४)

वि० त्रि०—मेघनाद तो बंदरोंके लात मारनेको न सहकर उठ पड़ा और त्रिशूल लेकर दौड़ा। परंतु रावणने तो अङ्गदके लात मारनेपर आँख उठाकर भी नहीं देखा (यथा—*'अस कहि अंगद मारेहु लाता। चितव न सठ स्वारथ मन राता॥'*) बंदर लोग दाँतसे काटते हैं, लात मारते हैं पर वह स्वार्थको आगे किये हुए सब सहता जाता है। तब हनुमान्जीने यह युक्ति की कि मन्दोदरीका केश पकड़कर खींच लाये। रावणके रहते मन्दोदरीका केश पकड़कर खींचनेका साहस त्रैलोक्यमें दूसरा कौन कर सकता था? यथा—*'जयति मन्दोदरी केसकर्षन बिद्यमान दसकंठ भट मुकुट मानी।'* तब रावण नहीं सह सका; क्रोध करके उठा पर हनुमान्जीपर चोट करनेका फिर भी साहस नहीं हुआ। कवि कहते हैं कि *'गहि चरन बानर डारई।'*

नोट—३ (क) यहाँ रावणके साथ उसको यज्ञसे उठाकर बाहर लानेमें तीन प्रकारके उपाय एकके बाद एक किये गये। प्रथम तो अङ्गदने कठोर वचन कहे और साथ ही उसे एक लात मारी। फिर क्रोधपूर्वक उसे पकड़-पकड़ सभीने लातें मारीं और दाँतोंसे काटा। इसपर भी न उठा तब मन्दोदरी आदि स्त्रियोंकी चोटियाँ पकड़े, घसीटते बाहर उसके सामने निकाल लाये, इस विचारसे कि अपने सामने अपनी

* कपि कोपि तब—(का०)

स्त्रियोंकी दुर्गति देखकर कैसा भी निर्लज्ज हो वह भी न सह सकेगा।

प्रथम उपायसे दूसरा अधिक था (पहले अङ्गदने लात मारी, दूसरेमें सब लात मारते और सब काटते हैं) और दूसरेसे तीसरा अधिक—यह अन्तिम उपाय था, इससे सफल हुए। यह सार अलङ्कार है। (ख)—वीर स्त्रियोंपर हाथ नहीं चलाते। पर ये बहुत क्रोधमें भरे हुए हैं—*'सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषी'।* क्रोधमें उचितानुचितका विचार नहीं रहता। *'तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्रजाति कर रोष'* (२३) यहाँ 'शत्रुपक्षीय प्रत्यनीक अलङ्कार' है। दूसरा कारण हाथ चलानेका यह है कि रावणने श्रीसीताजीको जबरदस्ती हरण किया था, दुर्वचन कहे थे, अशोकवनमें उनके वचन सुन मारने दौड़ा था, इत्यादि, सब अपमानोंके बदलेमें वानरोंने उसकी स्त्रियोंकी दुर्गति की। रावणने श्रीरामजीकी अनुपस्थितिमें उनका अपमान किया और इन्होंने रावणके सामने उसकी रानियोंको बेइज्जत किया।

बं० पा०—रावणने स्वतः ऐसा किया था और यहाँ दासोंने ऐसा किया, क्योंकि श्रीरामजी परस्त्रीका स्पर्श नहीं करते।

शीला—रावणने लोकमें चार प्रकारके दण्ड किये—अग्निदण्ड, चौरदण्ड, राजदण्ड और धर्मदण्ड। इन चारोंका बदला श्रीरामचन्द्रजीने उसको उसी प्रकारसे दिया—

(१) अग्निदण्ड—*'जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाँव पुर आग लगावहिं॥'*, यह रावणके दूतोंने किया। इसका बदला अपने दूत हनुमान्‌जीद्वारा उन्होंने लिया कि लङ्का ही जला दी।

(२) चौरदण्ड—'रावणने (चोरीसे) सीताहरण किया' यथा—*'सो दससीस स्वान की नाईं। इत उत चितइ चला भड़िहाईं॥'* श्रीरामजीने अपने हाथोंसे उसको चौरदण्ड दिया, यथा—*'छत्र मुकुट ताटंक सब हते एक ही बान। सबके देखत महि परे मरम न काहू जान॥'* रावणपर क्रमालङ्कारसे यह दण्ड किया है—प्रथम छत्रभङ्गसे मानो राज्य छीना, मुकुटसे मानो सिर काटे, ताटङ्क गिरे मानो तरकी उतार ली।'

(३) राजदण्ड—रावणने अयोग्य राजदण्ड किया कि ऋषियोंसे रुधिररूपी कर लिया। श्रीरामजीने अङ्गदको अकेले अस्त्ररहित भेजकर इसका बदला लिया कि सब उसकी *'लात'* से हार गये, कोई चरणको न हटा सका।

(४) धर्मदण्ड—कुबेरके पुत्र नलकूबरकी वधूसे शिवपूजनके समय रावणने बलात्कार किया। इसका दण्ड रावणको यज्ञ करते समय यहाँ दिया गया कि वानरोंने उसकी मन्दोदरी आदि समस्त रानियोंको उसके सामने बाल पकड़कर घसीटकर नग्न कर दिया।

नोट—४ *'तेति दीन पुकारहीं'* इति। दीन होकर पुकारती हैं जिसमें रावणको एवं इनको करुणा आवे। —**'क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम्'**। (ख) यह भी जनाया कि उन्हें नंगी कर दिया इसीसे वे अति दीन हैं। (ग) दीन वचन यह कि तेरे आगे ही हमारी यह दशा और तुझे वीर होकर भी लज्जा नहीं, यथा—*'तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ।'*, (शूर्पणखा-वाक्य) तुझे मर मिटना था, तूने श्रीरामजीकी स्त्रीका अपमान किया उसीका यह फल हमको मिल रहा है, करे तू और फल भोगें हम? इत्यादि। यथा—*'भूमिजा दुःख संजात रोषांतकृत जातना जंतुकृत जातुधानी।'* (वि० २९)

☞ मिलान कीजिये—**'रावणस्यैव पुरतो विलपन्तीमनाथवत्। विददाराङ्गदस्तस्याः कञ्चुकं रत्नभूषितम्॥' 'देवगन्धर्वकन्याश्च नीता हृष्टैः प्लवङ्गमैः। मन्दोदरी रुरोदाथ रावणस्याग्रतो भृशम्॥ क्रोशन्ती करुणं दीना जगाद दशकन्धरम्। निर्लज्जोऽसि परैरेवं केशपाशे विकृष्यते॥ भार्या तवैव पुरतः किं जुहोषि न लज्जसे। हन्यते पश्यतो यस्य भार्या पापैश्च शत्रुभिः॥ मर्तव्यं तेन तत्रैव जीवितान्मरणं वरम्। हा मेघनाद ते माता क्लिश्यते वत वानरैः॥ त्वयि जीवति मे दुःखमीदृशं च कथं भवेत्। भार्या लज्जा च संत्यक्ता भर्त्रा मे जीविताशया॥ श्रुत्वा तद्देवितं राजा मन्दोदर्या दशाननः। उत्तस्थौ खड्गमादाय त्यज देवीमिति ब्रुवन्॥'** (अ० रा० १०। २५। २८—३३) अर्थात् रावणके देखते-देखते उसके आगे रोती हुई मन्दोदरीका रत्नभूषित कञ्चुक फाड़ डाला। देवगन्धर्वकी

कन्याओंको वानर प्रसन्नतापूर्वक पकड़कर रावणके आगे लाये। मन्दोदरी उसके आगे अत्यन्त रोने लगी। करुणापूर्वक अत्यन्त दीन चिल्लाती हुई मन्दोदरी रावणसे बोली—'तू निर्लज्ज है कि अपनी स्त्रियोंको झोंटा पकड़े घसीटी जाती देखकर भी होममें लगा है, लज्जा नहीं लगती। पापी शत्रुओंद्वारा जिसकी स्त्री उसके देखते मारी जाय उसको वहीं मर जाना चाहिये। उसके जीनेसे मरना अच्छा। हा मेघनाद! बड़ा खेद है, तेरी माता वानरोंसे क्लेशित हो रही है। तुम्हारे रहते हमारी यह दशा क्यों हो? जीनेकी आशासे हमारे पतिने लज्जा और स्त्री सबको त्याग दिया। उस मन्दोदरीका रोदन सुनकर राजा रावण तलवार लेकर 'देवीको छोड़' ऐसा कहता हुआ उठा।'—(नोट—यह प्रसङ्ग अ० रा० में मेघनादवधके पूर्वका है। इसीसे वहाँ मेघनादका नाम लेकर कह रही है। मानसमें इसको लेकर विलाप इस प्रकार होता होगा कि 'हा मेघनाद! तू जीता होता तो हमारी यह दुर्गति कदापि न होती। तेरा पिता तो निर्लज्ज है, देख रहा है और कुछ बोलता भी नहीं। तू यह कब सह सकता!')

दो०—जज्ञ बिधंसि कुसल कपि* आये रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥ ८४॥

अर्थ—यज्ञविध्वंसमें सब कुशल (निपुण) कपि यज्ञ विध्वंस करके कुशलपूर्वक श्रीरघुनाथजीके पास आये। तब निशाचर रावण जीनेकी आशा छोड़कर कुपित होकर चला॥ ८४॥

नोट—१ *'कुसल', 'कपि'* और *'आये'* दोनोंके साथ लगता है। कुशलपूर्वक आना इससे हुआ कि यज्ञविध्वंसका कार्य करके तुरंत लौट पड़े। नहीं तो उसके क्रोधावेशमें कुशल कहाँ? पुनः, *'कुसल'* इससे कहा कि पूर्व मेघनाद-यज्ञ भी विध्वंस कर आये थे। अतः इस कार्यमें कुशल हैं।

पां०—*'त्यागि जिवन कै आस'।* भाव कि अभीतक तनसे हारा था, मनसे नहीं। जब यज्ञविध्वंस देखा तब मनसे भी हार गया; क्योंकि यज्ञके नाशसे उसका नाश होगा—यह देवताने कहा था। [शुक्राचार्यके वचनोंमें यह बात नहीं है। जीनेकी आशा न रहनेका कारण एक तो यही है कि श्रीलक्ष्मणजीने दो बार उसे मरणप्राय कर दिया था, इन्हींके हाथसे बचना कठिन है और श्रीरामजी युद्धमें आये तब तो न जाने क्या हो! इनसे अजेय होनेके लिये यज्ञ किया सो पूरा न हुआ, अतः अब जय कठिन समझकर जीनेसे निराश हो गया।]

नोट—२ *'त्यागि जिवन कै आस'* कहकर प्रथम ही जना दिया कि अब यह अपना अद्भुत पूर्ण पराक्रम दिखायेगा। जब प्राणी प्राणसे हाथ धो बैठता है तब वह अपनी शक्तिसे बाहर कहीं अधिक पुरुषार्थ करता है, जी-जानपर खेलता है। इसी तरह प्रथम दिनके दूसरे युद्धमें जब निशिचरोंको रावणने डाँटा और उन्होंने *'तजा प्रान कर लोभा'* तब वानर-सेनाको उन्होंने आकर व्याकुल कर दिया था।

☞ शल्यपर्वमें दुर्योधन-भीम-युद्धके समय भगवान्‌ने शुक्राचार्यकी नीति अर्जुनसे बताते हुए कहा है कि 'युद्धमें मरनेसे बचा हुआ शत्रु यदि प्राण बचानेके लिये भाग जाय और फिर युद्धके लिये लौटे तो उससे डरते रहना चाहिये, क्योंकि वे एक निश्चयपर पहुँचे हुए होते हैं। उस समय वे मृत्युसे नहीं डरते। जो जीवनकी आशा छोड़कर साहसपूर्वक युद्धमें कूद पड़े, उसके सामने इन्द्र भी नहीं ठहर सकते।'

चलत होहिं अति असुभ भयंकर। बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर॥ १॥
भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना॥ २॥

अर्थ—चलते समय उसको अत्यन्त भयङ्कर अमङ्गल होने लगे। गृध्र उसके सिरोंपर उड़कर बैठते हैं॥ १॥ वह रावण कालके वश हो गया है, वह किसीकी बात एवं किसी अपशकुनको नहीं मानता। उसने युद्धके डंके बजानेकी आज्ञा दी॥ २॥

* मष विधंसि कपि कुसल सब—(का०)।

नोट—१ '*अति असुभ*.........' का भाव कि पूर्व जब रावण रणभूमिमें आया था तब भी अपशकुन हुए थे, पर वे भयावनेमात्र थे, यथा—'*असगुन अमित होहिं तेहि काला*.........*जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥ ७७॥*' और अब 'अति भयंकर' है। '*अति भयंकर*' अर्थात् अब प्राणघातसूचक अमंगल हो रहे हैं, यथा—'**ततो निष्पततो युद्धे दशग्रीवस्य रक्षसः। रणे निधनशंसीनि रूपाण्येतानि जज्ञिरे॥**', '.........**एतानचिन्तयन् घोरानुत्पातान् समवस्थितान्। निर्ययौ रावणो मोहाद्वधार्थं कालचोदितः॥**' (वाल्मी० ९५। ४६—४८) अर्थात् जब रावण युद्धके लिये चला तब उसे मरणसूचक ये चिह्न दिखायी दिये। पर वह मोहवश कालप्रेरित अपने वधके लिये चला।—अपशकुनोंका वर्णन विशेष '*असगुन होहिं न जाहिं बखानी।*' (४७। ७) में देखिये।

नोट—२ (क)—'*बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर*'। यह अति भयङ्करता दिखाते हैं कि पूर्व '*गोमायु गीध कराल खर रव*.........' अर्थात् गृध्र भयावने शब्द करते थे, अब वे निःशंक उड़-उड़कर इसके सिरोंपर आ बैठते हैं। अर्थात् वे उसे मानो अभीसे मरा हुआ समझकर खाने आते हैं। यह मृत्युसूचक अशुभ है। '*उड़ाइ*' का भाव कि बारम्बार उड़ते हैं फिर आ बैठते हैं, क्योंकि वह अभी जीवित है। वाल्मी० ९५ में गृध्रोंका ध्वजाके अग्रभागपर आ बैठना कहा है, यथा—'**ध्वजाग्रे न्यपतद्गृध्रो विनेदुश्चाशिवाः शिवाः॥**' (४४) (ख) '*भयउ कालबस*' यह भी अति भयङ्करताका स्वरूप है। पूर्व '*जनु कालदूत उलूक बोलहिं*' से कालदूतोंका आगमन उत्प्रेक्षामात्रसे जनाया था और अब स्वयं कालने आकर अपने वश कर लिया। पुनः, पहले काल इसके वशमें था—'*भुज बल जितेहु काल जम साईं।*' (१०३। ८) और अब अपशकुन जनाते हैं कि वह कालके वश स्वयं हो गया। (ग) '*कालबस काहु न माना*'—ऐसा ही प्रहस्तादिने भी कहा है। यथा—'*हित मत तोहि न लागत कैसे। काल बिबस कहँ भेषज जैसे।*' (१०। ५), '*मंदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि काल बस मति भ्रम भयऊ॥*' (१६। ८), '*मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना॥*' (८। ६) '*काल बिबस पति कहा न माना। अग जग नाथ मनुज करि जाना॥*' (१०३। १३) क्या बात न मानी? यह पूर्व ग्रन्थकार दोहा ३६ (६), १४ (८), ९ (५-६) इत्यादिमें कह आये हैं। श्रीरामजी मनुष्य नहीं हैं, चराचरनाथ हैं, इनसे वैर करनेसे कुशल नहीं, मृत्युसूचक अपशकुन हो रहे हैं, युद्धमें इस समय जानेसे कल्याण नहीं है। इत्यादि बातें हैं जो उसने न मानीं। पूर्व ७ (९) में असगुन हुए तब भुजबलके विशाल गर्वके कारण उनको कुछ न गिनना कहा था। यथा—'*असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुजबल गर्ब बिसाला॥*' अब भुजबलका गर्व चूर्ण हो गया तब कालवश '*काहु न माना*' कहा। ७७ (९) के अनुसार यहाँ '*काहु न माना*' का अर्थ '*गनै न*' (अर्थात् काहु सगुनको न माना) भी ले सकते हैं। (घ)—'*जुद्ध निसाना*'—युद्धके बाजे, मारू राग बजनेवाले बाजे; यथा—'*पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं॥ भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई॥*' (७८, ८-९) जो प्रथम युद्धमें बजे थे वही यहाँ भी जानिये।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥ ३॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे॥ ४॥

शब्दार्थ—पदाति=वह जो पैदल चलता हो, पैदल सिपाही।

अर्थ—निशाचरोंकी अपार सेना चली। उसमें बहुत-से गज, रथ, पैदल और घुड़सवार हैं॥ ३॥ वे दुष्ट प्रभुके सामने ऐसे दौड़े जैसे पतंगोंका समूह अग्निकी ओर (जलनेको) चले॥ ४॥

नोट—१ '*बहु गज रथ पदाति असवारा*' इति। गज, रथ, पैदल और सवार (सवारमें घोड़े भी आ गये) से चतुरंगिणी सेना जनायी।

पूर्व कहा—'*चलेउ निसाचर कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥*' (७८। १)

अब कहा—'*चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा॥*'

इससे जनाया कि पूर्व-युद्धमें जैसी सेना साथ थी वैसी ही अब भी है। पूर्व कई श्रेणियाँ थीं—'**बहु** *धारा*'। अबकी बार '*धारा*' पद नहीं है। क्योंकि अब सेना कम रह गयी है। बची हुई सेना लेकर चला।

मिलान कीजिये—'**स विचार्य सभामध्ये राक्षसः सह मन्त्रिभिः। निर्ययौ येऽवशिष्टास्तैः राक्षसैः सह राघवम्॥ शलभः शलभैर्युक्तः प्रज्वलन्तमिवानलम्।**' (अ० रा०) अर्थात् रावण मन्त्रियोंसहित सभामें विचारकर, बचे हुए राक्षसोंसहित रामजीके सम्मुख चला। जैसे जलती हुई अग्निमें पतङ्गसमूह जा गिरते हैं।

नोट—२ यहाँ 'उदाहरण' अलङ्कार है।

नोट—३ '*सलभ समूह अनल कहँ जैसे*' इति। (क) पतंगे स्वयं आगके पास जा उसमें गिरकर मर जाते हैं, वैसे ही ये सब श्रीरघुनाथजीके रोषानल वा शरानलमें पड़कर जलेंगे। पतंगे रागसे अग्निके समीप जाते हैं और ये द्वेषसे प्रभुके सम्मुख आ रहे हैं। वा, यह कहें कि दोनों मोहवश प्राण गँवाते हैं, यथा—'*जरहिं पतंग बिमोहबस*' (अङ्गदवचन), और रावण तो मोहका स्वरूप ही है,—'*मोह दसमौलि*'—(विनय०), '*महामोह ममता मद त्यागू।*'—(कालनेमि) (ख)—☞ यहाँ भक्तराज श्रीजटायु और श्रीलक्ष्मणजीके वचनोंका चरितार्थ है—

श्रीलक्ष्मणोक्ति—'*होहि कि राम सरानल खल कुल सहित पतंग।*' (५। ५६)

श्रीजटायु-वाक्य—'*राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा॥*' (३। २९। १७)

(ग)—यहाँ '*अनल*' की उपमा दी, दीपककी नहीं, क्योंकि निशिचर अपार हैं। पतंगोंका समूह है, इनसे दीपक बुझ जायगा, अग्नि बुझेगी नहीं वरन् प्रचण्ड हो जायगी।

रा० प्र०—जैसे पतंगे अपने साथियोंको अग्निमें भस्म होते देखकर भी उसमें जा गिरते हैं, वैसे ही ये सब दुष्ट देख रहे हैं कि प्रभुके शरानलमें सब राक्षस भस्म होते जाते हैं तब भी मोहवश उनसे युद्ध करने जाते हैं।

इहाँ देवतन्ह अस्तुति* कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं एहि दीन्ही॥५॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही॥६॥

अर्थ—इधर देवताओंने स्तुति की कि—'हे राम! इसने हम सबोंको असह्य क्लेश दिया है, अब आप इसे खेलाइये नहीं, वैदेही अतिशय दुःखी हो रही है॥ ५-६॥'

नोट—१ '*इहाँ*' से जनाया कि जब रावण उधर सेना तैयार करके चलनेको हुआ, उसी समय इधर देवताओंने आकर यह प्रार्थना की। ग्रन्थकार एक हैं इससे एक स्थानका हाल लिखकर तब दूसरी ओरका समाचार लिखते हैं। (ख) '*दारुन बिपति हमहिं ……*' इति। पहले देवताओंने अपनी विपत्ति कही क्योंकि ये स्वार्थरत हैं, यथा—'*आए देव सदा स्वारथी*'। फिर सोचे कि हमारी विपत्तिपर शीघ्र दया न करेंगे, भक्तका संकट शीघ्र छुड़ाते हैं, उसे नहीं सह सकते, अतः फिर यह कहा कि '*अतिसय दुखित होति बैदेही*'। यथा—'*सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा॥*' (अ० २६५। ५) श्रीसीताजीको दुःखित सुनकर करुणायुक्त हो जायँगे, यह देव जानते हैं, हनुमान्‌जीसे समाचार सुननेपर ऐसा हो चुका है, यथा—'*सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिवनयना॥*' (५। ३२। १) दुःख सुनकर तुरंत चलनेकी तैयारी कर दी थी, यथा—'*अब बिलंबु केहि कारन कीजै। तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजै॥*' (ख)—'*बैदेही*' पदसे जनाया कि इतना कष्ट है कि शरीर रहना कठिन है। (प्र० सं०) अथवा, यह कि वैदेही होनेसे दुःख-सुखको समान माननेवाली होती हुई भी वे अतिशय दुःख होनेसे अब उसे सह नहीं सकतीं। (प० प० प्र०) (ग) श्रीसीताजीका दुःख कहकर अपने दुःख दूर करनेकी प्रार्थनामें 'पर्यायोक्ति अलङ्कार' की ध्वनि है। '*राम*' का भाव कि आप सबमें रमण कर रहे हैं; अतएव आप सबकी जानते हैं। पुनः यहाँ '*खेलावहु*' के सम्बन्धसे (**रमु क्रीडायाम्**के भावसे) '*राम*' पद दिया। भाव यह कि अब क्रीड़ा, कौतुक, खेल छोड़िये।

पं० वि० त्रिपाठीजी—भारी वीर शत्रुको तुरंत नहीं मार देते, उसे अपने पुरुषार्थ दिखानेका पूरा अवसर

* बिनती—(का०)।

देते हैं। इससे उनके मारनेमें देर लगती है। लक्ष्मणजीने मेघनादको अपना पुरुषार्थ दिखानेका पूरा-पूरा अवसर दिया। बंदरोंने समझा कि यह अजय है, लक्ष्मणजीका मारा न मरेगा, अत: डर गये, तब लक्ष्मणजीने उसे मारा। यथा—'*देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा॥ लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥*' यही हाल देवताओंका हुआ, ये भी डरे हुए हैं। यद्यपि जानते हैं कि रावणको भी सरकार खेला रहे हैं। पहिली लड़ाईमें स्वयं नहीं उठे। यद्यपि रावणकी सेना भाग गयी, फिर भी उनका संहार तो नहीं हुआ। अब भी अपार सेना लिये रावण चला आ रहा है और सैनिक भी उत्साहके साथ दौड़े चले आ रहे हैं। (यथा—'*प्रभु सनमुख धाए खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे॥*') अत: उसके लिये विनती करते हैं कि हमलोग तो समझ रहे हैं कि आप रावणको खेलाते हैं पर वैदेही तो ऐसा नहीं समझ सकतीं, वे अत्यन्त दु:खी हो रही हैं (सारांश यह कि बिना सरकारके उठे निशिचरोंका संहार नहीं होगा, अत: दूसरे शब्दोंमें यही प्रार्थना है कि अब सरकार उठें)।

देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना॥ ७॥
जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे। सोहहिं सुमन बीच बिच गाँथे॥ ८॥

अर्थ—देवताओंके वचन सुनकर प्रभु मुसकराये। फिर श्रीरघुनाथजीने उठकर बाण सुधारे॥ ७॥ मस्तकपर जटाओंके जूड़ेको दृढ़ करके (कसकर) बाँधा (जिससे संग्राममें खुल न जायँ), जटाओंके बीच-बीचमें गुँथे हुए फूल शोभित हो रहे हैं॥ ८॥

नोट—१ '*देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना*' इति। '*मुसुकाना*' (क) उनकी चतुरतापर कि अपना भय न कहकर हमारे चित्तमें क्षोभ उत्पन्न करनेके लिये वैदेहीका अतिशय दु:खी होना कहते हैं। (ख)—इससे उनपर अपना अनुग्रह सूचित किया, यथा—'*हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा॥*' (१। १९८। ७) भाव कि हम आपकी प्रार्थना अङ्गीकार करते हैं, शीघ्र आपका दु:ख दूर करेंगे। वा, (ग)—इससे हँसे कि देखिये तो सुरवृन्द अब जानकीजीपर बड़ी मया करते हैं और पहिले सरस्वतीको प्रेरित कर इनको नंगे पैर वनमें भेजवाया था तब दया न थी।—(पं०, पु० रा० कु०) वा, (घ) हँसे यह कि मैं तो सेनासहित क्लेश सह रहा हूँ और देवता इन क्लेशोंको खेल खेलना समझते हैं। पुन:, पहिले तो जानकीजीको वनवास दिलानेकी युक्ति की थी और अब कह रहे हैं कि जानकीजी दु:खित हो रही हैं। अथवा, अपनी लीलाकी विचित्रताको विचार कर हँसे। (मा० म०)

प० प० प्र०—(१) देवता ऐश्वर्यभावसे स्तुति कर रहे हैं। अत: ऐश्वर्यभाव दबाकर उनमें माधुर्यभाव जाग्रत् करनेके लिये अपनी दैवी मायाको हँसकर प्रेरित किया। यथा—'*उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना।*' (१। १९२), '*मन मुसुकाहिं राम सुनि बानी।*' (१। २१६) पुन:, हास्यमें देवोंकी स्वार्थपरायणतापर दृष्टि है कि ये ही सब क्लेशोंके मूल हैं, यहाँ दयाका स्वाँग दम्भ करते हैं। पुन: हँसकर रावण-सेनाके साथ युद्ध करनेको अपनी विद्यामायाको प्रेरित किया। प्रबल शत्रुका संहार करनेकी तैयारीके समय हास्यद्वारा अपनी माया-शक्तिको इस तरह प्रेरित किया करते हैं। यथा—'*देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदंड चढ़ावा॥*' (३। १८। १३), '*दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई॥*' (३। १९। ८), '*निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।*' (६। ८८) '*प्रभु मुसकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥*' (६। १३। ८), '*सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।*' (९५ छन्द) इत्यादि।

नोट—२ मुसुकानेके साथ '*प्रभु*' सामर्थ्यवाचक पद दिया और वीर बाना सजनेके सम्बन्धसे '*रघुबीर*' कहा।

प० प० प्र०—यहाँ '*रघुबीर*' से पञ्चवीरतायुक्त जनाया। देवोंपर कृपा करेंगे (यह कृपावीरता), शत्रुओंको मुक्ति देनेमें दानवीरता, रावणादिके वधमें युद्धवीरता, धर्मयुद्ध करनेमें धर्मवीरता और प्रभु हैं, सब कुछ जानते हैं, अभी रावणके क्षयका समय आया नहीं है, इससे कुछ देर खेलेंगे, जैसे गरुड़ सर्पसे खेलता है, इससे 'विद्यावीरता' सूचित हुई।

नोट—३ जटाजूटका बाँधना यहाँ रावण-युद्धमें कहा और पूर्व खरदूषण-युद्धमें भी कहा था, यथा—'*सिर जटाजूट बाँधत सोह क्यों*'। अन्यत्र यह छबि नहीं कही गयी। ऐसा करके रावण और खरदूषणकी समता दिखायी—'*खरदूषन मोहि सम बलवंता।*' (३। २३। २) दोनोंका मिलान देखिये—

रावणयुद्ध-प्रसङ्ग	खरदूषणयुद्ध-प्रसङ्ग	रावणयुद्ध-प्रसङ्ग	खरदूषणयुद्ध-प्रसङ्ग
प्रभु मुसुकाने	*१ बिहँसि*	*कर कोदंड कठिन सारंगा*	*७ कठिन कोदंड चढ़ावा*
रघुबीर सुधारे बान	*२ बिसिख सुधारि कै*	*भुजदंड पीन मनोहर*	*८ बिसाल भुज गहि चाप*
जटाजूट दृढ़ बाँधे माथे	*३ सिर जटाजूट बाँधत सोह हरषे देव बिलोकि छबि*		*९ हम भरि जनम सुनहु सब भाई। देखि नहिं असि सुंदरताई॥*
अरुन नयन	*४ चितवत मनहु मृगराज प्रभु..........*		
कटितट परिकर कसेउ निषंगा	*५ कटि कसि निषंग*		१० दोनों जगह छबि-वर्णनमें एक-एक छन्द भी है।
तन बारिद स्यामा	*६ मरकत सैल*	यहाँ ३॥ अर्धालियाँ	११ यहाँ ४॥ अर्धालियाँ

पं०—यहाँ जटाओंमें पुष्पोंका गुँथा होना इससे कहा कि रणसमय शूरवीर रञ्जित वस्त्र और कलँगी धारण करते हैं, इत्यादि। रघुनाथजी वनवासमें हैं अतः उन्होंने जटाओंमें पुष्प ही धारण किये।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा। अखिल लोक लोचनाभिरामा॥ ९॥
कटि तट परिकर कस्यौ निषंगा। कर कोदंड कठिन सारंगा॥ १०॥

शब्दार्थ—**परिकर**=कटिवस्त्र, कटिबंधन। शार्ङ्ग—६६ (१) देखिये।

अर्थ—लाल नेत्र और श्याममेघवत् साँवला शरीर समस्त लोकोंके (अर्थात् लोकवासियोंके) नेत्रोंको आनन्द देनेवाला है॥ ९॥ कटिदेश (कमरमें) कटिबन्धनसे तरकश कसा हुआ है। हाथमें कठिन शार्ङ्गधनुष है॥ १०॥

रा० प्र०—'*अरुन नयन*' स्वाभाविक हैं। अथवा इस समय देवस्तुति सुनकर उनके दुःखहरणके विचारसे नेत्र अरुण हो गये हैं जो रोषभावके सूचक हैं।

नोट—'*अखिल लोक लोचनाभिरामा*'। अखिल लोकके नेत्रोंको सुखदायक कहा। यह सत्य ही है। शूर्पणखा, खरदूषणादि भी इनको देखकर मोहित हो गये थे तब औरोंकी कहनी ही क्या? मिलान कीजिये—'*करहु सुफल सब के नयन सुंदर बदन देखाइ।*' (१। २१८), '*मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुखदाता॥*'

छंद—सारंग कर सुंदर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यौ।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यौ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥

शब्दार्थ—**धरासुर**=महिदेव=ब्राह्मण; भृगुजी।

अर्थ—सुन्दर हाथमें सुन्दर शार्ङ्गधनुष है, कमरमें बाणोंकी खानिवाला (अर्थात् अक्षय, जिसमेंसे बाण बराबर जितने चाहें उतने निकलते जायँ, कभी वह खाली न हो सके) तरकश कसा हुआ है। भुजदण्ड पुष्ट और सुन्दर हैं, चौड़ी (विस्तीर्ण) छातीपर भृगुजीका चरण शोभित है। तुलसीदासजी कहते हैं कि ज्यों ही प्रभु हाथोंमें धनुषबाण लेकर फिराने लगे त्यों ही ब्रह्माण्ड, दिशाओंके हाथी, कच्छप, शेष, पृथ्वी, समुद्र और पर्वत सभी डगमगाने लगे।

नोट—१ इन सबका डगमगाना भयका कारण है कि न जाने क्या होनेवाला है, यथा—'*लषन सकोप बचन जब बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥ सकल लोक सब भूप डेराने।*'

नोट—२ देवताओंको धैर्य देनेके लिये धनुषबाण फेरनेका चरित किया गया कि जब इतनेमें ब्रह्माण्डादिक काँप उठे तब हमारे कोपकर बाण चलानेपर रावण कहाँ रह सकता है?

शीला—यहाँ वीररसके ध्यानमें 'भृगुलता' का वर्णन करनेका भाव यह है कि यह चिह्न ब्रह्मण्यधर्मसे रामजीकी जय सूचित करता है—[आगे राम-रावण द्वन्द्वयुद्धके समय रथपर चढ़ते समय 'विप्रचरण' को

माथा नवाकर युद्ध प्रारम्भ करेंगे। अतः यहाँ यह ध्यान भी उपयुक्त और साभिप्राय है]।

प० प० प्र०—इस छन्दमें शृङ्गार, वीर और भयानक तथा अद्भुतरसोंका वर्णन है। अरण्यकाण्ड दोहा १८ के छन्दमें (खरदूषणयुद्ध-समय) केवल वीररसका ही वर्णन है। यह छन्द मानो राम-रावण-युद्धका मङ्गलाचरण ही है।

दो०—सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय* जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥ ८५॥

अर्थ—श्रीरामजीकी शोभा देखकर देवता प्रसन्न होकर फूलोंकी अपार वर्षा करने लगे और 'छबि, बल एवं गुणोंके धाम करुणासागरकी जय हो! जय हो!' इस प्रकार जय-जयकार करते हैं॥ ८५॥

नोट—पुष्पोंकी वर्षासे हर्ष, मंगल और सेवा प्रकट करते हैं। ***'करुनानिधि'*** आदि विशेषण देकर जय-जयकार करते हैं। देवताओंकी विनय सुनकर उनके दुःखहरणके लिये उठकर बाणादि सुधारना करुणा सूचित करता है, अतः ***'करुनानिधि'*** कहकर जय-जयकार किया। ***'छबिके आगार'*** कहकर जयकार किया क्योंकि इस समयकी छटा ***'अरुन नयन बारिद तनु स्यामा', 'अखिल लोक लोचन अभिरामा'*** है, रावण-वधसे सारे ब्रह्माण्ड सुखी होंगे। ***'बल आगार'*** कहा क्योंकि शर-चाप फेरनेमात्रसे ब्रह्माण्ड आदि काँप उठे। ***'गुन'*** से यहाँ रणमें विजय प्राप्त करनेवाले सब गुण एवं सब दिव्य गुणोंसे तात्पर्य है। इन गुणोंसे पूर्ण सम्पन्न देखकर ***'गुन आगार'*** कहा।

एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी॥ १॥
देखि चले सन्मुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घन घट्टा॥ २॥

शब्दार्थ—**कसमसात**=एक ही स्थानपर बहुत-से व्यक्तियोंका एक-दूसरेसे रगड़ खाते हुए हिलना-डोलना। कुलबुलाना।

अर्थ—इसी बीचमें बहुत घनी राक्षस-सेना कसमसाती हुई आयी॥ १॥ उसे देखकर वानर योद्धा (इस प्रकार उनके) सम्मुख चले मानो प्रलयकालके बादलोंका उमड़ता हुआ घना समूह हो॥ २॥

नोट—१ (क) ऊपर जो दोहा ८५ (३) में कहा था कि ***'चली तमीचर अनी अपारा।'.........'*** उसका अर्थ यहाँ खोला कि ऐसी अपार थी कि कंधे-से-कंधा रगड़ती चलती थी। (ख) पूर्व जो प्रसंग ***'प्रभु सनमुख धाये खल कैसे।'.........'*** (८५। ४) पर छोड़ा था वह यहाँ फिर उठाया। बीचमें देवताओंकी विनती और उसे सुनकर श्रीरघुवीरजीका युद्धके लिये उठना तथा उनकी छबि आदि कहने लगे थे। अब ***'एही बीच'.......'*** कहकर उस प्रसंगसे मिलाया। (ग) इस प्रसंगमें रावणको कालवश कहा, यथा—***'भयउ कालबस काहु न माना'*** और उसकी सेनाको पतङ्ग कहा, यथा—***'सलभ समूह अनल कहँ जैसे'*** तथा वानरसेनाको प्रलयकालके उमड़ते हुए बादल कहा, ***'प्रलयकाल के जनु घन घट्टा'***

बं० पा०—प्रलयकालके बादलोंकी उत्प्रेक्षाका भाव यह है कि जैसे प्रलय करनेके लिये प्रलयके बादलसमूह वर्षा करते हैं वैसे ही ये वानर व भालु गिरि-तरुकी वर्षा कर राक्षसोंका प्रलय करनेके लिये चले।—मानसमुखबंदमें निशाचरोंसे युद्धको घोर वर्षा कहा ही है, यथा—***'बर्षा घोर निसाचर रारी।'*** (१। ४२। ५) आगे वर्षाका साङ्गरूपक कवि स्वयं देते हैं।

प० प० प्र० स्वामीका मत है कि ***'प्रलय कालके घन घट्टा'*** निशाचर अनी है। वे लिखते हैं कि प्रलयकालके घन बहुत काले होते हैं और उनमें ही बिजली चमकती है। अतः ***'प्रलय कालके घन घट्टा।'*** को राक्षस-सेना-समूहके साथ ही लेना सयुक्तिक है। दोहा ४५ (९) में ***'प्राबिट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहु मारुत के प्रेरे॥'*** कहा है। वहाँ ***'प्राबिट पयोद'*** काले निशाचरोंके लिये और ***'शरद पयोद'*** नाना वर्णके भालु कपिवीरोंके

* पाठान्तर—'हरषे देव बिलोकि छबि बरषहिं सुमन अपार।
जय जय प्रभु गुन ग्यान बल धाम हरन महिभार॥'—(का०)

लिये कहा ही है। गर्जन भी मेघोंमें ही होता है। अतः *'प्रलय कालके जनु घन घट्टा'* से *'गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा'* तक राक्षस-सेनाका वर्णन है। और *'कपि लंगूल बिपुल नभ छाए। मनहुँ इन्द्रधनु उए सुहाए॥'* में कपि-सेनाका विविध वर्णोंका होना 'इन्द्रधनु' से सूचित किया। इन्द्रधनु तब दिखायी देता है जब कि एक दिशामें सूर्यप्रकाश छा रहा हो और विरुद्ध दिशामें वृष्टि होती है। अतः वर्षाका वर्णन भी करना चाहिये। अभी श्रीरामजीने बाणोंकी वृष्टि नहीं की है। अतः बाण बुन्द-वृष्टि निरुद्ध बाजूकी ही समझनी चाहिये। यहाँ एक तरफ रघुवीररूपी सूर्य प्रकाशमान हैं, सामने राक्षस-सेनारूपी घनमण्डलसे वृष्टि हो रही है और नाना वर्ण कपि लांगूलरूपी इन्द्रधनु इन मेघोंमें देख पड़ते हैं। इससे सूचित किया कि राक्षस वीरोंसे कपि वीर भिड़ गये हैं। अन्यथा इन्द्रधनुका दर्शन सम्भव नहीं। यह साङ्गरूपक दोहा ८६ (७) में पूर्ण हुआ।

परन्तु अन्य सभी टीकाकारोंका मत वही है जो ऊपर दिया गया। यहाँ वानर-सेनाका राक्षसोंकी ओर चलना उत्प्रेक्षाका विषय है। प्रलयकालके बादल नाश करनेके लिये उमड़ते चलते ही हैं वैसे ही ये चले। यह 'उक्तविषयावस्तूप्रेक्षा अलङ्कार' है।

प० प० प्र०—१ यहाँसे कविके हृदयमें भी वीररसका बड़ा सञ्चार हो रहा है जिसका परिणाम यह है कि स्वाभाविक ही भाषामें ओज बढ़ गया। *'भट'* का *'भट्ट'*, *'घटा'* का *'घट्टा'*, *'चमकहि'* का *'चमंकहि'* और *'दमक'* का दमंक रूपमें प्रयोग होने लगा।

२ *'एही बीच.........'* के दोनों चरणोंमें एक-एक मात्राकी कमीका भाव जाननेके लिये दोहा ८४, ८५ का सन्दर्भ ध्यानमें लाना चाहिये। इन शलभोंको अग्निकी ओर दौड़े जाते देख श्रीशिवादि देवोंको उनपर तरस आ गया कि ये बड़े मूर्ख हैं, व्यर्थ जल मरेंगे। *'मरन मन महुँ ठानि'* चले हैं, अतः घनघोर भयंकर बीभत्स युद्ध होगा, इत्यादि भाव मात्राकी न्यूनताद्वारा सूचित किये।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दह दिसि दामिनी दमंकहिं॥ ३॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं* मनहुँ बलाहक घोरा॥ ४॥

शब्दार्थ—**बलाहक**=मेघ, यथा—'**अभ्रं मेघो वारिवाहस्तनयित्नुर्बलाहकः**' इत्यमरः। **दमंकहिं** (दमकना)= चमचमाना, चमकना। **चिकार**=चिंघाड़; चीत्कार, भारी शब्द। **दह**=दस।

अर्थ—बहुत-से कृपाण (द्विधारा खड्ग) और तलवारें चमक रही हैं मानो दसों दिशाओंमें बिजलियाँ चमचमा रही हों॥ ३॥ हाथी, रथ और घोड़ोंका कठोर शब्द ऐसा जान पड़ता था मानो भयंकर मेघ घोर गर्जन कर रहे हैं॥ ४॥

पां०—दसों दिशाओंमें चमकना कहकर जनाया कि आठों दिशाओं-विदिशाओंमें राक्षसी सेना है। तलवारें ऊपर उठती हैं तब आकाशमें चमक हुई। [अथवा, जो आकाशमें उछलकर चलाते हैं उनकी आकाशमें चमकती हैं। (वै०)] जब हाथसे गिरकर पृथ्वीपर आती हैं तब यहाँ भी चमकती हैं; इस तरह दसों दिशाएँ हुईं। सीधी तलवार टेढ़ी हो-होकर चमकती है, इसीसे बिजलीके समान देख पड़ती है।

नोट—ऊपर प्रलयके बादलोंकी उत्प्रेक्षा की। अब वर्षा-ऋतु और युद्धका साङ्गरूपक देते हैं। मेघ, मेघोंका गर्जन, बिजली, इन्द्रधनुष, जलवृष्टि एवं वज्रपात आदि वर्षाके अङ्ग हैं, वे सब यहाँ कवि दिखाते हैं।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहु इंद्रधनु उए सुहाए॥ ५॥
उठै धूरि मानहु जल धारा। बानबुंद भइ बृष्टि अपारा॥ ६॥

अर्थ—वानरोंकी बहुत-सी पूँछें आकाशमें छायी हुई हैं मानो सुन्दर इन्द्रधनुष उदय हो गये हैं॥ ५॥ धूलि ऐसी उठ रही है मानो जलकी धारा हो। बाणरूपी बूँदोंकी अपार वृष्टि हुई॥ ६॥

नोट—इन्द्रधनुषमें सात रङ्ग होते हैं—हरा, नारंगी, लाल, पीत, नीला, भूरा और बनफशई। वैसे ही

* गर्जत (का०)। 'गर्जहिं'—(रा० गु० द्वि०, भा० दा०)।

यहाँ वानर भी अनेक रङ्गके हैं। दूसरी समता यह है कि वानर पूँछ धनुषाकार उठाये हुए हैं। तीसरे यह भी जनाया कि वे सब धनुषाकार आकाशमें छाये हैं।

पं०—धूलके कण जो निरन्तर पड़ते हैं वे इतने सघन हैं कि कोमल जलकी धारा बरसती मालूम होती है और बाणोंकी वृष्टि उग्र वृष्टि है जो छेदनेवाली है।

दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥७॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भै निसिचर समुदाई॥८॥

अर्थ—दोनों ओरसे पर्वतोंका प्रहार किया जा रहा है, मानो बारम्बार वज्रपात हो रहा है॥ ७॥ श्रीरघुनाथजीने कोप करके बाणोंकी झड़ी लगा दी, जिनसे निशिचरोंका समुदाय (समूह, सेना) घायल हो गया॥ ८॥

बं० पा०—वर्षाकी झड़ी लगती है तब पथिक ठहर जाते हैं, वैसे ही यहाँ निशाचररूपी पथिक घायल होकर झड़ीके मारे रणभूमिपर पड़े हैं। बाणोंकी झड़ी वर्षाकी झड़ी है। (पां०)

☞ *'दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा'*, यह सेनाका सेनासे युद्ध कहा गया। *'रघुपति कोपि बान झरि लाई'*, यह श्रीरामजीका निशिचर-सेनापर कोप कहा। वाल्मी० ९३ में भी पहिले राक्षसों और वानरोंका युद्ध है जिसमें अन्तमें राक्षस-सेना प्रबल पड़ी और वानर श्रीरामजीकी शरण गये। श्रीरघुनाथजीने बाणवृष्टि की, वे उस समय अलातचक्रके समान देख पड़ते थे। *'कोपि बान झरि लाई'* से वाल्मी० ९३ की कथा वहाँ सूचित कर दी है। यथा—**'ततो रामो महातेजा धनुरादाय वीर्यवान्। प्रविश्य राक्षसं सैन्यं शरवर्षं ववर्ष च॥ छिन्नं भिन्नं शरैर्दग्धं प्रभग्नं शस्त्रपीडितम्। बलं रामेण ददृशुर्न रामं शीघ्रकारिणम्॥'** अर्थात् तेजस्वी वीर श्रीरामजी धनुष लेकर राक्षससेनापर बाणवृष्टि करने लगे। श्रीरामजीका बल ऐसा सब निशाचरोंने देखा कि बाणोंद्वारा निशाचर-सेना छिन्न-भिन्न कर दी गयी, जल गयी, टुकड़े-टुकड़े हो गयी। शस्त्रसे पीड़ित ऐसी सब सेना देख पड़ती थी पर श्रीरामजीको कोई न देख सकता था कि जो कार्यमें बड़े शीघ्रकारी हैं। (वाल्मी० ९३। १८, २२)

वि० त्रि०—*'रघुपति कोपि·········समुदाई'* इति। पहिले जो कहा है कि *'बर्षा घोर निसाचर रारी'*, सो यहाँ वर्षाका बड़ा सुन्दर रूपक खींचा गया है। इतनी बड़ी लड़ाई कोई दूसरी लङ्कामें नहीं हुई। मेघनाद और लक्ष्मणजीकी लड़ाई बड़ी गहरी हुई, उसमें रक्तसे गड्ढे भर गये। यथा—*'भरेउ गाड़ भरि भरि रुधिर'* पर रुधिरकी नदी तो इसी लड़ाईमें बही। रुधिर थोड़ा समय पानेसे जम जाता है। उसकी नदी तो तभी सम्भव है जब बहुत अधिक मात्रामें रुधिर बहता ही चला आवे, और यह सारी सेनाके बिना एक साथ घायल हुए सम्भव नहीं। अतः कहते हैं कि रामजीने ऐसी बाणोंकी झड़ी बाँध दी कि सारी-की-सारी सेना घायल हो गयी। अतः आगे चलकर रुधिरकी नदीका बहना कहा जायगा। जब वर्षामें पानीका झर लगता है तभी नदी बह चलती है।

प० प० प्र०—*'रघुपति कोपि'* कहकर जनाया कि रघुवंशियोंका **'आर्तत्राणाय नः शस्त्रम्'** यह आर्तरक्षक विरद स्मरण करके श्रीरामजी क्रुद्ध हो गये।

लागत बान बीर चिक्करहीं। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परहीं॥९॥
स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी*। सोनित सरि कादर भयकारी॥१०॥

अर्थ—बाणोंके लगते ही वीर चीत्कार करते हैं, और चक्कर खा-खाकर मूर्च्छित होकर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिरते हैं॥ ९॥ (वे ऐसे देख पड़ते हैं) मानो पर्वतके भारी झरनोंसे पानी गिर रहा हो। रुधिरकी नदी (बहने लगी जो) कादरोंको भयभीत करनेवाली है॥ १०॥

नोट—१—राक्षस पर्वत हैं, बाणकृत घाव झरने हैं, रुधिरकी धारा निकलना झरनेसे पानीका गिरना है, वीरोंका बाण लगनेपर चीखना झरनेका शब्द है। खून बहकर पृथ्वीमें बह चला वही रुधिर नदी है।

* बारी—(का०)। 'भारी'—(रा० गु० द्वि०, भा० दा०)

बं० पा०—'*घुर्मि घुर्मि*……।' यह मानो वर्षामें वृक्ष टूट-टूटकर गिरते हैं।

छंद—कादर भयंकर रुधिर सरिता चली* परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अबर्त बहति भयावनी॥
जलजंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरंग चर्म कमठ घने॥

शब्दार्थ—**चक्र**=पहिये†। **रेत**=बालू। **अवर्त** (आवर्त)=भँवर, घुमाव, भँवरके चक्कर। **तोमर**=सबरी, सर्वला।

अर्थ—डरपोकोंके लिये भय उपजानेवाली परम अपवित्र रक्तकी नदी बह चली। दोनों दल इस नदीके दोनों किनारे हैं, रथ रेत हैं, पहिये भँवर हैं। यह नदी बहुत भयावनी बह रही है। गज, पैदल, घोड़े और गदहे (खच्चर) आदि जो अनेक सवारियाँ हैं, जिनको कौन गिना सकता है, वे ही अनेक जलके जीव हैं। बाण, शक्ति और तोमर सर्प हैं, धनुष तरङ्गें हैं, ढाल कछुओंका समूह है।

नोट—१ '*सरिता चली परम अपावनी*'। बाणोंकी वृष्टिसे राक्षसोंके शरीररूपी पर्वतोंके घावोंरूपी झरनोंसे रुधिरसरिताका बहना ऊपर कहा गया। वर्षाकी नदी स्पर्शयोग्य नहीं होती वरन् अपावन समझी जाती है वैसे ही यह अपावन है। ('*बान बुंद भइ बृष्टि अपारा*', एवं '*बान झरि लाई*', जो पूर्व कहा है उसके सम्बन्धसे इसे वर्षाकी नदी कहा है।) (पं०) बं० पा० जी लिखते हैं कि बाढ़में तीन दिन नदियाँ अपावनी रहती हैं। और यह तो रुधिरकी नदी है अतः इसे परम अपावनी कहा। आगे नदीका रूपक देते हैं।

पु० रा० कु०—१ (क) नदी समुद्रको जाती है, यथा—'*रामसरूप सिंधु समुहानी*', '*उमगि नदी अंबुधि कहँ आई*', '*चली बिपति बारिधि अनुकूला*' और '*सरिता जल जलनिधि महँ जाई। होइ अचल।*' यह रुधिरसरिता '*परम अपावनी*' है, अर्थात् यम-पुर-समुद्र-गामिनी है यथा—'**शोणितौघमहातोयां यमसागरगामिनीम्।**' (वाल्मी० ५८। २९)

नोट—२ (क) '*दोउ कूल दल*'—दोनों ओरकी सेना दोनों किनारे हैं। नदीकी काट एक तरफ होती है वैसे ही निशाचर-दलरूपी तट कट रहा है, उस दलके रथ आदि भी कट रहे हैं। (ख) '*रथ रेत*' इति। रथ जो बाणोंसे टूटकर गिरे उनके छत्र और टुकड़ोंके ढेर बालूके समान देख पड़ते हैं। (ग) '*चक्र अबर्त*' अर्थात् रथोंके पहिये जो रुधिरधारमें पड़े बह रहे हैं वे भँवर-से जान पड़ते हैं। दोनों मण्डलाकार होते हैं और दोनों ही बारम्बार चक्कर लेते हैं, यह समता है। नदी जिसमें भँवर बहुत हों वह भयावनी होती ही है और फिर यह तो रुधिरसरिता है, इसके भयावनपनका कहना क्या? इसीसे अवर्त कहकर भयावनी कहा। (घ) '*जल जंतु*……' नदीमें मगर आदि जलचर होते हैं। इस युद्धमें जो हाथी, पैदल, घोड़े आदि मरकर रुधिरप्रवाहमें गिरकर बह रहे हैं वे ही जलचरोंके समान हैं। (ङ) '*बिबिध बाहन को गने*' इति। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि वायुवेगवान् रथोंकी १० हजार सेना, शीघ्रगामी हाथियोंकी १८ हजार सेना, १४ हजार घोड़े और घुड़सवार और पूरे दो लाख पैदल राक्षसोंकी सेनाको एक रामचन्द्रजीने दिनके आठवें भागमें अग्निके समान बाणोंसे मारा।—(वाल्मी० ९३। ३—३२) (च) '*सर सक्ति तोमर सर्प*'—बाण, शक्ति और तोमर ये लंबे होते हैं। ☞ये आयुध नदीमें बड़ी जोरसे बहे जा रहे हैं, अतः इन्हें सर्प कहा। बाणोंको सर्पकी उपमा दी ही जाती है। यथा—'*रघुनायक सायक चले लहलहात जनु ब्याल।*' बं० पा० जी लिखते हैं कि 'सर्पकी उपमा देकर जनाया कि कभी डूबते और कभी उतराते चले जाते हैं'। सर्प चमकीले भी होते हैं वैसे ही ये बाण, शक्ति आदि चमकीले हैं। (छ) '*चाप तरंग*'—दोनोंकी

* बढ़ी (का०)। † 'चक्रः कोके पुमान् क्लीबं व्रजे सैन्यरथाङ्गयोः। राष्ट्रं दम्भान्तरे कुम्भकारोपकरणास्त्रयोः॥ जलावर्तेऽपि इति हैमः॥' अर्थात् चक्र कोक अर्थमें पुल्लिङ्ग है। व्रज, सैन्य और रथाङ्ग अर्थमें नपुंसक लिङ्ग है, राष्ट्र, दंभान्तर, कुम्हारका उपकरणास्त्र और जलावर्त—इन अर्थोंमें भी नपुंसक लिङ्ग है।

विषमता वा, टेढ़ेपनकी समता लेकर यह रूपक दिया। (पु० रा० कु०) सहस्रों धनुष जलतरंगके समान रुधिरधाराके पृष्ठभागपर तैरते हुए बहे जाते हैं। (प० प० प्र०) (ज) **चर्म** (ढाल) और कमठमें आकारकी समता है। (पु० रा० कु०) ये कछुओंके समान ऊपर और भीतर बहती हैं (प० प० प्र०)। ***'घने'*** अर्थात् बहुत हैं एवं सघन हैं।

प० प० प्र०—१ (क) इस छंदके अन्तिम चरणमें ***'चर्म कमठ घने'*** में ('क' पर) छन्दोभङ्ग निर्माण किया है। 'क' के पश्चात् दीर्घ अक्षरकी आवश्यकता थी, जैसे ***'पावनी' 'यावनी' 'को गने'*** में है। छन्दोभङ्ग करके ***'कादर भयंकर'***—भाव चरितार्थ करके बताया है। कायरोंके हृदय धड़कने लगे, भयसे वाणी रुक गयी इत्यादि भयके अनुमान ध्वनित किये। (ख) ***'सोनित सरि कादर भयकारी'*** उपक्रम है। ***'कादर भयंकर रुधिर सरिता'*** अभ्यास है। बीचमें अपूर्वता और उपपत्ति है। छन्दोभङ्गसे इसका फल और ***'कादर देखि डरहिं'*** में उपसंहार है। (ग) इससे जनाया कि राक्षससेनामें बहुतेरे सैनिक कायर हैं। ***'सुभटन्ह के मन चेन'*** अन्तमें लिखकर जनाया कि ये थोड़े हैं। ***'सुभट'*** शब्दसे भी ध्वनित हुआ कि 'भट' भी कायर हो जाते हैं।

प० प० प्र०—२ इस छन्द और दोहेमें भयानक और बीभत्स रसोंका परिपोष हुआ है, बीभत्स प्रधान है। आगे बीभत्सकी तीव्रता बढ़ती है और दोहा ८७ के छन्दमें बीभत्सरसकी ओजके साथ पूर्णता होती है।

प० प० प्र०—३ इस प्रसंगमें गोस्वामीजीका अन्तःकरण श्रीरामजीके वीर्यप्रतापवर्णनमें ऐसा तदाकार हो गया है कि बीभत्सका भी आदर्श वर्णन उनकी कोमल लेखनी महान् ओजके साथ लिख सकी! '**भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला**.........' इस रणनदी वर्णनके श्लोकमें वह ओज और बीभत्सता नहीं है जो इस प्रसंगमें और विशेषतः ***'बोल्लहिं जो जय जय'***......... ' इस छंदमें है।

दो०—बीर परहिं जनु तीर तरु मज्जा बहु बह फेन।
कादर देखि* डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन॥८६॥

शब्दार्थ—**मज्जा**=नलीकी हड्डीके भीतरका गूदा जो बहुत कोमल और चिकना होता है। यथा—'**अस्थि यत्स्वाग्निना पक्वं तस्य सारो द्रवो घनः। यः स्वेदवत्पृथग्भूतः सा मज्जेत्यभिधीयते॥**' इति भावप्रकाशे पूर्वखण्डे शारीरकप्रकरणे। अर्थात् हड्डी जो भीतरकी अग्निसे परिपक्व है उसका सार द्रवघन कहलाता है। जो पसीनेकी तरह पृथक् दिखायी देता है उसे मज्जा कहते हैं।=चर्बी, हड्डीका सार।

अर्थ—वीर पृथ्वीपर इस तरह गिर रहे हैं मानो तीर-(किनारे-) के वृक्ष ढह रहे हैं। बहुत-सी मज्जा जो बह रही है वही मानो फेन बहता है। जहाँ कादर पुरुष (इसे) देखकर डरते हैं वहाँ उत्तम योद्धाओंके मनमें चैन (सुख) होता है॥ ८६॥

नोट—१ ***'मज्जा बहु बह फेन'*** इति। द्रव धर्म लेकर दोनोंकी समता कही—(पु० रा० कु०)।

नोट—२ ***'सुभटन्ह के मन चेन'*** इति। सुभटोंके मनमें आनन्द होता है, यह समझकर कि मरनेपर स्वर्ग और जीतनेपर स्वतन्त्र स्वराज्य और ऐश्वर्य तथा सुयश प्राप्त होगा। उत्तरार्द्ध दोहेका भाव यह है कि यह रणभूमिमयी नदी बड़ी दुस्तर है, योद्धा राक्षस और प्रधान-प्रधान वानर सुभट ही इस दुस्तर नदीको पार कर सकेंगे, साधारण तो डरकर भाग जायँगे। क० लं० ४९ से मिलान कीजिये—

'लोथिन सों लोहू के प्रबाह चले जहाँ तहाँ मानहु गिरिन गेरु झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर कुंजर करारे भारे कूल तें समूल बाजि बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ सूरनि उछाह कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात काक कंक बकुल कोलाहल करत हैं॥'

बं० पा०—कादर देख डरते हैं और सुभट सुख पाते हैं, जैसे जो तैर नहीं सकते वे नदीको देख

* देखत डरहि—(का०)। आधुनिक पाठ—'डराहिं तेहि'।

डरते हैं और जो तैरनेवाले तैराक हैं उनको सुख होता है।

नोट—३ वाल्मी० ५८ मेंके प्रहस्तके युद्धमें नदीका रूपक मिलान करनेयोग्य है। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि वानरों और राक्षसोंकी लोथोंसे पूर्ण समरभूमि मानो पर्वतोंसे पूर्ण हो गयी। वह युद्धस्थल रुधिरकी धारासे संच्छन्न होनेसे ऐसा देख पड़ने लगा जैसे वैशाखमासमें पुष्पित पलाशोंसे पृथ्वी शोभित हो। मरे हुए वीर ही जिसके किनारे हैं, टूटे हुए आयुध ही वृक्ष हैं, रुधिर जल है, यह नदी यमसागरको गयी है। यकृत और प्लीहा कीच है, आँतें सिवार हैं, देह-खंड मछलियाँ हैं, अङ्गोंके टुकड़े घास हैं। गृध्र ही हंस और कंक सारस हैं। चर्बी फेन है। आवर्त्त शब्द नदीका शब्द है। ऐसी युद्धभूमिमयी नदीके पार कायर नहीं जा सकते। हंसोंसे सेवित शरद्-ऋतुकी श्रेष्ठ नदीके समान ऐसी दुस्तर नदी राक्षस और मुख्य-मुख्य वानर तैर गये जैसे कमलोंकी रजयुक्त नलिनीको गजयूथप पार कर जाते हैं। (श्लो० २७—३३)

वाल्मी० ९३ में राम-रावण-युद्धमें भी रुधिरनदीका रूपक दो श्लोकोंमें है और भा० १०।५०।२४—२८ में श्रीकृष्ण-जरासंध-युद्धमें भी रुधिर-नदीका रूपक आया है पर ये कोई मानसमें दिये हुए रूपकसे मिलते नहीं है। रूपक जिसे देखने हों वह उन ग्रन्थोंमें देख लें। यहाँ मिलता हुआ अंश मिलानमें दिया जा रहा है। वाल्मी० और भा० में मानसका-सा साङ्गोंपाङ्ग रूपक नहीं है।

छंद और दोहा ८६	वाल्मी० ५८	भा० १०।५०
१ कोपि बान झरि लाई	दोहा ८६ (९-१०) देखिये	
२ स्त्रवहि सयल जनु निर्झर भारी	'शरीरादपि सुस्राव गिरेः प्रस्त्रवणं यथा।' (५७)	'संछिद्यमानद्विपदेभवाजि-नामङ्गप्रसूताः शतशो-ऽसृगापगाः॥' (२६),
३ 'सोनित सरि कादर भयकारी', 'कादर देखि डरहिं तहँ सुभटन्ह के मन चेन'	'तां कापुरुषदुस्तारां युद्ध-भूमिमयीं नदीम्॥' (३२) 'राक्षसाः कपिमुख्याश्च' तेरुस्तां दुस्तरां नदीम्॥' (३३)	'प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः पर-स्परम्॥' (२८)
४ रुधिर सरिता चली परम अपावनी	'शोणितौघमहातोयाम्' 'यमसागरगामिनीम्॥' (२९)	
५ दोउ कूल दल (रथ रेत)	'हतवीरौघवप्रां तु॥' (२९)	(अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः)
६ चक्र अबर्त्त बहति··········	(आवर्त्तस्वननिःस्वनाम्)	
७ तुरग खर बिबिध बाहन को गने	जलजंतु गज पदचर	('भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीप) हयग्रहाकुलाः॥' (२६)
८ सर शक्ति तोमर सर्प	(शर मत्स्या वाल्मी० १३)	(भुजाऽहयः)
९ चाप तरंग (चर्मकमठ)		धनुस्तरङ्गायुध
१० बीर परहिं जनु तीरतरु	(भग्नायुधमहाद्रुमाम्)	(आयुधगुल्मसङ्कुलाः) (२७)
११ मज्जा बहु बह फेन	'यकृतप्लीहमहापङ्कां विनिकीर्णान्त्रशैवलाम्। 'भिन्नकायशिरोमीनामङ्गावयवशाद्वलाम्।' (३०) 'मेदःफेनसमाकीर्णाम्।' (३१)	
१२ काक कंक लेइ भुजा उड़ाहीं। खैंचत गीध आँत तट भये।	'गृध्रहंसगणाकीर्णां कंक-सारससेविताम्।' (३१)	

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥ १॥
काक कंक लै भुजा उड़ाहीं। एक ते छीनि एक लै खाहीं॥ २॥

शब्दार्थ—**झोटिंग**=झोंटेवाला, जिसके सिरपर बहुत बड़े-बड़े और खड़े बाल हों। (श० सा०) =जोटिंग, शिवजीके गणोंकी एक जाति।

अर्थ—भूत, पिशाच, वेताल, महाकराल बड़े-बड़े झोंटोंवाले प्रमथ जोटिंग आदि शिवगण इस नदीमें स्नान करते हैं॥ १॥ कौए और चील भुजाएँ लेकर उड़ते हैं। एकसे छीनकर एक (दूसरा) खा लेता है॥ २॥

नोट—१ भूत, पिशाच, वेताल और प्रमथ ये सब प्रेतोंके भेद हैं। उनकी भिन्न-भिन्न जातियाँ हैं, यथा—'मार्कण्डेयपुराणे हरिहरब्रह्मविरचिते—'**ग्रहभूतपिशाचाश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः। ब्रह्मराक्षसवेतालाः कूष्माण्डा भैरवादयः॥**', '*नाना भाँति पिसाच पिसाची।*' (५१। २) देखो। भूत-पिशाचोंसे वेताल अधिक जबरदस्त होते हैं, ये राक्षसोंके मुकाबिलेके होते हैं।

गौड़जी—प्रमथों, जोटिंगों आदिका विस्तारसे वर्णन शिवपारिषदोंकी उत्पत्तिके प्रकरणमें कालिकापुराणके २९ वें अध्यायमें मिलता है। भूत, पिशाच, वेताल, प्रमथ, जोटिंग सभी रणमें भाग लेनेवाले नीच प्रकारके शिवगण हैं। प्रमथोंकी अनेक ऊँची जातियाँ भी हैं जो योगी हैं और शंकर-समान हैं।—[प्रमुख प्रमथादि सब रुद्रगण हैं। प्रमथ सब पार्षद हैं, ब्राह्मी आदि माताएँ हैं। यथा—'रुद्रगण—**नन्दी भृङ्गी च सेनानी मुखाः सर्वे शिवाज्ञया॥**' (पद्म पु०), '**प्रमथाः स्युः पारिषदा ब्राह्मीत्याद्यास्तु मातरः।**' (अमरकोष), '**महाकालश्च नन्दी च तथा शंकरपार्श्वगौ। वीरभद्रो महातेजा शंकुकर्णो महाबलः॥ घण्टाकर्णश्च दुर्धर्षो मणिभद्रो वृकोदरः। कुण्डोदरश्च विकटस्था कुम्भोदरावली॥ मन्दोदरः कर्णधारः केतुर्भृंगी रिटिस्तथा। भूतनाथास्तथान्ये च महाकाया महौजसः॥ अपादा बहुपादाश्च बहुकर्णैककर्णकाः। एकनेत्राश्चतुर्नेत्रा दीर्घाः केचन वामनाः॥**' (स्कन्दपुराण ब्रह्मोत्तरखण्ड १—४) (पु० रा० कु०)]

नोट—२ ये सब कराल हैं और प्रमथ महाकराल हैं। वा, सभी महाकराल हैं। भूतगणकी करालता शिवबारातके वर्णनमें देखिये। यथा—'*नाना बाहन नाना बेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा॥ कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू॥ बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्टपुष्ट कोउ अति तन खीना॥ तन खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे। भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे॥ खर स्वान सुअर शृगाल मुख गन वेष अगनित को गनै। बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै॥ नाचहिं गावहिं गीत परम तरंगी भूत सब। देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥*' (९३), '*सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे॥ कहहिं बचन भयकंपित गाता। जम कर धारि कि धौं बरियाता॥*' (१। ९५। ४—७) पुनश्च यथा—'**हरिता धूसरा धूम्राः कर्बुराः पीतलोहिताः। चित्रवर्णा विचित्राङ्गाश्चित्रलीला बलोत्कटाः॥ केचिद्व्याघ्रमुखाः केचिच्छूकरास्या मृगाननाः। केचिच्चानेकवदनाः सारमेयमुखाः परे॥ एकवक्त्रा द्विवक्त्राश्च बहुवक्त्राश्च निर्मुखाः। एकहस्ता द्विहस्ताश्च पंचहस्तास्त्वहस्तकाः॥**' (स्कन्दपुराण १—३)

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥ ३॥
कहरत भट घायल तट गिरे। जहँ तहँ मनहुँ अर्द्धजल परे॥ ४॥

शब्दार्थ—**सौंघाई**=अधिकता,बहुतायत—यह शब्द संघसे बना है—(रा० प्र०)=**समर्वता**=साधारण भावकी दशा। सस्ती। 'सौंघाई' शब्द समर्घताका प्राकृतरूप है।—(गौड़जी)। **कहरना**=कराहना, पीड़ासे आह-आह करना। **अर्द्धजल**=श्मशानमें शवको स्नान कराके आधा जलमें और आधा बाहर डाल देनेकी क्रिया।

अर्थ—(एकसे दूसरेके छीन लेनेपर) एक कहते हैं—अरे मूर्खो! ऐसी भी अधिकता वा सस्तीमें तुम्हारा दारिद्र्य नहीं जाता (कङ्गाल ही बने हो)॥ ३॥ तटपर गिरे हुए घायल योद्धा कराह रहे हैं, मानो जहाँ-तहाँ अर्द्धजलमें पड़े हैं॥ ४॥

पं०, वीर—प्राण कण्ठगत होनेपर जब मनुष्यके जीनेकी आशा नहीं रहती तब उसे लोग नदीमें आधा

शरीर जल और आधा थलमें करके लिटा देते हैं। वीर घायल कराहते हैं, यहाँ वही उत्प्रेक्षाका विषय है। यह 'उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार' है।

खैंचहिं गीध* आँत तट भए। जनु बंसी खेलत† चित दए॥ ५॥
बहु भट बहहिं चढ़े खग जाहीं। जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥ ६॥

शब्दार्थ—**नावरि**=नाव-(नौका)-की एक क्रीड़ा जिसमें उसे बीचमें ले जाकर चक्कर देते हैं। **बंसी**=मछली फँसानेका औजार।

अर्थ—गृध्र आँतें खींचते हैं मानो (मछलीका शिकार करनेवाले) नदीतटपरसे मन लगाये हुए बंसी खेल रहे हों॥ ५॥ बहुत-से भट बह रहे हैं और पक्षी उनपर चढ़े चले जा रहे हैं मानो नदीमें नावरि खेल रहे हैं॥ ६॥

नोट—१ (क) *'बंसी'*—इसमें एक पतली लम्बी छड़ीके एक सिरेपर डोरी बँधी होती है और उस डोरीके दूसरे सिरेपर अंकुशके आकारकी लोहेकी एक कँटिया बँधी रहती है। इसी कँटियामें चारा लपेटकर डोरीको जलमें फेंकते हैं और छड़ीको शिकारी पकड़े रहता है। जब मछली वह चारा खाने लगती है तब वह कँटिया उसके गलेमें फँस जाती है और वह खींचकर निकाली जाती है। (श० सा०) (ख)—गृध्र बहते हुए रुधिरके तटपर बैठे हुए निशिचरोंकी लम्बी-लम्बी आँतें खींच रहे हैं, लम्बी नलीका एक सिरा पकड़े हैं, यह बंसीकी डोर या छड़ी हुई। दूसरी ओर काँटेमें मछली फँसती है, आँतका लोथड़ा मछली है। नदीकी धारामें आँतें आगे बढ़ती हैं तब ये उन्हें अपनी ओर खींचते हैं। इस तरह बारम्बार करना ही बंसीका ढील देना, खींचना वा बंसी खेलना है। (ग)—*'चित दए'* कि मछली निकल न जाय। वैसे ही गीध आँतोंको जाने नहीं देते।

'जनु नावरि खेलहिं ....'। शवपर पक्षी बैठे हैं, नोचते, खातेमें एवं बहावसे शव चक्कर खाते हैं; यही नावरि खेलना है।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहिं। भूत पिसाच बधू नभ नंचहिं॥ ७॥
भट कपाल करताल बजावहिं। चामुंडा नाना बिधि गावहिं॥ ८॥

शब्दार्थ—**खप्पर** (खर्प्पर)=खपड़ा, खोपड़ी। काली देवीका वह पात्र जिसमें वे रुधिर पान करती हैं। **संचना** (सं० संचयन)=एकत्र, संचय वा संग्रह करना। **नंचहिं**=नाचती हैं।

अर्थ—योगिनियाँ अपने-अपने खप्पड़ोंमें भर-भरकर रुधिर जमा कर रही हैं। भूत-पिशाचोंकी स्त्रियाँ आकाशमें नाच रही हैं॥ ७॥ चामुण्डाएँ योद्धाओंकी खोपड़ियोंका करताल बजाती हैं और नाना प्रकारसे गाती हैं॥ ८॥

नोट—१ *'करताल'* लकड़ी या काँसेका एक बाजा है जिसका एक-एक जोड़ा हाथमें लेकर बजाते हैं। यहाँ उस करतालकी जगह एक-एक खोपड़ी एक-एक हाथमें लेकर उसे बजाती हैं, ताल देती हैं।

नोट—२ योगिनियोंके कौतुकका वर्णन क० लं० ५० में देखने योग्य है—

'ओझरी की झोरी काँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे मुंड के कमंडलु खप्पर किये कोरि कै।
जोगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी-सी तीर तीर बैठीं सी समर सरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से प्रेत एक पिअत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥'

टिप्पणी—१ (क) काली, भयंकर मुखवाली, तलवार और पाश धारण किये हुए, विचित्र खट्वाङ्ग धारण किये, नरमाला-विभूषणवाली, हाथीके चर्मको पहने, सूखा मांस लिये (वा, मांस सूख गया है जिसका ऐसी) अत्यन्त भयंकर बहुत विस्तृत मुखवाली, भीषण जिह्वा लपलपाती हुई, लाल नेत्रवाली, घोर शब्दसे दिशाओंको गुँजानेवाली—यह योगिनियोंका स्वरूप है। (ख) *'कराला'* इति। योगिनीकी करालता, यथा—'**काली**

* आँत गीधि—(का०), † षेलहिं—(का०)।

करालवदना विनिष्क्रान्तासिपासिनी। विचित्रखट्वाङ्गधरा नरमालाविभूषणा॥ द्वीपिचर्मपरीधाना शुष्कमांसातिभैरवा। अतिविस्तारवदना जिह्वाललनभीषणा॥ निमग्ना रक्तनयना नादापूरितदिङ्मुखा॥' (१—३) (ग) ***'योगिनी कराला'*** अर्थात् ब्राह्मी आदिक मातृकागण। **'ब्राह्मी माहेश्वरी चैन्द्री वाराही वैष्णवी तथा। कौमारी चर्ममुण्डा च कालसंकर्षणीति च॥ तेषां मातृगणो जातो ननर्तासृङ्मदोद्धतः।'** (मार्कण्डेयपुराण १-२) **'कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः'**—(भागवत)। ये सब मातृकाओंका समूह होकर मज्जा-मेदादि पानकर उद्धत हो नाचने लगीं। (घ) ***'चामुण्डा नाना बिधि'*** इति। चण्ड-मुण्डको पकड़ लानेसे **'चामुण्डा'** नाम पड़ा। **'यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यति॥'** (चण्डिकां प्रति कालीवचनम्)

गौड़जी—योगिनी, चामुण्डा आदि रणाङ्गनाएँ भगवती महामायाकी सेनामें छप्पन करोड़की संख्यामें उसी तरह रहती हैं जैसे भगवान् शङ्करकी सेनामें उनके गण। यह वह 'चामुण्डा' नहीं हैं जिनका उल्लेख सप्तशतीमें चण्ड और मुण्डको पकड़ लानेपर नामकरणके सम्बन्धमें है। मुख्य चामुण्डाके नेतृत्वमें यह करोड़ों चामुण्डाएँ होती हैं। बहुवचनसे सैनिकाएँ ही अभीष्ट हैं।

बं० पा०—योगिनियाँ अर्थात् काली देवीकी सहचरियाँ खप्पड़ोंमें रुधिर संचय करती हैं कि रातको या जब फिर भूख-प्यास लगेगी तब पियेंगी। २—भूतपिशाचवधू अर्थात् चुड़ैलें मारे हर्षके नाचती हैं।

जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाँहि हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं॥ ९॥
कोटिन्ह रुंड मुंड बिनु डोल्लहिं। सीस परे महि जय जय बोल्लहिं॥ १०॥

शब्दार्थ—**जंबुक**=गीदड़। **'शृगालवञ्चकक्रोष्टुफेरुफेरवजम्बुकः।'** (अमरकोष) **कटक्कट**=ऊपर और नीचेके दाँतोंकी रगड़से जो शब्द होता है। दाँतोंके बजनेका शब्द। **'कट्टहिं'**=काटते हैं। **हुआहिं**=हुआँ-हुआँ करना।

अर्थ—गीदड़ोंके समूह कटक्कट शब्द करते हुए शवको काटते, खाते, हुँआते, अघाते और परस्पर एक-दूसरेको डाँटते हैं॥ ९॥ करोड़ों धड़ बिना सिरके फिर रहे हैं। अनेक सिर पृथ्वीपर पड़े जय-जय बोल रहे हैं॥ १०॥

गौड़जी—यहाँ बीभत्सरस एवं अमृतध्वनि है। युद्ध-वर्णनमें यह दोनों परम सुसङ्गत हैं।

मा० म०—***'खाहिं हुआहिं अघाहिं दपट्टहिं'*** का भाव कि जब उनका उदर मुर्दोंके खानेसे कण्ठतक भर जाय और अधिक न खाया जाय तब वे हुआयँ और फिर उतना ही खा जायँ।

रा० प्र०—***'हुआना'*** गीदड़ोंकी स्वाभाविक हर्षसूचक बोली है। गीदड़ अघाकर खाकर हुँआते हैं और जो पहिले पेटभर खा चुकते हैं वे दूसरोंको खाते देख डाँटते हैं—(यह सहज स्वभाव है)

नोट—शूरवीरोंके सिर कटनेपर भी धड़ मार-काट करते हैं और सिरोंसे रणोत्साहके शब्द निकलते हैं। कारण कि उनका उत्साह भरा होनेसे प्राण शरीरमें कुछ देरतक बने रहते हैं। क्षत्रिय वीरोंमें अकबरके समयमें भी उसके उदाहरण देखे गये हैं। पं० वि० त्रि० जी लिखते हैं कि यह सरकारके बनैतीकी सफाई है कि जय-जय बोलनेवाले राक्षसोंको जो बाण लगे उन्होंने ऐसे लाघव-(सफाई-) से सिर काटे कि धड़ चला जा रहा है और सिर पृथ्वीपर गिरकर जय-जय बोल रहा है। श्रीगोस्वामीजीने रामजीकी युद्ध-विधि दिखलाते हुए कहा है कि ***'कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत धावत दिखावत हैं लाघव राघव बान के।'*** लक्ष्मणजीके बाणसे राक्षसोंके चिथड़े उड़ जाते थे, यथा—***'अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से हने भट लाखन लखन जातुधान के।'*** और हनुमान्‌जी तो उन्हें खण्ड-खण्ड कर डालते थे, यथा—***'मारि कै पछारे कै उपारे भुज दंड चंड खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के।'*** अतः मुण्डके बिना जो रुंड चल रहे हैं, और सिर जिनका पृथ्वीपर पड़ा जय-जय बोल रहा है, वे सरकारके बाणसे मारे गये हैं।

छंद—बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं।
खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट* भटन्ह ढहावहीं॥

* सुभट सुरपुर पावहीं।

बानर निसाचर निकर मर्दहिं राम-बल दर्पित भए *।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकरन्हि हए॥

शब्दार्थ—**अरुझना**=उलझना, फँसना।

अर्थ—मुण्ड 'जय जय' बोलते हैं, बिना सिरके धड़ बड़े वेगसे दौड़ते हैं, पक्षी खोपड़ियोंमें उलझ-उलझकर आपसमें जूझते हैं, (भाव कि सभी स्वयं ही सब खानेकी चाह करते हैं, दूसरेको नहीं खाने दिया चाहते, इस प्रकार परस्पर लड़े मरते हैं)। सुभट भटोंको गिरा देते हैं। वानर श्रीरामजीके बलसे दर्पित (गर्वित एवं क्रोधित) होकर राक्षस-समूहका मर्दन कर रहे हैं। श्रीरामजीके बाण-समूहसे मारे जाकर श्रेष्ठ योद्धा रणाङ्गणमें सो रहे हैं।

मा० म०—*'खप्परिन्ह खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं ······'* इति। अर्थात् जो खोपड़ियाँ रणभूमिमें पड़ी हैं उनमें पक्षी धँसकर सिरका मांस खाते हैं और उसी खोपड़ीमें उलझकर मर जाते हैं, उड़ नहीं सकते।

वीर—इस प्रकरणमें घृणा स्थायीभाव है। मुर्दोंका ढेर और भूत-प्रेतादिके दर्शन आलम्बन-विभाव हैं। गीधोंका आँत खींचना, सियारोंका मांस खाना, पिशाचिनियोंका रक्त पान करना आदि उद्दीपन-विभाव हैं। इस भीषण घटनाको देख धैर्यहत होना, रोमाञ्च हो आना अनुभाव है। आवेग, मोह, अपस्मारादि सञ्चारी भावोंसे परिपूर्ण 'वीभत्स' रस हुआ।

दो०—रावन हृदय बिचारा† भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार॥ ८७॥

अर्थ—रावणने हृदयमें विचारा कि राक्षसोंका नाश हो गया, मैं अकेला हूँ और वानर-रीछ बहुत हैं अतः अब मैं (अकेला इतनेसे कैसे लड़ सकता हूँ इससे) अपार माया रचूँ॥ ८७॥

प० प० प्र०—१ दोहेके प्रथम चरणमें १२ ही मात्राएँ हैं और अन्ताक्षर दीर्घ होनेसे उच्चारणमें भी १३ मात्राएँ नहीं होतीं। यह वृत्तदोष नहीं है वरं नाट्यकाव्यगुण ही है। इससे जनाया कि रावण निराश होकर घबड़ा गया है। सुं० दोहा २६ *'जनकसुता के आगे······'* के टिप्पण देखिये, यद्यपि वहाँ दूसरा ही रस है।

प० प० प्र० २—कुम्भकर्ण-रघुवीर-युद्धमें ***'कुंभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माँझ निसाचर धारी॥'*** पर उसने हृदयमें ऐसा विचार और निश्चय नहीं किया कि ***'मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार'***। इससे प्रतीत होता है कि कुम्भकर्ण रावणसे अधिक बलवान् और धीर-वीर था। वह मरणको नहीं डरा, भुजहीन होनेपर भी रणाङ्गणमें ही रहा, गुप्त नहीं हुआ। रावणके वचनोंसे स्पष्ट है कि वह मनमें हार गया है और तनकी रक्षाका अन्तिम यत्न करेगा, पर अन्तमें मरेगा ही।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥ १॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा। हरष सहित मातलि लै आवा॥ २॥

अर्थ—प्रभुको पैदल देखकर देवताओंके हृदयमें अत्यन्त भारी क्षोभ (दुःख उत्पन्न हुआ)॥ १॥ इन्द्रने तुरन्त अपना रथ भेजा। मातलि (इन्द्रका सारथि) हर्षपूर्वक उसे ले आया॥ २॥

नोट १—***'अति छोभ बिसेषा।'*** भाव कि इतना भारी दुःख हुआ कि वे अपने वाणीको रोक न सके, उनसे देखा न गया तब आपसमें कहने लगे कि यह युद्ध समान-युद्ध नहीं है कि एक रथपर सवार हो और दूसरा पैदल हो। यथा—'**भूमौ स्थितस्य रामस्य रथस्थस्य च रक्षसः। न समं युद्धमित्याहुर्देवगन्धर्वकिन्नराः॥**' (वाल्मी० १०२। ५) वस्तुतः यह इन्द्रको सुनानेके लिये कहा गया था जिसमें वह अपना रथ भेज दे और ऐसा ही हुआ भी। इनके वचनोंको सुननेपर उन्होंने रथ ले जानेकी आज्ञा मातलिको दी। (वाल्मी० १०२। ५—८)‡

* 'निसिचरबरूथ विमर्दि गर्जहिं भालुकपि दर्पित भए' (का०)। † 'हृदय बिचारेउ दसबदन'—(का०)।
‡ 'ततो देववरः श्रीमाञ्श्रुत्वा तेषां वचोऽमृतम्। आहूय मातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत्॥ रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि

☞ वाल्मी० में यह प्रसङ्ग दोहा ९० (१—७) में दिये हुए युद्धके बाद है।

वि० त्रि०—जब निशाचरोंका संहार हो गया, तब देवताओंकी बुद्धि ठिकाने हुई तब यह बात मनमें आयी कि अब तो राम-रावण-युद्ध ही शेष है, पर रावण रथपर है, सरकार पैदल हैं और इसी लड़ाईमें वारा-न्यारा है; अतः इसमें सरकारका पैदल रहना अत्यन्त कचाई हम लोगोंकी है। इन्द्रके मनमें भी यही भाव उठा, अतः उन्होंने तुरंत मातलिको रथ ले जानेकी आज्ञा दी।

नोट—२ पंजाबीजीने यहाँ यह शंका करके 'इन्द्रने रथ प्रथम युद्धमें क्यों न भेजा?', उसका उत्तर यह लिखा है कि—(१) प्रभुको पैदल देख जब देवताओंने इन्द्रको लज्जित किया तब उसने भेजा। वा, (२)—मेघनादसे प्रायः लक्ष्मणजीका ही युद्ध है, श्रीरामजीका युद्ध मेघनादसे नाममात्रका है। रहा कुम्भकर्ण सो उसका रथारूढ़ होकर आना कहा नहीं गया। और यहाँ अबतक राक्षस-सेनासे ही युद्ध होता रहा है। अतएव अबतक रथ न होनेकी ओर उनका ध्यान आकर्षित न हुआ था इसीसे रथ न भेजा गया। अब राम और रावण दोनों प्रथम बार सम्मुख हो रहे हैं, द्वन्द्व-युद्ध है, अतएव इस समय ध्यान स्वाभाविक रथस्थ और विरथपर गया। वा, (३) जबतक इन्द्रजीत मरा न था तबतक इन्द्र शंकितहृदय था (कि ऐसा न हो कि रथ भेजा हुआ देखकर वह फिर हमपर आ पड़े)। अब भय जाता रहा तब भेजा। वा, (४) जब प्रभुकी प्रेरणा हुई तब भेजा। वा, [(५) श्रीरामजीकी बराबर जीत देखकर भेजा। (मा० म०)]

गौड़जी—विभीषणका स्वार्थ, ममत्व और भक्ति तीनों अत्यन्त प्रबल थे, इसीलिये उन्हें सबसे पहले इसका खयाल हुआ था। देवोंकी दृष्टि इतनी पैनी नहीं है और आसुरी माया उनपर ऐसी प्रबल है कि वह श्रीरघुनाथजीके स्वरूपको न देखकर अपने स्वार्थको ही मूर्तिमान् देखते हैं। इसलिये रथका प्रश्न उन्हें बहुत देरमें सूझता है और सहस्राक्ष इन्द्र अपनी हजारों आँखें फाड़-फाड़ देखता था परंतु युद्धकी यह विषमता उसे देवताओंके सुझाये ही सूझी। देवताओंके मनमें क्षोभका उत्पन्न होना आसुरी मायापर ईश्वरी मायाकी प्रबलताकी प्रतिक्रिया है। अभीतक कौतुक-ही-कौतुक था, अब बलसाम्यपूर्वक तुमुल युद्धका दृश्य दिखाना है, इसीलिये रथ भी मँगवाया गया। मर्जी थी, इसीलिये सादर प्रणामकर रथपर सवार हुए, नहीं तो खरदूषणवधपर रथ कहाँ था?

प० प० प्र०—'*सुरपति*' शब्दका प्रयोग सहेतुक है। इन्द्रको जब यह भय लगा कि '*(नाथ) न रथ नहि तन पदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥*' रथ न होनेसे उन्हें रघुनाथजीका विजय असम्भव-सा जान पड़ा, तब विचार हुआ कि सुरोंकी रक्षा कैसे होगी। अतः सुरपति नाम चरितार्थ करनेके लिये रथका भेजना आवश्यक समझा। रथका भेजना स्वार्थमूलक ही है।

पं०—'*हरष सहित मातलि लै आवा*' स्वामीके कार्यमें हर्ष और उत्साह होने ही चाहिये। पुनः हर्ष इससे कि जिनको मुनि ध्यानमें भी नहीं पाते उनका मैं पाससे दर्शन और उनकी सेवा करूँगा। पुनः हर्ष इससे कि इस रथपर इन्द्रके साथ मैंने इन्द्र-रावण-युद्ध कई बार देखा पर सदा हार ही हुई और आज इसपर श्रीरामजीको सवार कराके रावणका पराजय और वध देखनेको मिलेगा।—(हर्ष और उत्साह वीररसके स्थायीभाव हैं)।

तेजपुंज रथ दिब्य अनूपा। हरषि चढ़े कोसलपुरभूपा॥ ३॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गतिकारी॥ ४॥

अर्थ—उस दिव्य अनुपम, तेजराशि रथपर कोसलपुरके राजा श्रीरामचन्द्रजी प्रसन्नतापूर्वक चढ़े॥ ३॥ उसमें सुन्दर मनहरण चार चंचल, अजर, अमर और मनकी गतिके समान शीघ्रगामी घोड़े जुते थे॥ ४॥

रघूत्तमम्। आहूय भूतलं यातः कुरु देवहितं महत्॥ इत्युक्तो देवराजेन मातलिर्देवसारथिः।', (ये श्लोक प्र०सं० में सम्भवतः श्रीसीताराम प्रेससे प्रकाशित वाल्मीकीयसे दिये थे। पर पण्डित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदीके संस्करणमें ये श्लोक नहीं हैं। उसमें देवराजके रथका वर्णन करके इस प्रकार कहा है—'रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः। देवराजेन सन्दिष्टो रथमारुह्य मातलिः। अभ्यवर्तत काकुत्स्थमवतीर्य त्रिविष्टपात्।' (१०२। ६-७, ११-१२) अर्थात् इन्द्रके श्रेष्ठ रथको श्रीरामजीके लिये ले जानेकी जब इन्द्रने स्वयं मातलिको आज्ञा दी तब वह उसपर सवार हो स्वर्गसे उतरकर श्रीरामजीके समीप आया।

नोट—१ *'तेजपुंज रथ दिब्य अनूपा'* इति। वाल्मी० १०२ में रथका वर्णन इस प्रकार है कि—वह रथ सोनेके कामसे चित्रित था। सैकड़ों किंकिणियोंसे भूषित था। उसके कूबर वैदूर्यमणिके थे। स्वर्णाभूषणों एवं सफेद श्वेत प्रकीर्णकों-(चमरों-) से युक्त और स्वर्णजालसे विभूषित उत्तम हरे घोड़े सूर्यसदृश प्रकाशमान थे। रुक्मवेणुकी ध्वजावाला वह श्रीमान् देवराजका श्रेष्ठ रथ है। यथा—'**ततः काञ्चनचित्राङ्गः किंकिणीशतभूषितः॥ तरुणादित्यसंकाशो वैदूर्यमयकूबरः। सदश्वैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः॥ हरिभिः सूर्यसंकाशैर्हेमजालविभूषितैः। रुक्मवेणुध्वजः श्रीमान्देवराजरथो वरः॥**' (९—११) यह सब *'तेजपुंज दिब्य अनूपा'* से कविने यहाँ सूचित कर दिया।

नोट—२ ऊपर यह कहकर कि *'हरष सहित मातलि लै आवा'* यहाँ यह कहते हैं कि *'हरषि चढ़े·······'*। इससे कविने उसे लाने और उसपर सवार होनेमें शीघ्रता दिखायी। (वाल्मीकीय ६। १०२। १४, १६) में जो मातलिने श्रीरामजीसे हाथ जोड़कर कहा है—'**सहस्राक्षेण काकुत्स्थ रथोऽयं विजयाय ते। दत्तस्तव महासत्त्व श्रीमञ्शत्रुनिबर्हण॥**', '**आरुह्येमं रथं वीर राक्षसं जहि रावणम्। मया सारथिना राजन्महेन्द्र इव दानवान्॥**' हे काकुत्स्थ! हे महापराक्रमी महाराज! हे शत्रुदमनकारिन्! देवराज इन्द्रने आपकी विजयप्राप्तिके लिये यह रथ भेजा है। जैसे मुझ सारथीको लेकर इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं वैसे ही आप भी इस रथपर सवार होकर रावणका विनाश कीजिये।—वह सब यहाँ *'लै आवा'* और सामने मूकावस्थासे खड़ा होनेसे जना दिया। वह हर्षपूर्वक लाया है, मुँहसे प्रेमानन्दके मारे वचन नहीं निकले। इसीसे श्रीरामजी भी *'हरषि चढ़े'*।

नोट—३ *'हरषि चढ़े कोसलपुरभूपा'* इति। 'हर्ष' का भाव कि—(क) (१) रथ, घोड़े, सारथी आदि सभी इस युद्धके योग्य पाये। वा, (२) रावण रथपर था, हम भी अब रथपर होंगे, द्वन्द्वयुद्ध समान होगा। वा, (३) युद्धारम्भ होनेको है इससे हर्ष शकुनसूचक है। वा, (४) विभीषणके मनकी भी हो गयी। (पं०)। वा, (ख) रथविद्यामें निपुण हैं, अतः उसपर चढ़कर प्रसन्न हुए। वा, रथपर चढ़कर वानरोंकी मर्यादा बढ़ायी। वा, देवताओंका प्रेम और मातलिकी चतुरता देख हर्षित हुए (मा० म०)।

'हरषि' से परिक्रमा और प्रणाम करके चढ़ना भी जना दिया है। यथा—'**सम्परिक्रम्य रथं तमभिवाद्य च**' (वाल्मी० १०२। १७)। पुनः *'हरषि चढ़े'* और 'दिव्य' का एक भाव यह भी है कि मातलिके रथ लानेपर प्रभुने शङ्का की कि कहीं यह रावणकी माया न हो। तब विभीषणने कहा कि यह रावणकी माया नहीं है, आप इसपर सवार हों। यह सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने बहुत हर्षित हो कहा कि ऐसा ही करेंगे और रथपर सवार हुए। यह कथा महाभारतमें है और वहाँ भी '**प्रहृष्टः**' पद आया है। अतएव वह भाव भी 'हर्षित' पदमें आ गया। यथा—'**इत्युक्तो राघवस्तथ्यं वचोऽशङ्कत मातलेः॥ मायैषा राक्षसस्येति तमुवाच विभीषणः। नेयं माया नरव्याघ्र रावणस्य दुरात्मनः॥ तदातिष्ठ रथं शीघ्रमिममैन्द्रं महाद्युते। ततः प्रहृष्टः काकुत्स्थस्तथेत्युक्त्वा विभीषणम्॥·······रथेनाभिपपाताथ दशग्रीवं रुषान्वितः॥**' (वनपर्व २९०। १५—१८)

'कोसलपुरभूपा' का भाव कि यह रथ सुरराजका है, राजेन्द्रके योग्य है। और प्रभु चक्रवर्ती राजा हैं। क्योंकि कोसलपुरके राजा हैं। इसलिये उसपर इनका सवार होना योग्य ही है। पुनः इन्द्र कोसलपुरभूपका सखा है, अपने सिंहासनपर सदा दशरथजीको अपने बराबर बिठाता था—*'अर्ध सिंहासन आसन देई'* अतः इस रथपर कोसलपुरभूपका सवार होना योग्य ही है। पुनः इन्द्रकी सहायता कोसलेश सदा करते थे, यथा—*'सुरपति बसइ बाहु बल जाके।'* इस समय भी उन्हींके लिये प्रभु लड़ रहे हैं, उन्हींकी सहायता करनेके लिये चले हैं। अतः *'चढ़े कोसलपुरभूपा'* कहा। दूसरा इसपर नहीं चढ़ सकता था।

बं० पा०—लंकेशकी जोड़में एवं इन्द्ररथपर चढ़ने और रणपाण्डित्य जनाने तथा पृथ्वीकी रक्षाके विचारसे 'कोसलपुरभूप' कहा।

पं०—ऐश्वर्यरूपसे तो गरुड़हीपर सवार होना था पर इस समय स्वाँग भूपरूपका है, अतः रथपर चढ़े।

नोट—४ उत्तम घोड़ेमें चार गुण होते हैं—वय, रूप, बल और गति। यथा—*'आपने बय बल रूप गुन गति सकल भुवन बिमोहई।'* (बा० छं० दोहा ३१६) यहाँ वह चारों गुण दिखाये हैं। (क) 'चञ्चल' से अवस्था। चञ्चल=चुलबुला, एक ठौर जो स्थित न रह सके। यह गुण अवस्था जानेपर नहीं रह सकता। पुनः चञ्चलसे गति भी उत्तम जनायी, यथा—*'सुभग सकल सुठि चंचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी॥'* (११। २९८), *'जात नचावत चपल तुरंगा।'* चञ्चलता गुण है। (ख) 'मनोहर' से उत्तम रूप, 'अजर' से वय और बल, 'अमर' से बल और *'मन सम गतिकारी'* से उत्तम गति जनायी। *'मन सम गतिकारी'* में दो भाव हैं। एक यह कि जैसी सवारके मनमें इच्छा हो वैसा ही चलते हैं, दूसरे मनके समान वेगसे चलनेवाले। मनके समान अपनी गति कर लेनेवाले, यह शब्दार्थ है।

रथारूढ़ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥५॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी॥६॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजीको रथपर चढ़े देखकर वानर विशेष बल पाकर दौड़े॥ ५॥ वानरोंकी मार सही न गयी तब रावणने माया फैलायी॥ ६॥

नोट—१ पूर्व प्रसङ्ग *'मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार।'* (८७) पर छोड़ा था। बीचमें देवताओंका दुःखी होना और इन्द्रका रथ भेजना इत्यादि कहा। अब फिर जहाँ छोड़ा था वहींसे प्रसङ्ग उठाया—*'रावन माया बिस्तारी।'* वहाँके *'मैं अकेल कपि भालु बहु'* का भाव *'सही न जाइ कपिन्ह कै मारी'* से स्पष्ट किया।

रा० प्र०—*'बलु पाइ बिसेषी'* का भाव कि अभीतक मेघनाद और रावणके मुकाबिलेमें पैदल ही लड़ते हुए जीतते आये और अब तो बराबरका युद्ध होगा तब क्या कहना है, अवश्य जय पायँगे।

सो माया रघुबीरहिं बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी* साँची॥७॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी†॥८॥

शब्दार्थ—**बाँचना**=बचाना, छोड़ देना। वचन ठीक समझना, पढ़ना। '**बाँची**' का अव्ययार्थ 'सिवाय' एवं 'छोड़कर' है।

अर्थ—उस मायाको श्रीरघुनाथजीने ही ठीक-ठीक समझा। श्रीलक्ष्मणजी और वानरोंने उसे सच्चा मान लिया॥ ७॥ वानरोंने राक्षसी सेना और भाई लक्ष्मणसहित बहुत-से कोसलपति राम देखे॥ ८॥

नोट—रावणकी मायाकी चर्चा महाभारतमें इस प्रकार है कि फिर शत्रुद्वारा अपनी सेना मारी जाती हुई देखकर वह मायावी रावण माया रचने लगा। उसकी देहसे सैकड़ों, सहस्रों राक्षस बाण-शक्ति आदि लिये हुए दिखायी दिये। उन सबोंको श्रीरामजीने दिव्यास्त्रसे मारा। फिर भी रावणने और माया रची कि राम और लक्ष्मणके बहुत-से रूप बनाकर उनपर दौड़ा। बादमें राक्षस श्रीराम-लक्ष्मणपर धनुष-बाण लिये झपटे। उसकी मायाको देखकर लक्ष्मणजी श्रीरामजीसे बड़े गम्भीर वाणीसे बोले कि हम लोगोंके सदृश स्वरूप धारण किये हुए इन पापी राक्षसोंको मारिये तब रामचन्द्रजीने उन सब अपने सदृश स्वरूपधारियोंको मारा। यथा—'**ततः ससैन्यमालोक्य वध्यमानमरातिभिः। मायावी चासृजन्मायां रावणो राक्षसाधिपः॥ तस्य देहविनिष्क्रान्ताः शतशोऽथ सहस्रशः। राक्षसाः प्रत्यदृश्यन्त शरशक्त्यृष्टिपाणयः॥ तान् रामो जघ्निवान् सर्वान् दिव्येनास्त्रेण राक्षसान्। अथ भूयोऽपि मायां स व्यदधाद्राक्षसाधिपः॥ कृत्वा रामस्य रूपाणि लक्ष्मणस्य च भारत। अभिदुद्राव रामं च लक्ष्मणं च दशाननः॥ ततस्ते राममार्च्छन्तो लक्ष्मणं च क्षपाचराः। अभिपेतुस्तदा रामं प्रगृहीतशरासनाः॥ तां दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य मायामिक्ष्वाकुनन्दनः। उवाच रामं सौमित्रिरसंभ्रान्तो बृहद्वचः॥ जहीमान् राक्षसान्पापानात्मनः प्रतिरूपकान्। जघान रामस्तांश्चान्यानात्मनः प्रतिरूपकान्॥**' (वनपर्व २९०। ५—११)

* सब काहू मानो करि। † बहुँ अंगद लछिमन कपि घनी—(का०)।

पं० वि० त्रिपाठीजी—जिस लेखको जो बाँच नहीं सकता, उसे उसका भेद मालूम नहीं हो सकता। वह माया किसीकी समझमें नहीं आयी, जैसे अपरिचित अक्षरोंमें लिखी हुई चीठी किसीकी समझमें नहीं आती। मायाका बाँचना उसकी करामातको समझ लेना है कि अमुक उपाय किया गया है, जिससे यह झूठा दृश्य दिखायी पड़ रहा है। आजकलका सिनेमा उसी मायाका एक भद्दा रूप है। जब कुहक विद्या-(साइन्स-) की और अधिक उन्नति होगी तब सिनेमाका दृश्य रणाङ्गणके खुले मैदानमें दिखाया जा सकेगा। यह साइन्स (पाश्चात्त्य विज्ञान) बड़े कामकी चीज होनेपर भी संसारको ही दृढ़ करनेवाली है, अतः इसका परमार्थपथके पथिकोंमें कोई आदर नहीं है, क्योंकि यह भी एक प्रकारका शिल्प है, यथा '**तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरे कर्म विद्यान्या शिल्पनैपुणम्॥**' कर्म वही है जिससे बन्ध न हो, विद्या वही है, जिससे मुक्ति हो। दूसरे कर्म तो परिश्रमके लिये हैं, और दूसरी विद्या शिल्पकी निपुणतामात्र है। जैसे सिनेमाके भेदके जाननेवालेके लिये वह दृश्य अत्यन्त झूठा है, और सिनेमामेंका किला और फौजका संहार हँसीखेल है, उसी भाँति रावणके दिखाये हुए दृश्यको नष्ट कर देना श्रीरामजीके लिये हँसी-खेल था; क्योंकि उन्होंने उसका मर्म जान पाया था।

प० प० प्र०—'*देखी कपिन्ह*..........' में मात्राओंकी कमी करके श्रीलक्ष्मणजी और सेनाभरका चकित होना, किंकर्तव्यविमूढ़ होकर स्तम्भित हो जाना इत्यादि सूचित कर दिया।

छं०—बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे *।
जनु चित्र लिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥

अर्थ—बहुत-से राम-लक्ष्मण देखकर वानर और रीछ मनमें अत्यन्त ही (झूठे डरसे) डर गये। लक्ष्मणसहित जो जहाँ हैं वह वहीं खड़े रहकर इस तरह देखने लगे मानो लिखे हुए चित्र ही हैं (कि एकरस टकटकी लगाये देख रहे हैं, हिलते-डोलतेतक नहीं)। अपनी सेनाको चकित (आश्चर्ययुक्त) देख दुःखके हरनेवाले भगवान् कोसलपति श्रीरामजीने हँसकर धनुषपर बाण सजकर निमेषमात्रमें ही माया हर ली। सब वानर-सेना हर्षित हो गयी।

नोट—१ '*अति अपडरे*' (क)—अपडर झूठे डरसे डरनेको कहते हैं, यथा—'*अपडर डरेउँ न सोच समूले। रबिहि न दोसु देव दिसि भूले॥*' (२। २६७। ३), '*समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्ह नहिं सपने॥*' (१। २९। १) भाव कि यह झूठी माया है इससे डरना न चाहिये था। (ख) वानर अत्यन्त भयभीत हुए कि हमारी ओर तो एक ही राम और एक ही लक्ष्मण हैं और उधर असंख्य, तब कैसे क्या होगा? हम सबका मरण निश्चय है। वा, इससे डरे कि सब हमारे स्वामी हैं इनसे कैसे लड़ेंगे। (पं०) श्रीसीतारूप परीक्षार्थ धर लेनेपर शिवजीने सोचा था कि सतीमें प्रेम करनेसे '*मिटइ भगतिपथ होइ अनीती*' तब यहाँ तो सभी रामभक्त हैं। वे रामरूपपर कैसे प्रहार कर सकेंगे। अतः सब भयत्रस्त किंकर्तव्यविमूढ़, चित्रलिखित-से हो गये। (प० प० प्र०)

नोट—२ '*हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।*' (क) हँसना रावणके निरादरार्थ एवं इस कौतुकपर है कि इसकी मायासे लक्ष्मणतक चकित हो गये हैं। पुनः हँसकर सेनापर कृपा सूचित की। पुनः भाव कि सामान्य राक्षसी मायाके नाशके लिये अपनी वैष्णवी माया हासको काममें लाये। हँसी आपकी माया है, उसे बाणके साथ भेजा। (ख) हँसनेमें '*कोसलधनी*' और मायाहरणमें '*हरि*' पद दिये। राजा कौतुक देखते ही हैं, अतः हँसे। पुनः कोसलपति हैं, वे शत्रुको क्या समझें—'*कालहु डरहिं न रन रघुबंसी।*' अतः निरादरार्थ हँसनेमें यह पद दिया। (ग) दुःख हरा क्योंकि हरि हैं। हरिका अर्थ ही है, दुःख हरनेवाला। साभिप्राय होनेसे 'परिकराङ्कुर अलङ्कार' है। (प्र० सं०)। पुनः '*धनी*' कहनेमें भाव यह है कि सेवकोंके निकट होनेपर

* बहुबालिसुत लछिमन कपीस बिलोकि मर्कट अपडरे।

भी यदि धनीद्वारा उनका कुशल न होगा तो अनुचित होगा। यहाँ कृपाल या समानार्थक शब्दका प्रयोग न करनेमें भाव यह है कि अपने भक्तों, आश्रितोंका भय निवारण करना अपना कर्तव्य समझकर बाणको चढ़ाकर मायाका निवारण किया। (प० प० प्र०)

प० प० प्र०—रावणने मायासे अमित राम-लक्ष्मण उत्पन्न किये, पर किसीने कपि-सेनापर प्रहार न किया। इससे सूचित किया कि मायारूपी राम-लक्ष्मणमें भी वानर-सेनापर प्रहार करनेकी इच्छा ही न हुई। यह 'रामरूप' ग्रहण करनेका परिणाम है।

नोट—३ हनु० १० में लिखा है कि अपने मन्दिरमें कुछ समय व्यतीत करके उसने विचार किया कि यहाँ प्रपंचकी रचना करके निस्संदेह जानकीको भोगूँगा। ऐसा विचारकर वह राक्षसेश्वर मायासे रामरूप हो गया और उस रूपसे अशोकवाटिकामें प्रवेश किया और श्रीजानकीजीके समीप गया। श्रीजानकीजी उठकर खड़ी हो जाती हैं। पर रामरूप धारण करनेपर उसके हृदयसे संपूर्ण पापकी मूल चेष्टाएँ जाती रहती हैं। यथा—**'निजमन्दिरं कियन्तं समयं नीत्वा (स्वगत) इदानीं महान्तं प्रपञ्चमुत्पाद्य नूनं जानकीमनुभविष्यामीत्यवधार्य', '..........रामः स्वयमभवदथो मायया..........॥' (एवंविधो भूत्वा पुनरशोकवनिकां प्रविश्य रावणः) लंकाभटोऽथ रघुनन्दनवेषधारी पापो जगाम पुरतो जनकात्मजायाः॥..........', 'क्लीबो विशीर्णमणिदण्डयुतः स्मरार्तपापात्ततः शिवशिवान्तरधीयत द्राक्॥'** (१८-१९, २१) (रावण विशीर्ण मणिदण्डसे युक्त होता हुआ नपुंसक होकर 'शिव! शिव' कहता हुआ कामके दुःखरूप पापसे उसी समय अन्तर्धान हो गया)।, (**'अथ निजकेलिमन्दिरस्थो रावणः स्वगतम्) कृतकृत्येऽपि रामत्वे वर्तमाने मयि स्थिते॥ निरुध्यन्त्येव ताः सर्वाः पापमूलाः प्रवृत्तयः॥'** (२३) (ये विचार स्वयं रावणके हैं)। और कवि भी कहते हैं कि **'नाम्नापि यस्य कुत इच्छति तस्य रूपादन्याङ्गनापहरणे न मनः कदाचित्॥'** (१९) अर्थात् जिन श्रीरामचन्द्रजीके नाममात्रसे ही मन परस्त्रीके हरणकी इच्छा नहीं करता है, तब उनके साक्षात् रूपसे परस्त्रीके हरणमें मन कैसे इच्छा करेगा।—यह श्रीरामरूपका महत्त्व है। पवित्रात्मा संतोंका स्मरण एवं ध्यान करनेका यह महत्त्व है कि कामादि खलोंसे रक्षा होती रहती है, फिर अनघ, अकाम, सर्वदिव्यगुणसम्पन्न सर्वहेयगुणरहित श्रीरामजीका स्मरण और ध्यान कलियुगके पापोंसे हमारे अन्तःकरणकी रक्षा क्यों न करेगा, उनका स्मरण हमें अवश्य पवित्रात्मा बना देगा, यह विश्वास करके हमलोगोंको भगवान् रामका स्मरण और ध्यान करना चाहिये। ☞ यह उपदेश हमें इस प्रसङ्गसे मिलता है।

टिप्पणी—१ ***'हरषी सकल मर्कट अनी'*** इति। यहाँ हर्ष तो कहा पर साथ ही वानरोंका उत्साहपूर्वक लड़नेको जाना यहाँ नहीं कहा, यद्यपि जब-जब मायाका हरण करना ग्रन्थकारने लिखा है तब-तब कपि-भालुका युद्धहेतु धावना भी कहते आये हैं। इससे जनाया कि हर्ष हुआ पर रावणके सम्मुख युद्धकी इच्छा नहीं रह गयी। यथा—**'दशाननः क्रोधविवृत्तनेत्रो यतो यतोऽभ्येति रथेन संख्ये। ततस्ततस्तस्य शरप्रवेगं सोढुं न शेकुर्हरियूथपास्ते॥'** (वाल्मी० ९५। ५३) अर्थात् रावण क्रोधसे नेत्र फैलाकर रथपर चढ़कर जिस-जिस रास्तेसे रणभूमिपर दौड़ता है वहाँ-वहाँ उसके बाणवेगको बड़े-बड़े यूथपति वानर भी न सह सके।

(प्र० स्वामीजी कहते हैं कि भगवान्‌के हास्यका ही यह परिणाम है। वे सेनाको विश्राम देना और स्वयं रावणसे द्वन्द्वयुद्ध करना चाहते हैं। अतएव वानरोंकी इच्छा ही न हुई।)

टिप्पणी—२ ☞ रावणको ब्रह्माका वरदान था कि जब जिस रूपके धारण करनेकी इच्छा मनमें होगी तब उसी समय तुम्हारा वह रूप हो जायगा। यथा—**'छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम्। एवं पितामहोक्तं च दशग्रीवस्य रक्षसः॥'** (वाल्मी० उ० १०। २५) अर्थात् ब्रह्माजीने रावणसे कहा कि हे राक्षस! स्वेच्छासे तुम जब जैसा-जैसा रूप बनानेकी इच्छा करोगे तब वैसा-वैसा रूप हमारे वरदानसे हो जायगा, इसमें कोई संदेह नहीं।

दो०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंद* जुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर॥८८॥

* द्वंद्व—(का०)। द्वन्द्व—(भा०दा०)

अर्थ—फिर श्रीरामचन्द्रजी, सबकी ओर देखकर, गम्भीर वचन बोले—'तुम सब वीर बहुत ही थक गये हो, इससे अब हमारा और रावणका द्वन्द्व-युद्ध देखो'॥ ८८॥

नोट—१ *'बहुरि राम सब तन चितइ बोले'।* (क) *'बहुरि'* अर्थात् मायाहरणके पश्चात् जब सेना प्रसन्न हुई तब राम हैं, सबके हृदयकी जानते हैं, दूसरे सब (अपार सेना) को एक ही जगहसे देख लिया इससे 'राम' पद दिया। यथा—*'राम कृपा करि चितवा सबहीं। भए बिगत श्रम बानर तबहीं॥'* (४७। २) (ख) इसमें ध्वनिसे यह इशारा है कि भगवान्‌ने कृपाकोरसे देखकर सबके श्रमको दूर कर दिया। (ग)—सबके मुखकी चेष्टासे जान गये कि उत्साह जाता रहा है, सब डर गये हैं। अतः बोले। (घ) *'बचन गँभीर'* का भाव कि यह न कहा कि तुम डर गये हो, तुम्हारा उत्साह जाता रहा है; किंतु यह कहा कि तुम सब बहुत थक गये हो। पुनः गम्भीर वचन अर्थात् जो दूरतक और सबको स्पष्ट सुन पड़े। यथा—*'बोले घन इव गिरा गँभीरा॥'* (७४। १२; लक्ष्मणजी)

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥ १॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सन्मुख धावा*॥ २॥

अर्थ—ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजीने रथ चलाया। विप्रचरणकमलमें मस्तक नवाया॥ १॥ (जब रथ आगे बढ़ा) तब रावणके हृदयमें क्रोध छा गया और वह गरजता-दपटता हुआ सामने आया॥ २॥

पु० रा० कु०—विप्रचरणमें प्रणामसे मङ्गलाचरण किया। यथा—*'बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत।'* (अ० ७९)

नोट—१ यह मानसिक प्रणाम है क्योंकि यहाँ विप्र नहीं हैं। पुनः, यह भी भाव है कि *'भृगुलता'* चिह्न जो हृदयंपर प्रत्यक्ष है उसको प्रणाम किया। इसीसे यहाँ ध्यानमें विप्रचरन भी कहा था—*'उर धरासुर पद लस्यो।'* (८४ छन्द) देखिये। मा० म० में *'विप्रचरन'* से अगस्त्यजीको, वा रावणमें जो विप्र-अंश है उसको नमस्कार करनेका भाव कहा है। पंजाबीजीका मत है कि विप्रचरणमें प्रणाम करके जनाते हैं कि यद्यपि रावण ब्राह्मण है पर तुम्हारे ही लिये राक्षस जानकर हम उसे मारने जाते हैं, अतः क्षमा कीजियेगा। और बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि विप्रचरणोंको प्रणाम करके मर्यादापुरुषोत्तम प्राणिमात्रको धर्मकी शिक्षा दे रहे हैं कि ये चरण कार्य सिद्ध करनेवाले हैं।

नोट—२ *'तब लंकेस क्रोध उर छावा'।* क्रोधका कारण कि—(क) इन्द्रके रथपर ये सवार होकर आये, आज इन्द्रको यह साहस हुआ कि उसने अपना रथ सहायताके लिये भेजा। (ख) मुझ लोकविजयीके सम्मुख कोई वीर अकेला बढ़कर आगे आनेका साहस नहीं कर सकता और ये निःशङ्क आगे बढ़े आते हैं। (ग) श्रीरघुनाथजीको देख भाई, पुत्र और सेनाका मरण स्मरण हो आया। (घ) खिसियाया हुआ है; क्योंकि इन्होंने निमेषमात्रमें उसकी माया नष्ट कर दी। खिसियायेको क्रोध बहुत होता ही है।

जीतेहु जे भट संजुग माहीं। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाहीं॥ ३॥
रावन नाम जगत जसु जाना। लोकप जाके बंदीखाना॥ ४॥

अर्थ—अरे तपस्वी! सुन, जिन योद्धाओंको तुमने युद्धमें जीता है, मैं उनकी तरह नहीं हूँ॥ ३॥ मेरा रावण नाम है, संसारभर जिसके यशको जानता है, जिसके कैदखानेमें लोकपाल भी पड़े हुए हैं॥ ४॥

नोट—१ (क) *'गर्जत तर्जत सन्मुख धावा'* पूर्व कहा, अब *'गर्जत तर्जत'* का स्वरूप दिखाया। (ख) *'सुनु तापस'* इति। यह देवराज इन्द्रके रथपर चढ़नेपर कटाक्षके अभिप्रायसे कहा गया है (बं० पा०)। भाव कि इसपर चढ़नेसे तुम राजा नहीं हो गये, 'तपसी' ही हो, श्रीरामजीको 'तापस' तो पूर्व भी कहता रहा है। यथा—*'जिअत धरहु तापस दोउ भाई।'* (३२। २), *'मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।'* (५। ४१), *'कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी।'* (५। ५३) इत्यादि। वैसे ही निरादरपूर्वक यहाँ भी 'तापस' कहा। (ग)

* आवा (का०)

'मैं तिन्ह सम नाहीं' का भाव कि वे मेरे सामने तुच्छ हैं, उनमें हमारा-सा पराक्रम और यश कहाँ? आगे उनसे अपनेमें विशेषता दिखाता है।

नोट—२ *'रावन नाम'*। भाव कि जगत् मात्रको रुलानेवाला हूँ। इसीसे शिवजीने यह नाम रखा।—जगत्को रुलानेसे, कैलास उठानेसे, शिवजीके नामकरण करनेसे एवं लोकपालोंको कैद करनेसे सारा जगत् जानता है, *'जसु जाना'* का भाव कि लोकपालोंको कैद करनेका यश और किसीको नहीं प्राप्त हुआ। पुनः भाव कि हमें जगत् जानता है, औरोंकी किसी-किसीने जाना; क्योंकि दिग्विजयी कोई न हुआ, न किसीने संसारभरको रुलाया, हमारे समर-यशको जगत् जानता है कि हम जगत्को रुलानेवाले हैं।

खर दूषन बिराध* तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा॥ ५॥
निसिचर निकर† सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु॥ ६॥
आज‡ बयरु सब लेउँ निबाही। जौं रन भूप भाजि नहिं जाही॥ ७॥
आज करौं खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले॥ ८॥

शब्दार्थ—**निबाहना**=चुकाना, निबटाना। 'पाले पड़ना' मुहावरा है।=वशमें या पकड़में आना।

अर्थ—तुमने खर-दूषण और विराधको मारा। बेचारे बालिको व्याधकी तरह (छिपकर) मारा॥ ५॥ बड़े-बड़े निशिचर योद्धाओंके समूहका तुमने संहार किया और कुम्भकर्ण तथा मेघनादको मारा॥ ६॥ हे भूप! यदि तू रणसे भाग न गया तो आज मैं सबका वैर चुका लूँगा॥ ७॥ आज निश्चय ही तुम्हें मैं कालके हवाले कर दूँगा। (मार डालूँगा), तुम आज कठिन रावणके पाले पड़े हो॥ ८॥

नोट—१ *'खर दूषन.........'* इति। (क) अरण्य, किष्किन्धा और यहाँतक लङ्काकाण्डके वीर योद्धाओंको क्रमसे गिनाया। (ख) *'बालि बिचारा'* का भाव कि वह वानर ही तो था। ध्वनि यह है कि तुमने वीर कौन-सा मारा है जिसपर घमण्डमें भूले हो? इन्हींको जीतनेसे अपनेको वीर समझते हो! यदि बलका गर्व है तो मेरे सामने वीरता दिखाओ। यथा हनुमन्नाटके—**'स्त्रीमात्रं ननु ताटका मुनिसुतो रामः स विप्रः शुचिर्मारीचो मृग एव भीतिभवनं वाली पुनर्वानरः। भो काकुत्स्थ विकत्थसे वद रणे वीरस्त्वया को जितो दोर्गर्वस्तु तथापि ते यदि पुनः कोदण्डमारोपय॥'** (१४। २१) अर्थात् रावण बोला कि स्त्रीमात्र तो ताड़का, मुनिपुत्र ब्राह्मण परशुराम, जो स्वभावसे ही पवित्र था, मारीच मृग भयका भण्डार, ऐसा ही बंदर बाली, ये ही तुमने जीते हैं। हे काकुत्स्थ! तो भी तुम अपनी श्लाघा करते हो। कहो तो तुमने वीर कौन-सा जीता है? तथापि यदि तुम्हें भुजदण्डोंका गर्व है तो धनुष चढ़ाओ।

'बालि बिचारा' में उपर्युक्त उद्धरणसे भी अधिक भाव यह है कि बालि लाचार था, उसको चारा ही क्या था, तुमने उसे छिपकर मारा था, सामने तो आये ही न थे। इस जीतको जीत नहीं कहेंगे।

नोट—२ (क) 'वैर निबाहना'='वैर चुकाना'=बदला लेकर संतुष्ट हो जाना। (ख)—*'जौं रन भूप भाजि नहिं जाही।'* भाव कि भागे हुएपर मैं अस्त्र-शस्त्र नहीं चलाता—*'समर बिमुख मैं हतउँ न काहू।'* (३। १९। १२; रामोक्ति)

रा० प्र० का मत है कि छत्र-चामरादि राजचिह्नों एवं रथारूढ़ होनेसे *'भूप'* कहा।' परंतु 'भूप', 'नृप', 'तापस' ये ही शब्द रावणने श्रीरामजीके लिये प्रयुक्त किये हैं। जब रथारूढ़ न थे तब भी 'भूप' और 'नृप' का प्रयोग रावणने किया है, यथा—*'जेहि बिधि हरि आनौं नृप नारी।'* (३। २५; मारीचप्रति), *'भूप सुजस खल मोहि सुनावा।'* (२८। ५; अङ्गदप्रति) एवं *'हौं मारिहौं भूप दोउ भाई।'* (७८। १२; सेनासे)। इत्यादि। अतएव 'भूप' सम्बोधन निरादरार्थ है। भाव कि तुम मनुष्योंके राजा हो, भला राक्षसराजके सामने ठहर सकते हो! स्मरण रखनेकी बात है कि रावणने 'राम' नाम कहीं नहीं लिया है, केवल मरते समय 'राम' नाम उच्चारण किया है।

पु० रा० कु०—*'करौं खलु काल हवाले'* से जनाया कि काल मेरे वश है, मेरी आज्ञामें है; वशवर्ती

* कबन्ध। † सुभट निकर। ‡ बयरु आज—(का०)।

होनेसे मेरा कहा करेगा।

नोट—३ *'खरदूषन……पाले'* इन चौपाइयोंसे मिलते हुए श्लोक ये हैं—**'खरस्य कुम्भकर्णस्य प्रहस्तेन्द्रजितोस्तथा। करिष्यामि प्रतीकारमद्य शत्रुवधादहम्॥'**, **'हतो भ्राता च येषां वै येषां च तनयो हतः। वधेनाद्य रिपोस्तेषां करोम्यश्रुप्रमार्जनम्॥'** (वाल्मी० ९५। ११, १८) अर्थात् (ये वचन रावणने महोदरादिसे कहे हैं।) शत्रुको वध करके आज खर, कुम्भकर्ण, प्रहस्त और मेघनादके मारनेका बदला चुकाऊँगा। जिनके भाई और जिनके पुत्र मारे गये हैं उन सबके आँसू आज शत्रुके मारे जानेसे पुछ जायँगे।

पुनश्च—**'रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमूमुखे। त्वां निहत्य रणश्लाघिन् करोमि तरसा समम्॥ तिष्ठेदानीं निहन्मि त्वामेष शूलेन राघव।'** (वाल्मी० १०२। ५७-५८) अर्थात् हे समरश्लाघिन्! आज तुमको मारकर समरमें मारे हुए वीर राक्षसोंके सदृश कर दूँगा। हे राघव! खड़े रहो, तुमको त्रिशूलसे मारता हूँ। (चतुर्वेदीके संस्करणमें यह १०४। १९, २० में है)।

नोट—४ शाल्वने भगवान् श्रीकृष्णसे और जरासन्धने बलरामजीसे भी ऐसा ही कहा है। यथा—**'तं त्वाद्य निशितैर्बाणैरपराजितमानिनम्। नयाम्यपुनरावृत्तिं यदि तिष्ठेर्ममाग्रतः॥'** (भा० १०। ७७। १८), **'तव राम यदि श्रद्धा युध्यस्व धैर्यमुद्वह। हित्वा…………'** (भा० १०। ५०। १९), अर्थात् तुम्हें अपने अपराजित होनेका अभिमान है, यदि थोड़ी देर हमारे सम्मुख ठहरनेका साहस करोगे तो तुमको मैं अभी उस लोकको पहुँचा दूँगा जहाँसे कोई लौटता नहीं। युद्धकी श्रद्धा है तो धैर्यसहित युद्ध करो।

पु० रा० कु०—सरस्वतीकृत अर्थ यह है कि 'सब वैर—सुर-मुनि-अपराध, सीताहरणापराध—यदि पूर्ववत् रावण रणसे भाग न जाय तो आज इसी दिन, राम! इस खलको कालके हवाले करो; क्योंकि रावणके पाले (को बचानेसे) सबको कठिन पड़ रहा है।' यही देवताओंने पूर्व विनती भी की है कि *'दारुन बिपति हमहि एहि दीन्ही॥……अब जनि नाथ खेलावहु एही। अतिसय बिकल होति बैदेही॥'*

'कठिन रावण'। तात्पर्य कि अन्य रामावतारोंमें तुमने जो रावण मारे उनके समान मुझे न जानो। मैं कठिन रावण विष्णु आदिको जीतनेवाला हूँ।—**'वज्रोल्लिखितपीनांशौ विष्णुचक्रपरिक्षितौ।'** (वाल्मी० सुं०)

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥ ९ ॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥ १०॥

अर्थ—दुर्वचन सुनकर और उसे कालवश जान दयासागरने हँसकर ये वचन कहे॥ ९॥ तुम्हारी सब प्रभुता सच है, सच है। परन्तु अब व्यर्थ बको मत, अपना पुरुषत्व दिखाओ॥ १०॥

टिप्पणी—१ *'सुनि दुर्बचन'*। *'आज करौं खलु काल हवाले'* इत्यादि दुर्वचन हैं। (ख) *'बिहँसि'* इति। अनादरार्थ हँसे और निःशङ्क तो हैं ही, यथा—*'छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुलकलंकु तेहि पावँर आना॥'* (बाल० १। २८४। ३) [अपने सखाके वीररसमय वचन सुनकर हँसे; किन्तु जीवका अभिमान समझकर हँसे। (करु०)।] (ग) दुर्वचन सुनकर क्रोध आना चाहिये पर सज्जन लोग खलके दुर्वचन सह लेते हैं, उसपर क्रोध नहीं करते; यथा—*'बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे॥'* प्रत्युत उसपर तरस खाकर कि इसका तो स्वभाव ही यह है, प्रत्युत्तरमें दुर्वचन न कहकर उसे क्षमा ही करते हैं। वैसे ही यह समझकर कि वह कालवश है, श्रीरामजीने हँसकर उसे क्षमा किया। उसपर दया की। कृपानिधान हैं, अतः क्रोध कैसे आवे?

नोट—१ (क) *'सत्य सत्य………'* इति। भाव कि तुम्हारा लोकपालोंको जीतना सत्य है, पर हम लोकपाल नहीं हैं, योद्धा हैं—*'कालहु डरहिं न रन रघुबंसी'*, *'लरहिं सुखेन काल किन होई'*, जो तेरा बल है उसे दिखा। (पं०) अथवा सत्य-सत्य जो तेरी प्रभुता हो उसे दिखा। (पां०)। यहाँ *'सत्य-सत्य'* शब्द अर्धाङ्गीकारके अर्थमें है; क्योंकि साथ ही आगे *'जल्पसि जनि………'* भी कहते हैं।

(ख) *'जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई'* इति। भाव कि तुम्हारी वीरता हम जानते हैं, यही है न कि शून्यमें पर-स्त्रीका हरण किया, इत्यादि। इसीपर वीर बनते हो। वाल्मीकिजीने जो श्रीरामजीका उत्तर ८ श्लोकोंमें लिखा है वह *'जल्पसि जनि'* इतनेमें ही संक्षेपसे मानसकारने कह दिया। वाल्मी० १०३ में परुष वचन कहे हैं।

मिलान कीजिये—(१) 'ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः। उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः॥ मम भार्या जनस्थानादज्ञानाद्राक्षसाधम। हृता ते विवशा यस्मात्तस्मात्त्वं नासि वीर्यवान्॥ मया विरहितां दीनां वर्तमानां महावने। वैदेहीं प्रसभं हत्वा शूरोऽहमिति मन्यसे॥ स्त्रीषु शूर विनाथासु परदाराभिमर्शनम्। कृत्वा कापुरुषं कर्म शूरोऽहमिति मन्यसे॥ भिन्नमर्याद निर्लज्ज चारित्रेष्वनवस्थित। दर्पान्मृत्युमुपादाय शूरोऽहमितिमन्यसे॥ शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च। श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्थं च कृतं त्वया॥ उत्सेकेनाभिपन्नस्य गर्हितस्याहितस्य च। कर्मणः प्राप्नुहीदानीं तस्याद्य सुमहत्फलम्॥ शूरोऽहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते। नैव लज्जास्ति ते सीतां चौरवद्व्यपकर्षतः॥ यदि मत्सन्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात्॥ भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः॥' (१०—१८) अर्थात् वीर रामचन्द्रजी क्रोधपूर्वक हँसकर रावणसे कठोर वचन बोले कि 'हे राक्षसाधम! हमारी अनुपस्थितिमें तू हमारे पराक्रमकी अवज्ञा कर जनस्थानसे हमारी विवश भार्याको हर लाया है, इससे तू वीर्यवान् नहीं है। परोक्षमें एकान्तमें बैठी हुई दुःखित सीताको वनमेंसे चुराकर तू अपनेको शूर समझता है? हे अनाथ स्त्रियोंके सामने शूर रावण! तू परस्त्रीहरण करनेवाला कापुरुषोंका कार्य करके अपनेको शूर मानता है? तुम कुबेरके भाई हो, तुमने हर्षित हो वनमें अवश्य ही यह बड़ा प्रशंसनीय और बड़े यशका कार्य किया है। अस्तु, अहंकारसे किये हुए निन्दित और अहित कर्म करनेका बड़ा भारी फल ग्रहण करो। अरे दुष्टमति! तू चोरके समान सीताको लेकर भागा है, तुझे लज्जा नहीं आती? यदि हमारे सामने सीताको धर्षित करता तो हमारे बाणसे तू अपने भाई खरको देखता।'

(२) रावणपुत्र अतिकायसे वाल्मीकीयमें इसी प्रकारके वचन लक्ष्मणजीके हैं—'कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि। पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः॥', 'न वाक्यमात्रेण भवान् प्रधानो न कत्थनात्सत्पुरुषा भवन्ति। मयि स्थिते धन्विनि बाणपाणौ निदर्शयत्वात्मबलं दुरात्मन्।' (७१। ५९, ५८) अर्थात् बातोंसे कोई प्रधान नहीं होता, सज्जन अपनी प्रशंसा आप नहीं करते। धनुष-बाण लेकर मैं उपस्थित हूँ, तू कर्मसे अपना पराक्रम दिखा, शेखी न बघार, पुरुषार्थी ही शूर कहा जाता है।

(३) वाल्मीकीयमें इस प्रकारके वचन लक्ष्मणजीके रावणसे हैं—'तमाह सौमित्रिरविस्मयानो गर्जन्तमुद्वृत्तशिताग्रदंष्ट्रम्। राजन्न गर्जन्ति महाप्रभावा विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ॥ जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं च पराक्रमं च। अवस्थितोऽहं शरचापपाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन॥' (५९। ९५-९६) अर्थात् विस्मयरहित लक्ष्मणजी गरजते हुए उजले दाँतवाले रावणसे बोले कि हे रावण! महाप्रभाववाले लोग गर्जते नहीं, पर तुम अत्यन्त पापी होनेके कारण बकते हो। हे राक्षसेश्वर! हम तुम्हारा बल, वीर्य, प्रताप तथा पराक्रम सब जानते हैं, इसीलिये धनुष-बाण लिये हाथमें आये हैं, व्यर्थ बकनेमें क्या है?

—उपर्युक्त सब भाव *'सत्य सत्य.........मनुसाई'* में आ जाते हैं। (प्र० सं०)

☞ (ग) *'जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई'* यह *'जौं रन भूप भाजि नहिं जाई'* का उत्तर है। भाव कि पुरुषार्थ दिखाओ, चोट करो। मेरा वीरवृत्त है, मैं पहले चोट नहीं करता। मुखसे कालके हवाले करनेको कहते हो, पर किया तो कुछ होता नहीं इत्यादि। रणाङ्गणमें शत्रुके सम्मुख खड़े होनेपर व्यर्थ बकवादका कोई मूल्य नहीं होता, उनको पुरुषार्थ करके दिखाना चाहिये, कायर लोग ही बकबक करते हैं। यथा—*'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु। बिद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहिं प्रतापु॥'* (१। २७४), 'विक्रान्ता बलवन्तो वा ये भवन्ति नरर्षभाः। कथयन्ति न ते किंचित्तेजसा चाति गर्विताः॥' (वाल्मी०) इस प्रकार *'जल्पसि'* से उसे कायर कह भी डाला।

छंद—जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महँ पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलइ केवल लागहीं।
एक कहहिं कहहिं करहिं अपर एक करहिं कहत न बागहीं॥

शब्दार्थ—पाटल=पाँडर, पाढरका वृक्ष। इसके पत्ते बेलके समान होते हैं। यह दो प्रकारका होता है। एक सफेद फूलका, दूसरा लाल फूलका। रा० प० में पाटलका अर्थ गुलाब किया है। 'गुलाब' अर्थ गौड़जी भी ठीक कहते हैं। **बागना**=चलना, फिरना, बोलना।

अर्थ—व्यर्थ बकवाद करके अपना सुयश न नाश करो। क्षमा करना, मैं तुम्हें नीति सुनाता हूँ सुनो। संसारमें पुरुष तीन प्रकारके हैं—पाटल, आम और कटहलके समान। एक (पाटल) फूल देते हैं, एक फूल और फल दोनों देते हैं और एक (तीसरे) में केवल फल ही लगते हैं। इसी तरह एक कहते हैं (करते नहीं), एक कहते हैं और करते भी हैं और एक करते हैं परन्तु जबानसे नहीं कहते।

नोट—१ *'जल्पना करि सुजस नासहि'*, यथा—*'छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निज मुख सुकृत कहे जेहि भाँती॥'* पुनः यथा—**'परैः प्रोक्ता गुणा यस्य निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्। इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणैः॥'** (सु० र० भा० १, आत्मश्लाघानिन्दाप्रसंग)। अर्थात् जिसके गुणोंको दूसरे वर्णन करते हैं वह गुणहीन होनेपर भी गुणवान् ही हो जाता है और अपना गुण अपने मुखसे कथन करनेसे इन्द्र भी लघुत्वको ही प्राप्त होता है। *'एक कहत मोहि सकुच अति……॥'* (२४), *'लाजवंत तव सहज सुभाऊ। निज गुन निज मुख कहसि न काऊ॥'* (२९। ६) तथा *'तोहि अबहिं का करौं बड़ाई।'* (३४। ११) देखिये।

नोट—२ *'करहिं छमा'* इति। इसका एक भाव तो यह है कि बहुत कहा अब 'सब्र कर, ठहर जा' और दूसरा यह कि मेरे इस नीतिके उपदेशको क्षमा कर क्योंकि तू नीतिज्ञ है परन्तु इस समय तू इस नीतिको भूल रहा है कि *'सूर समर करनी करहिं कहि न जनावहिं आपु।……'* इत्यादि।

नोट—३ *'एक कहहिं……'* भाव कि निकृष्ट कहते भर हैं, मध्यम कहते हैं और कर भी दिखाते हैं और उत्तम लोग बात मनमें ही रखते हैं जो करना है उसे कर दिखाते हैं। यथा—**'वृथा त्वं कत्थसे मन्द न पश्यस्यन्तिकेऽन्तकम्। पौरुषं दर्शयन्ति स्म शूरा न बहुभाषिणः॥'** (भा० १०। ७७। १९) अर्थात् श्रीकृष्णजी शाल्वसे कहते हैं कि तू वृथा क्या डींग मारता है, अपने निकट उपस्थित मृत्युको नहीं देखता। वीर पुरुष अपना पराक्रम दिखाते हैं, तेरी तरह व्यर्थ बड़-बड़ नहीं करते।—(जरासंधसे भी श्रीकृष्णजीके ऐसे ही वचन हैं।) विशेष *'जल्पसि जनि'* (८९। १०) में देखिये।

प० प० प्र०—यहाँ तीन प्रकारके पुरुष कहे गये। एक प्रकारके शेष रह गये 'जो कहते भी नहीं और करते भी नहीं'। यह वर्ग समाजको न तो सुख ही दे सकता है और न दुःख ही, अतएव निरुपयोगी जानकर न कहा।

पं०—उपदेशका सार यह है कि तेरा अन्तकाल है, अब तो उत्तम पुरुषोंकी रीति ग्रहण कर।

दो०—रामबचन सुनि बिहँसा मोहि सिखावत ज्ञान।
बयरु करत नहिं तब डरे अब लागे प्रिय प्रान॥८९॥

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर वह खूब हँसा (और बोला) मुझे ज्ञान सिखाते हो, पहले वैर करते न डरे, अब प्राण प्रिय लग रहे हैं॥८९॥

नोट—१ श्रीरामजी हँसे, उसके उत्तरमें रावण भी हँसा। यथा वहाँ *'कहेउ बिहँसि'* तथा यहाँ *'सुनि बिहँसा'*। हँसना निरादरार्थ है।

पु० रा० कु०—१ श्रीरामजीने कहा कि नीति सुन, बकबक करके सुयश न मिटा, उसीका उत्तर है कि *'मोहिं सिखावत……'*। भाव कि क्षत्रिय होकर मुझे ज्ञान सिखाते हो, नहीं जानते कि मैं पंडित हूँ, मैंने वेदोंपर भाष्य किया है। मुझे सिखाते हो कि क्षमा करो जिसमें मैं तुम्हें छोड़ दूँ। २—*'बयरु करत तब नहिं डरे'* अर्थात् जब शूर्पणखाके नाक-कान काटकर खरदूषणसे वैर किया था। ३—सरस्वतीकृत अर्थ—'मैंने वैर किया तब न डरा, तो क्या अब प्राण प्यारे लगेंगे?'

गौड़जी—श्रीरघुनाथजीके मुखसे निकले हुए *'करहि छमा'* वाक्यको स्वार्थपक्षमें मरोड़कर रावण कहता

है कि रणभूमिमें अब क्या क्षमा माँगते हो, डरके जाओगे कहाँ? ऐसा ही था तो वैर ही क्यों किया? रावणका यह उत्तर असंगत वक्रोक्ति है।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाँड़ै सर॥ १॥
नानाकार सिलीमुख धाए। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाए॥ २॥

अर्थ—दुर्वचन कहकर क्रोधित रावण वज्रसमान बाण छोड़ने लगा॥ १॥ अनेक प्रकारके बाण दौड़े और आकाशमें, पृथ्वीमें अर्थात् दोनोंमें दसों दिशाओंमें छा गये।

नोट—१ *'कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर'* इति।—*'दुर्बचन'* से जनाया कि *'बयरु करत तब नहिं डरे अब लागे प्रिय प्रान'* यह तो कहा ही था पर इसके अतिरिक्त कुछ और भी दुर्वचन कहे, नहीं तो *'अस कहि'* वाचक पद देते। प्रमाण यथा—(१) *'कपि तव दरस भयउँ निष्पापा। मिटा तात मुनिबर कर सापा॥ मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानहु सत्य बचन प्रभु मोरा॥ अस कहि।'* (५७। १—३), (२) *'जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥ बूढ़ जानि सठ छाँड़ेउँ तोही। लागेसि अधम पचारै मोही॥ अस कहि।'* (७३। ४—६), (३) *'सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सनमुख जा कर मन डोला॥ सो अबहीं बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भए न भलाई॥ निज भुजबल मैं बयरु बढ़ावा। देहउँ उतरु जो रिपु चढ़ि आवा॥ अस कहि।'* (७७। ४—७), (४) *'कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥ हौं मारिहउँ भूप दोउ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई॥'* (७८। ११-१२) (५) *'धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौं तैं जिअत रहेसि सुरद्रोही॥ अस कहि।'* (८३। ४-५), (६) *रन ते निलज भागि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥ अस कहि।'* (८४। ७-८) (७) *'खोजत रहेउँ तोहि सुत घाती। आजु निपाति जुड़ावउँ छाती॥ अस कहि।'* (८२। २-३), (८) *'परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भये गहरु सब कहहिं सभीता॥ पुनि आउब एहि बिरियाँ काली। अस कहि मन बिहँसी एक आली॥'* (बा० २३४। ५-६) (९) *'सुनत दसानन उठा रिसाई। खलु तोहि निकट मृत्यु अब आई॥'.....सठ मिलु जाइ तिन्हहिं कहु नीती॥ अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा।'* (५। ४१। २—६) इत्यादि। अन्य काण्डोंमें भी बहुत प्रमाण हैं। और यहाँ—*'कहि दुर्बचन'* ही है, *'अस'* नहीं है। अतएव और भी अनेक दुर्वचन जो अन्य रामायणोंमें हैं वे सब इस अद्भुत युक्तिसे कविने जना दिये और स्वयं अपनी लेखनीसे लिखा भी नहीं।

वि० त्रि०—*'कहि दुर्बचन'* इति।......*'आज करहुँ खलु काल हवाले'* यही दुर्वचन है। *'खलु'* का अर्थ 'निश्चय करके' होता है, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यहाँ सम्बोधन है, रावण सरकारको *'खल'* कहता है, प्राकृतके नियमसे अकारान्त शब्दके प्रथमा और द्वितीयाके एक वचनमें विकल्प करके अन्त्य अकारका उकार हो जाता है। यह ग्रन्थकारकी पंडिताई है कि यहाँ सीधे खल शब्दका प्रयोग न करके 'खलु' कहा, पर भाव यही है, क्योंकि ठीक उसके पहिले कहा है *'खरदूषन बिराध तुम्ह मारा। हतेउ ब्याध इव बालि बिचारा।'* इत्यादि। वह इनके वधकी गणना खलतामें कर रहा है। सरकारका उत्तर सुनकर कि *'देखाउ मनुसाई'* वह मनुसाई दिखाने लगा अर्थात् वज्र-ऐसे बाण छोड़ने लगा।

नोट—२ *'दुर्बचन'* पद देकर तब उसका कारण 'क्रुद्ध' दिया। फिर क्रोधका कारण *'दसकंधर'* पदसे जनाया (जो गर्वसूचक है कि औरोंके एक-दो-चार, छः ही सर होंगे और मेरे तो दस हैं)। पुनः, *'दसकंधर'* का भाव कि दस सिरके जितनी भुजाएँ हैं सबसे बाण छोड़े, जैसे पूर्व छोड़े थे—*'निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजा दसचाप। रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥'* (८०)

नोट—३ *'नानाकार सिलीमुख धाए'* इति। *'नानाकार'* से वह सब प्रकार सूचित किये जो वाल्मी० ९९। ४२—४८ में लिखे हैं। वाल्मी० ९९ में लिखा है कि रावणने क्रोधसे मूर्च्छित हो महाघोर आसुरास्त्र चलाया जिसके अन्तर्गत अगणित बाण सिंह, व्याघ्र, कंक, कोक, गृध्र, बाज, शृगाल और वृकके समान मुँह बाये अति भयंकर थे। गदहों, शूकरों, कुत्तों तथा विषधर सर्पोंके मुखोंके आकारके एवं सर्पके समान

फुफुकार करते हुए तथा अग्निमुख, सूर्यमुख बाण, अनेक ग्रह और नक्षत्रोंके रंगवाले बाण, विद्युत्के समान जीभवाले बाण, इत्यादि अनेक प्रकारके बाण रावणने चलाये।

पावकसर* छाँड़ेउ रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा॥ ३॥
छाँड़िसि तीब्र सक्ति खिसिआई। बान संग प्रभु फेरि चलाई†॥ ४॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजीने अग्निबाण छोड़े। निशाचर रावणके तीर क्षणभरमें भस्म हो गये॥ ३॥ तब लज्जित होकर उसने तीक्ष्ण शक्ति छोड़ी। श्रीरामचन्द्रजीने उसे बाणके साथ (अर्थात् अपना बाण चलाकर) लौटाकर चलाया (अर्थात् बाणसे उसका मुख रावणकी ओर फेर दिया जिससे वह उधरहीको लौट गयी)॥ ४॥

नोट—'तीव्र शक्ति' से मयदानवका बनाया हुआ अस्त्र जनाया जिसका वाल्मी० १०१ (श्लोक २—४) में यों वर्णन है कि—यह अत्यन्त भयङ्कर और अति प्रकाशमान् था। इससे शूल, मुद्गर, पाश, गदा, मूसल और दीप्यमान् वज्रवत् पुष्ट और भी बहुत-से बिजलीके समान प्रकाशित अस्त्र बड़े वेगसे निकले।—ये सब बातें मानसकविने 'तीव्र' विशेषणसे सूचित कर दीं। इसे प्रभुने परमास्त्र गान्धर्वास्त्रसे काटा। यथा—'**मयेन विहितं रौद्रमन्यदस्त्रं महाद्युतिः। उत्स्रष्टुं रावणो भीमं राघवाय प्रचक्रमे॥ ततः शूलानि निश्चेरुर्गदाश्च मुसलानि च। कार्मुकाद्दीप्यमानानि वज्रसाराणि सर्वशः॥ मुद्गराः कूटपाशाश्च दीप्ताश्चाशनयस्तथा। निष्पेतुर्विविधास्तीक्ष्णा वाता इव युगक्षये॥ तदस्त्रं राघवः श्रीमानुत्तमास्त्रविदां वरः। जघान परमास्त्रेण गान्धर्वेण महाद्युतिः॥**' (वाल्मी० १००। २—५)

बं० पा०—रावणने अपने बाणोंसे दिशाएँ छा दी थीं। अग्नेयास्त्रसे सब दिशाएँ शुद्ध हो गयीं। '*खिसिआई*' क्योंकि पराक्रम निष्फल हुआ।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ॥ ५॥
निफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे॥ ६॥

अर्थ—करोड़ों चक्र और त्रिशूल चलाता है, रघुनाथजी बिना परिश्रम (सहज ही) उनको काट गिराते हैं॥ ५॥ रावणके बाण कैसे निष्फल हो जाते हैं, जैसे दुष्टके सब मनोरथ॥ ६॥

नोट—'***कोटिन्ह चक्र*……*निवारइ***' इति। वाल्मीकिजी भी लिखते हैं—'**ततश्चक्राणि निष्पेतुर्भास्वराणि महान्ति च। कार्मुकाद्भीमवेगस्य दशग्रीवस्य धीमतः॥**', '**तानि चिच्छेद बाणौघैश्चक्राणि स तु राघवः। आयुधानि च चित्राणि रावणस्य चमूमुखे॥**' (७, ९) अर्थात् उस समय धीमान् रावणके धनुषसे प्रज्वलित बड़े-बड़े भारी अगणित चक्र निकलने लगे। युद्धक्षेत्रमें रावणके जो विचित्र आयुध और चक्र आये वे सब राघवने काट डाले। (वाल्मी० ९। च० सं०)

खर्रा—'***खल के सकल मनोरथ जैसे***' इति। खलके मनोरथ तब सिद्ध हों जब सब धर्मों और सबके मनोरथोंमें बाधा हो। वैसे ही रावणके बाण तब फलीभूत हों जब रामको बाधा हो।

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि॥ ७॥
राम कृपा करि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा॥ ८॥

शब्दार्थ—सूत=सारथी। पौराणिक सूतमें आठ गुण होने चाहिये—(१) सेवा करनेको सदा तैयार रहना। (२—४) कही हुई बातको ध्यानसे सुनना, उसे ठीक-ठीक समझना और स्मरण रखना। (५) किस कार्यका क्या परिणाम होगा इसपर तर्क करना कि इस प्रकार कार्य न हुआ तब क्या करना चाहिये—इस तरह वितर्क करना। (६—८) शिल्प और व्यवहारकी जानकारी रखना और तत्त्वका बोध होना।

अर्थ—तब उसने सारथीको सौ बाण मारे। वह श्रीरामजीकी जय पुकारता हुआ पृथ्वीपर गिरा॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजीने कृपा करके सारथीको उठाया। उस समय प्रभु परम क्रोधको प्राप्त हुए॥ ८॥

नोट—मातलिके मारे जानेपर परम क्रोध हुआ—'*जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो*

* अनलबान। † पठाई—(का०)।

जरई॥' इस क्रोधका स्वरूप आगे छन्दमें तथा वाल्मी० १०२ श्लोक ३८—४२ में इस प्रकार है। श्रीरामचन्द्रजीने क्रोध करके भौंहें कुछ टेढ़ी कर नेत्र लाल कर लिये मानो राक्षसको जला ही डालेंगे। उनका महाक्रोध देख प्राणी डर उठे, पृथ्वी काँप उठी। सिंहशार्दूलसहित पर्वत चलायमान हो गये, समुद्र क्षुब्ध हो उठा। बादल चारों ओर घूम-घूमकर गर्जने और उत्पाद-सूचक शब्द करने लगे। श्रीरामजीका क्रोध और दारुण उत्पात देख सब प्राणी डर गये और रावण भी डर गया।

छंद—भये क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद भय* मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

शब्दार्थ—**कंपति**=(कं=जल+पति) जलधि, समुद्र। **कसमसे**=एक-दूसरेसे रगड़ खाते हुए हिलना-डोलना खलबलाना; कुलबुलाना।—*'एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अतिघनी॥'*

अर्थ—श्रीरघुनाथजी युद्धमें विरोधाभावसे क्रोधित हुए तब तरकशमें बाण कसमसाने लगे। धनुषका अत्यन्त प्रचण्ड शब्द (टंकार) सुनकर सब मनुष्योंके खानेवाले (राक्षस) वायुग्रस्त हो गये। मन्दोदरीका हृदय काँप उठा। समुद्र, कच्छप, पृथ्वी और पर्वत भयभीत हो गये। दिग्गज दाँतोंसे पृथ्वीको पकड़कर चिग्घाड़ने लगे। यह कौतुक देखकर देवता हर्षित हुए।

नोट—१ *'भये क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध'*। भाव कि अभीतक लीला वा विनोद-भावसे युद्ध करते रहे थे। अब विरोधभावसे युद्ध करनेको उद्यत हुए क्योंकि *'सेवक बैर बैर अधिकाई'*। *'सायक कसमसे'*—भाव कि प्रत्येक बाण चाहता है कि मैं ही प्रथम तरकशसे निकलकर रावणका वध करूँ। प्रभुके बाण भी दिव्य हैं जैसे उनके वस्त्र और आभूषण दिव्य हैं। प्रभुका क्रोध देख बाणोंमें यह उत्साह हो रहा है।

नोट—२ *'भय मारुत ग्रसे'*। अर्थात् भयरूपी पवनसे ग्रसित हो कापँ उठे। अथवा, भाव कि निसिचर भयग्रसित हुए और पवन भी ग्रसित हुआ, अर्थात् उसका चलना रुक गया। (खर्रा)। अथवा, रोगादिसे अधिक व्यथा होनेसे अचेत प्राणी जैसी क्रिया करते हैं वैसी क्रिया करने लगे। भाव कि कोई भागते हैं, कोई आपसमें ही जूझे मरते है। (रा० प्र०)

नोट—३ (क) *'मंदोदरी उर कंप'*—अहिवात जानेके भयसे, यथा—*'अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात। नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिबात॥'* (लं० ७), *'प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिबात न जाइ।'* (१५) (ख) *'कंपति कमठ भू भूधर त्रसे'*। भाव कि समुद्र खलबला उठा, महि हिलने लगी, कमठ कुलबुला उठे। यथा—*'भरे भुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारगु चले। चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥'* (१। २६१), *'चौंके बिरंचि संकरसहित कोल कमठ अहि कलमल्यो।'* (ग) *'दसन गहि महि'* जिसमें पृथ्वी गिर न पड़े, यथा—*'दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला। धरहु धरनि धरि धीर न डोला॥'* (१। २६०। १)

नोट—४ (क) *'सुर हँसे'*। हँसे (=हर्षित हुए) कि अब रावण मरा। पुनः, कौतुक देखकर कि ध्वनिमात्रसे लोकभर काँप उठा। दिग्गजका दाँतोंसे पृथ्वीको पकड़ना इत्यादि कौतुक है। इन सबसे निश्चय किया कि अब हमारे दुःख दूर होंगे, यथा—*'चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥'* (सुं० ३५) पुनः, देवताओंके मुखपर अबतक हँसी न थी। विपत्तिमें हँसी कहाँ? पैदल देख दुःख हुआ था उसके बाद हँसना प्रथम-प्रथम यहीं है। (ख) देवता हँसे और कोई न हँसे, क्योंकि इन्हें दिव्य दृष्टिसे सब देख पड़ता था और लोग यह तमाशा देख न सकते थे।

---

* भय—पं० रामकुमारजी (खर्रा), विश्वेश्वर प्रेस काशीका पाठ। सब—भा० दा०। 'सब' का समावेश 'मनुजाद' में ही हो जाता है। 'भय' शब्दसे भय-मारुतका रूपक भी बन जाता है।

दो०—तानेउ चाप* श्रवन लगि छाँड़े बिसिष कराल।
राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल॥ ९०॥

शब्दार्थ—मार्गण=बाण।—'**कलम्बमार्गणशराः**' **इत्यमरः**, '**मार्गणस्तु शरेऽर्थिनि**' **इति हैमः**। लहलहाना=लपलपाना।

अर्थ—(श्रीरघुनाथजीने) धनुषको कानपर्यन्त खींचकर कराल बाण छोड़े। श्रीरामचन्द्रजीके बाणसमूह ऐसे चले मानो सर्प लहलहाते जा रहे हैं॥ ९०॥

वि० त्रि०—रावणने पहिले वज्रसे बाण मारे, फिर शक्ति चलायी, फिर चक्र-त्रिशूल चलाये। पर सब वार उसके व्यर्थ गये, तब घोड़े तथा सारथीपर प्रहार किया। यहाँतक सरकार उसके प्रहारको ही सहते गये। मातलिपर आघात होनेपर क्रुद्ध हुए, तब बाण सन्धान कर अपनी ओरसे प्रहार आरम्भ किया।

नोट—मार्गण मृग धातुसे है; अर्थात् ये शत्रुको ढूँढ़नेवाले बाण हैं, ढूँढ़कर उसे मारते हैं जहाँ भी हो। (रा० प्र०)। 'लहलहाते हुए' से प्रसन्न, चमचमाते हुए और अत्यन्त वेगवान् होना जनाया, यह आगे कवि स्वयं कहते हैं, यथा—'*चले बान सपच्छ जनु उरगा*'।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहि हत्यो† सारथी तुरगा॥ १॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अंतर बल थाका॥ २॥

शब्दार्थ—**केतु पताका**—'**पताका वैजयन्ती स्यात् केतनं ध्वजमस्त्रियामित्यमरः**।' पताका जयप्रद पत्राङ्किता होती है। (पु० रा० कु०)

अर्थ—बाण ऐसे चले मानो पक्षयुत सर्प हों। उन्होंने जाकर पहले सारथी और घोड़ोंको मार डाला॥ १॥ फिर रथको चूर्णकर ध्वजा और पताकाको काटकर गिरा दिया। (तब) रावण बड़ी जोरसे और अत्यन्त गर्जा, भीतरसे उसका बल थक गया था॥ १॥

नोट—१ गौड़जी '*प्रथमहि हत्यो……पताका*' का अन्वय इस प्रकार करते हैं—'*प्रथमहिं रथ बिभंजि केतु पताका हति सारथी तुरगा हत्यो*।'

नोट—२ '*सपच्छ जनु उरगा*'। आकृति और धर्म (फुफकारना, अतिवेगसे उड़ते जाना और डसकर प्राण हर लेना) से 'उरग' की उत्प्रेक्षा की, 'उरग' और 'बाण' दोनोंमें पर होते हैं। (ब० पा०) ऊपर '*लहलहात जनु ब्याल*' कहा था। सर्प और व्यालमें अन्तर है। व्याल जातिका नाम है जिसमें हाथीतक गिने जाते हैं। सर्प उरगोंका एक छोटा-सा प्रकार है जिनके पंख नहीं होते हैं। पुराने उरगोंके पंख होते हैं। व्याल और उरग पर्याय हैं। (गौड़जी)।

नोट—३ (क) '*हति केतु पताका*' इति। रावणकी पताकापर मनुष्यके सिरका चिह्न था, यथा—'**ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेद नैकधा**।' (वाल्मी० १००। १४) अर्थात् श्रीलक्ष्मणजीने रावणकी मनुष्य-सिरचिह्नित ध्वजाके अनेक टुकड़े कर डाले। (ख) '*गर्जा अति……*' इति। अपनेको रथहीन देख मनमें खिन्न हुआ कि मैंने तो इनके सारथीमात्रको मारा था, उसे भी उन्होंने जिला लिया और इन्होंने तो मेरे रथ, घोड़े सभी नष्ट कर डाले, कुछ उपाय काम नहीं देता। तब धृष्टतासे गर्जा जैसे अर्धजल भरा घड़ा बोलता है। (पं०) (ग) '*अंतर बल थाका*' से जनाया कि रघुनाथजीके पराक्रमको देख हृदयसे हार गया, जीसे समझ लिया कि इनसे जीतना कठिन है। यज्ञनाश और उसपर ध्वजाका गिरना दो परम अमंगल हुए।

तुरत आन रथ चढ़ि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना॥ ३॥
बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥ ४॥

शब्दार्थ—**उद्यम**=उद्योग, उपाय, प्रयत्न। **बिफल**=निष्फल, व्यर्थ।

अर्थ—खिसियाकर (लज्जित होकर) तुरंत दूसरे रथपर चढ़कर उसने अनेक प्रकारके अस्त्र-शस्त्र छोड़े॥ ३॥

* तानि सरासन—(का०)। † हते—(का०)।

उसके सब प्रयत्न निष्फल हो रहे हैं जैसे परद्रोहमें तत्पर मनवालेके सब उद्योग निष्फल होते हैं॥ ४॥

नोट—१ खिसियानेपर क्रोध और बदला लेनेकी इच्छा होती ही है।

मेघनाद—*'देखि प्रताप मूढ़ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥'* (५०। ७)

शूर्पणखा—*'तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूप भयंकर प्रगटत भई॥'* (३। १७। १९)

रावण—*'परुष बचन सुनि काढ़ि असि बोला अति खिसिआन॥'* (सुं० ९)

'सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥' (५। १०। १)

रावण—*'सुनि कपि बचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढ़कर प्राना॥'* (सुं० २४। ५)

नोट—२ पूर्व कहा था कि *'निफल होहिं रावन सर कैसे। खलके सकल मनोरथ जैसे॥'* (९०। ६), और यहाँ कहते हैं कि *'बिफल होहिं सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसा के॥'* दोनोंमें प्रायः एक ही भाव हैं। खल परद्रोहमें तत्पर रहते ही हैं, यथा—*'खल बिनु स्वारथ पर अपकारी॥'* (७। १२१। १८) मनसाका अर्थ मन और मनोरथ दोनों है। पुनः, वहाँ मनोरथ है और यहाँ उद्यम। मनोरथके पूर्ण करनेके लिये जो कार्य किये जाते हैं वे उद्योग कहलाते हैं। इस तरह कारण और कार्य दोनों निष्फल दिखाये।

तब रावन दस सूल चलाए*। बाजि चारि महि मारि गिराए†॥५॥

तुरग उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाँड़े‡ सायक॥६॥

अर्थ—तब रावणने दस त्रिशूल चलाये (और उनसे श्रीरामजीके रथके) चारों घोड़ोंको मारकर अर्थात् घायल करके पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ५॥ घोड़ोंको उठाकर श्रीरघुनाथजीने कुपित हो धनुष तानकर बाण छोड़े॥ ६॥

नोट—१ *'तब रावन दस सूल चलाए।'*......... इति। प्रथम रावणने श्रीरामचन्द्रजीके सारथीको मारा था। यथा—*'तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि'*............ ।' (९०। ७) उसके बदलेमें श्रीरामजीने उसके घोड़ों और सारथीको मारा, रथ चूर-चूर कर दिया और केतु-पताका काट गिराये। यथा—*'प्रथमहिं हतेउ सारथी तुरगा॥ रथ बिभंजि हति केतु पताका।'* (९१। १-२) इसके बदलेमें *'तब रावन दस सूल चलाए। बाजि चारि महि मारि गिराए॥'* बं० पा० जी लिखते हैं कि दस शूलसे चार घोड़े मारे इस क्रमसे कि आगेके घोड़ोंको तीन-तीन शूल मारे और पीछेवालोंको दो-दो।

नोट २ (क) *'तुरग उठाइ'* इति। रावणके रथ टूटते, सारथी और घोड़े मरते और ध्वजापताका कटती हैं पर श्रीरामजीके रथ, ध्वजा, पताका सब दिव्य और सारथी तथा घोड़े अमर हैं, इसीसे इनके रथ, पताकादिको हानि नहीं पहुँची, सारथी घोड़े घायल हुए, गिर पड़े पर मरे नहीं वरन् श्रीरामजीके हस्तकमलके स्पर्शसे वे तुरंत जैसे-के-तैसे पुष्ट हो गये। (ख) पहले सारथीको मारा था तब रामजीको कोप हुआ, अब घोड़े मारे गये तब पुनः क्रोध हुआ। दोहा ६९ (५) देखिये।

रावन सिर सरोज बन चारी। चलि रघुबीर सिलीमुख धारी॥७॥

दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर पनारे॥८॥

शब्दार्थ—शिलीमुख=भ्रमर, भौंरा—*'कुंचित अलक सिलीमुख मानो लै मकरंदनि दोन'*—(सूर)=बाण। 'भृङ्गः शिलीमुखः ख्यातो नाराचोऽपि शिलीमुखः।' (पं०) धारी=पंक्ति, समूह, सेना।

अर्थ—रावणके मस्तकरूपी कमलवनमें विचरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके बाणसमूहरूपी भ्रमरसमूह चले॥ ७॥ श्रीरामचन्द्रजीने उसके दसों ललाटोंमें दस-दस बाण मारे जो आरपार होकर निकल गये और सिरोंसे खूनके परनाले बह चले॥ ८॥

नोट—१ *'चलि रघुबीर सिलीमुख धारी'* इति। रावणके सिर दस हैं, अतः उसे कमल-वन कहा। बाण बहुत-से चले, अतः उन्हें भ्रमरोंकी धारि (सेना, समूह) कहा। वनमें भ्रमर बहुत-से हुआ ही चाहें। कमलमें भ्रमर आसक्त रहता है, अतएव *'बनचारी'* कहा। भाव कि जैसे भ्रमरावली कमलवनमें घुसती

* चलावा, गिरावा—(भा० दा०), † चलाए, गिराये (का०)। ‡ छाँड़ेउ—(का०)।

है वैसे ही बाणसमूह रावणके सिरोंमें प्रवेश करते हैं। भौंरे मकरंद पान करते हैं, बाण रुधिररूपी मकरंद पान करते हैं। भौंरे काले होते हैं, वैसे ही ये बाण काले हैं।

गौड़जी—सिरोंपर बाणोंने घाव कर रखा है। वे घाव लाल कमल-समान दीखते हैं। अतः सरोजवन कहा। भ्रमर और बाण दोनोंमें पर होते हैं यह समता है।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी—*'रावन सिर सरोज बन………'* इति। जब कमलवन फूलता है तो रातभरके प्यासे भौंरे मकरन्द पान करने चलते हैं। एकके बाद दूसरे, उसके बाद तीसरेके चलनेसे उनकी पंक्ति-सी हो जाती है, भौंरे चले ही आते हैं, यहाँ रावणके सिर ही सरोजवन हैं उसके रक्तरूपी मकरंदको पान करनेके लिये रघुबीरके प्यासे बाणोंका समूह चला। यहाँ बाणके लिये शिलीमुखशब्दके प्रयोगका कारण है। शिलीमुख श्लिष्ट पद है। इसका अर्थ बाण भी है और भौंरा भी है। रावणके पक्षमें बाण अर्थ होगा और कमलवनके पक्षमें भौंरा अर्थ होगा। श्रीरामजीके बाणोंको रक्तकी प्यास है, यह बात अङ्गदजी पहिले कह आये हैं। यथा—*'तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर। तजौं तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम॥'* उसीका साफल्य कवि यहाँ दिखला रहे हैं।

नोट—२ (क) *'दस दस बान भाल दस मारे'* इति। रावणने बीस भुजाओंसे १० शूल चलाये, यथा—*'तब रावन दस सूल चलाए'*। उसके उत्तरमें श्रीरामजीने दसों मस्तकोंमें दस-दस बाण मारकर रावणके बीस भुजाओंका पराक्रम दो भुजाओंसे ही तुच्छ कर दिखाया। पुनः, भाव कि रावणने २० भुजाओंसे दस शूल चलाकर दरसाया था कि तुम दो हाथवाले मेरे सामने क्या कर सकोगे। श्रीरामजीने उत्तरमें दिखाया कि हम दो भुजाओंसे तुझसे अधिक कार्य कर सकते हैं। तुम यहाँ २० भुजाओंसे १० शूल चला सकते हो वहाँ मैं दो ही हाथोंसे १०० बाण चला सकता हूँ। यथा—'**यद्रावणो बहुभिरेव भुजैः करोति तद्राघवः प्रतिकरोति भुजद्वयेन। कर्मद्वयं यदपि तुल्यफलं तथापि रक्षःपतेर्दशगुणं नरवीरतुल्यम्॥**' (हनु० १४। ३७) अर्थात् रावण जो कर्म बहुत-सी भुजाओंसे करता है उस कर्मका बदला श्रीरामचन्द्रजी दो ही भुजाओंसे चुकाते हैं। यद्यपि दोनोंके कर्मका फल तुल्य ही है तथापि श्रीरामचन्द्रजीके कर्मका फल निशाचरनाथ रावणसे दसगुणा विशेष है।

(ख) *'चले रुधिर पनारे'* से जनाया कि रुधिर बहुत और वेगसे बहने लगा जैसे वर्षाकालमें घरके परनाले वर्षाजल पाकर बहते हैं।

स्रवत रुधिर धाएउ बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥ ९॥
तीस तीर रघुबीर पबारे। भुजन्हि समेत सीस महि पारे॥ १०॥

अर्थ—रुधिरके बहते हुए बलवान् रावण दौड़ा। प्रभुने फिर धनुषपर बाणका संधान किया॥ ९॥ रघुवीरने तीस तीर चलाये और भुजाओंसहित उसके सिरोंको पृथ्वीपर गिरा दिया॥ १०॥

नोट—१ (क) रुधिरप्रवाह चलनेपर भी धावा कर रहा है अतः *'बलवाना'* कहा क्योंकि यह बलीहीका काम है। (ख) *'पुनि'* क्योंकि अभी शिरोच्छेदनके लिये १०० तीर छोड़ चुके थे अब फिर छोड़ते हैं। प्रथम बार सिर घायल हुए, गिरे नहीं थे पर अबकी गिरेंगे। (ग) दस सिरों और २० भुजाओंको पृथक्-पृथक् छेदना है अतः ३० तीर चलाये।

काटत ही पुनि भए नवीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने*॥ ११॥
प्रभु बहु बार बाहु सिर हए। कटत झटिति पुनि नूतन भए†॥ १२॥

शब्दार्थ—**झटिति**=झटपट, तत्काल, चटपट। **हएना**=काटना।

अर्थ—सिर और भुजाएँ काटते ही फिर नये हो गये तब श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें फिर काट गिराया॥ ११॥ प्रभुने बहुत बार भुजाएँ और सिर काटे परंतु वे कटते ही तुरंत फिर नये हो गये॥ १२॥

---

* यह पाठ का० का है। भा० दा० की प्रतिमें उत्तरार्द्ध प्रथम है। † यह पाठ भा० दा० का है। का० की प्रतिमें उत्तरार्द्ध प्रथम है।

टिप्पणी—'*पुनि भए नबीने*'। ब्रह्मा और शिवजीके वरदानसे पुनः नवीन उत्पन्न होते थे, यथा—'***मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा', 'सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाये। एक एक के कोटिन्ह पाये॥***' (९६। ६), '**विच्छिन्ना बाहवोऽप्यस्य विच्छिन्नानि शिरांसि च। उत्पत्स्यन्ति पुनः शीघ्रमित्याह भगवानजः॥**' (अ० रा० ११। ५२) अर्थात् (विभीषणने कहा कि) भगवान् ब्रह्माने यह वर दिया है कि जो बाहु और सिर कटेंगे वे शीघ्र पुनः जम आवेंगे।

प० प० प्र०—'*प्रभु बहु बार*.........' में मात्रा कम करके जनाया कि यह देखकर कि श्रीरामजीको कितना क्लेश हो रहा है श्रीशिवादि देवों, कपिसेना और कविके भावुक हृदयको व्यथा पहुँची; कपिसेना और इन्द्रादिको चिन्ता और भय हुआ तथा राम-रावणके शौर्य-धैर्य आदिको देखकर सबको परमाश्चर्य आदि हुए।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥ १३॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहु अमित केतु अरु राहू॥ १४॥

अर्थ—प्रभु बारंबार उसकी भुजाओं और सिरोंको काट रहे हैं (क्योंकि) कोसलपति श्रीरामजी बड़े भारी कौतुकी हैं॥ १३॥ आकाशमें सिर और भुजा छा गये। (ऐसे देख पड़ते हैं) मानो अगणित केतु और राहु हैं॥ १४॥

नोट—१ '***अति कौतुकी कोसलाधीसा***'। खेल खिलाते, खेलते और देखते हैं। अतः कौतुकी होनेके सम्बन्धसे 'कोसलाधीस' पद दिया। श्रीरामजी अत्यन्त कौतुकी हैं ही। यथा—'**कुशिकसुतसपर्यादृष्टदिव्यास्त्रमन्त्रो भृगुपतिसहयोद्धा वीरभोगीनबाहुः। दिनकरकुलकेतुः कौतुकोत्तानचक्षुर्बहुमतरिपुकर्मा कौतुकी रामदेवः॥**' (हनु० १४। ३६) अर्थात् कौशिकजीकी पूजासे दिव्यास्त्र तथा मन्त्रोंके पानेवाले, महाराज परशुरामजीसे युद्ध करनेवाले, वीरोंका भोग करनेके योग्य भुजाओंवाले, सूर्यवंशके ध्वज-स्वरूप, कौतुकसे ऊपरको नेत्र उठानेवाले, भली प्रकार शत्रुओंको विदित है कर्म जिनका ऐसे कौतुकी देव रामचन्द्रजी युद्ध करने चले।

नोट—२ '***रहे छाइ***.........' इति। थोड़ेसे दानका भी बहुत फल मिलता है। उसने दस सिर दिये थे अतएव अमित गुणा सिर देकर उसके दानका फल चुकाते हैं जिसमें उसका पुण्य क्षीण हो जाय तब मारें।

छं०—जनु राहु केतु अनेक नभपथ स्त्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥

शब्दार्थ—**विधुंतुद**=विधुको दुःख देनेवाला=राहु। '**तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुन्तुदः**' (अमरकोष)

अर्थ—(ऐसा मालूम होता है) मानो अनेकों राहु और केतु रुधिर बहाते हुए आकाशमार्गमें दौड़ रहे हों। रघुवीरके तीक्ष्ण बाण उनमें लगते हैं इससे वे पृथ्वीपर गिरने नहीं पाते। एक-एक बाणसे समूह सिर छिदे हुए आकाशमें उड़ते इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानो सूर्य कुपित होकर अपनी किरणसमूहसे जहाँ-तहाँ राहुओंको गूँथ वा पिरो रहा है।

नोट—१ (क) यहाँ राहु और सिर, केतु और बाहु, सूर्य और रघुनाथजी, किरण और बाण परस्पर उपमान-उपमेय हैं। एक-एक बाणमें कई-कई सिर छेदना, पिरोना है। (ख) जब भगवान्‌ने राहुका सिर चक्रसे काट डाला था तब अमृत पान कर चुकनेके कारण वह मरा नहीं वरन् दो हो गया। राहुका मस्तक राहु और कबन्ध केतु नामसे प्रसिद्ध हुए। रावणकी लम्बी-लम्बी भुजाएँ केतु-सी जान पड़ती हैं, और सिर राहु-से। वर्ण और आकारमें समता है। स्वर्णयुत चमकीले बाण सूर्यकिरणवत् हैं। (ग) ☞ इस प्रसङ्गमें काटनेमें भुजाओंको प्रथम कहा तब सिरोंको, यथा—'*भुजन्ह समेत सीस महि पारे*', '*राम बहोरि भुजा सिर छीने*', '*प्रभु बहु बार बाहु सिर हए*', '*पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा*'। पर कटकर आकाशमें छानेपर

'सिर' को प्रथम कहा है और *'भुजा'* को पीछे। यथा—*'रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू', 'जनु राहु केतु अनेक·····।'* इस भेदका भाव यह जान पड़ता है कि—रणमें यह रीति प्रायः देखनेमें आती और जान पड़ती है कि जहाँ सिर और भुजा दोनों काटे जाते हैं वहाँ प्रायः भुजाएँ ही प्रथम काटी गयी हैं। महाभारतमें भी यही रीति देख पड़ती है। कुम्भकर्ण और वृत्रासुर इत्यादिकी भी भुजाएँ ही प्रथम काटी गयी हैं। आकाशमें सिर प्रधान हैं अतः वहाँ उन्हें प्रथम कहा। सिर शरीरका प्रधान अङ्ग भी है।

बाबा हरिदासजी लिखते हैं कि—(क) जो शूर्पणखाने रावणसे कहा था कि—*'देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना॥'* उसको यहाँ प्रभु चरितार्थ कर रहे हैं। धन्वी ऐसे कि बाणोंका अन्त नहीं, असंख्य बाणोंसे सिर छेदे हुए आकाशमें ही लटके हैं, नीचे नहीं गिरने पाते। धीर ऐसे कि सिरोंकी वृद्धि देख घबड़ाते नहीं, सबको काटते और ऊपर उड़ाते जाते हैं। पुनः,

(२)—यहाँ कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों दिखाये हैं। (क) रावणने अपने हाथोंसे पापहिंसा कर-करके मुखसे भोग किया है अतः प्रथम भुजाएँ काटीं तब सिर। पुनः, उसने इन हाथोंसे शिवपूजनकर इन्हींसे शीश काट-काटकर शिवजीपर चढ़ाये वा इनकी आहुति दी थी, इससे प्रथम भुजाएँ उत्पन्न होती हैं तब सिर। यथा—*'प्रभु बहु बार भुजा सिर छीने। काटत ही पुनि भए नबीने॥'* (भुजा कटते ही उत्पन्न हुई, सिर कटे तब सिर उत्पन्न हुए—क्रमसे)।—यह कर्म और उसका फल हुआ। पुनः, (ख)—शिवजी ऐसे उदार दानी हैं कि जो एक फलफूल चढ़ाता है उसे वे करोड़ों फल देते हैं। रावणने दस सिर चढ़ाये तो अब करोड़ों सिर उसे मिले। आकाशमें वे सिर क्या हैं मानो शिवजीकी उदारताकी पताकाएँ फहरा रही हैं—लोककल्याणहेतु प्रभु अपने इस कौतुकसे यह शिक्षा दे रहे हैं। पुनः, इस चरितसे यह भी दिखाते हैं कि शिवदत्त सम्पदाका कोई नाश नहीं कर सकता, यदि भगवत्-भागवतापराध न हो। रावणने भागवतापराध किया कि विभीषणको लात मारकर निकाल दिया, यथा—*'तौलौं न दाप दलेउ दसकन्धर जौलौं बिभीषण लात न मार्यो'*—(क०)।—यह उपासना है। पुनः, (ग)—जिसके सिरसे भगवान्‌को प्रणाम, मुखसे भगवन्नाम-गुणगान, हाथोंसे सेवा इत्यादि न हों वह ज्ञानी, पण्डित, शूरवीर, लोकपति इत्यादि ही क्यों न हो तो भी उसके सिर, भुजा आदि छेदनयोग्य हैं और छेदन होनेपर भी उनका कहीं ठिकाना नहीं,—यह ज्ञान देश दिखाया।

नोट—२ पहले भुजा और सिर दोनोंका काटना और छेदकर आकाशमें रोकना कहा। फिर केवल सिरोंका ही वेधना कहते हैं, यथा—*'जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार', 'दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी'।* इससे जान पड़ता है कि बाहूसे सिर काटकर शिवार्पण करनेका फल दे चुके, अब युद्ध करनेके लिये रहने दिये। वा, सिर कम हैं और बाहु बहुत हैं अतएव दोनोंको बराबर करनेके लिये ऐसा किया।

☞ यहाँ अङ्गदके *'तव सोनित की प्यास तृषित रामसायक निकर'* इस वाक्यका साफल्य है।

नोट—३ पहिले आकाशमें सिर और बाहुके रुधिर बहते हुए उड़नेकी उत्प्रेक्षा की—*'जनु राहु केतु·····।'* फिर केवल एक-एक बाणमें अनेक सिर छिदे हुएकी उत्प्रेक्षा की—*'जनु कोपि दिनकर कर निकर·····।'* मालाएँ पोही जाती हैं और मुण्डोंकी मालाएँ श्मशानके देवता भूतप्रेत पहनते ही हैं; इससे केवल सिरोंका पोहना कहा, भुजाओंका नहीं। दूसरे, राहु और सूर्यका वैर भी है मानो सूर्य बदला चुकाता है इसीसे राहु और सूर्य किरणसे उत्प्रेक्षा कही।

दो०—जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥ ९१॥

शब्दार्थ—**बिबर्धन**=वृद्धि, बढ़ती। **मार**=कामदेव। कामनाएँ।

अर्थ—जैसे-जैसे प्रभु उसके सिरोंको काटते हैं तैसे-तैसे वे (इस तरह) अपार बढ़ते जाते हैं, जैसे विषयका सेवन करनेसे काम दिनोंदिन नित्य नवीन बढ़ता जाता है॥ ९१॥

नोट—१ यहाँ मार और सिर, विषय और बाण, विषयसेवन और सिरोंका बाणोंसे कटना उपमेय-उपमान हैं। कामीकी जगह रावण है।

नोट—२ यहाँ काम-सेवनका दृष्टांत इससे दिया कि आगे मृत्युका भूलना कहेंगे, कामी पुरुष अपनेको अमर समझता है।

नोट—३ '*सेवत विषय*………', यथा—'**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥**' (इति विष्णुपुराणे चतुर्थेऽशे दशमेऽध्याये ययातिवचनम्) अर्थात् काम विषयोंके भोगसे शान्त नहीं होता किन्तु हवि पानेसे जैसे अग्नि बढ़ती है वैसे ही यह अधिक बढ़ता है। (पु० रा० कु०)

वि० त्रि०—सिर हरण करनेपर समाप्ति हो जाती है, फिर वह पुरुष जीता नहीं, पर रावणमें यह विशेषता दिखायी पड़ी कि '*कटत झटिति पुनि नूतन भए*'। सिरविहीन वह होने नहीं पाता था, दूसरे सिर निकल पड़ते थे, मानो सिरोंकी बाढ़ आ गयी, यह उसका विधिविपरीत चरित था (यथा—'*रघुपति सर सिर कटे न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥*')

काम-(विषय-वासना-) से मनुष्य पीड़ित होता है, उस पीड़ाकी शान्तिके लिए वह विषयोपभोग करता है। उपभोगका सुख आपातमात्र होता है (यथा—'**आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः**'), फिर कामना उठती है, उसका नाश नहीं होता। यथा—'*बुझै न काम अगिन तुलसी कहुँ बिषय भोग बहु घीते*'। अतः उपभोग प्रदानसे कामना कभी मिट नहीं सकती, बढ़ती ही जायगी, अतः उसकी उपमा रावणके सिरसे दी।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥ १॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी। धाएउ दसौ सरासन तानी॥ २॥

अर्थ—सिरोंकी वृद्धि देखकर दशमुखको अपना मरण भूल गया (उलटे) भारी गहरा क्रोध हुआ॥ १॥ वह महा अभिमानी मूर्ख गर्जा और दसों धनुषोंको तानकर दौड़ा॥ २॥

नोट—१ '*बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी*' इति। (क)—भाव कि उसने यह तो समझा नहीं कि हमारे पुण्य क्षीण हो रहे हैं, उलटे यह समझा कि मैं अब मर तो सकता ही नहीं, कितने ही सिर कटें तो क्या, ये तो बराबर होते ही जायँगे। यह मेरे प्रतापका बल है। ऐसा समझकर अब उसका गर्व बहुत बढ़ा और गर्वके कारण वह गर्जा। गर्वके कारण समझता नहीं कि मैं मरूँगा। पुनः, (ख) '*बिसरा मरन*' से जनाया कि पूर्व मरणका स्मरण हृदयमें बसा हुआ था, यथा—'*चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्याग जिवन कै आस।*' (८४)

पु० रा० कु०—पूर्व जब युद्धमें आया तब मरण ठानकर आया था, अब मरण भूल गया, जीवनकी आशा हो गयी। इसी तरह कामी अपनी मृत्यु नहीं समझते।

नोट—२ पूर्व '*परम क्रुद्ध*' और दर्पित हुआ था तब बीसों हाथोंमें दस धनुष लेकर चला था, यथा—'*निज दल बिचलत देखेसि बीस भुजा दस चाप। रथ चढ़ि चलेउ दसानन फिरहु फिरहु करि दाप॥ भएउ परम क्रुद्ध दसकन्धर।*' (दोहा ८०) अब 'गाढ़ रिस' और 'महा अभिमान' फिर हुआ, अतएव अब फिर वैसे ही दौड़ा।

समरभूमि दसकंधर कोप्यो*। बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥ ३॥
दंड एक रथ देखि न परेऊ†। जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥ ४॥

अर्थ—रणभूमिमें दशकन्धरने कोप किया और बाण बरसाकर रघुनाथजीका रथ तोप (ढक) दिया॥ ३॥ एक दण्ड भर रथ (ऐसा) दिखायी न पड़ा मानो कुहरेमें सूर्य छिप गये हैं॥ ४॥

नोट—'*दंड एक*' के सम्बन्धसे कुहरेकी उपमा दी। क्योंकि कुहरा सूर्योदयपर देरतक नहीं रहता, थोड़ी ही देर सूर्य उसके कारण अदृश्य रहते हैं। कुहरेसे सूर्यके तेज, गति आदिपर कोई बाधा नहीं पहुँचती,

* कोपेउ, तोपेउ † परादुरा—(का०)।

वैसे ही रामरथपर रावणके बाणोंसे कोई बाधा न पहुँचेगी, यह भी जनाया।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥ ५॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे॥ ६॥

अर्थ—जब देवताओंने हाहाकार किया तब प्रभुने कोप करके धनुष लिया॥ ५॥ और बाणोंको हटाकर शत्रुके सिर काटे। उन्होंने आकाश और पृथ्वीको सब दिशाओंमें पाट दिया। सब जगह सघन छा गये॥ ६॥

नोट—*'दिसि बिदिसि गगन महि पाटे'* अर्थात् इतने सिर कटे कि पृथ्वी देख नहीं पड़ती, आकाश देख नहीं पड़ता एवं और भी दिशाओंमें सिर सघन छाये हुए हैं। रावणने प्रथम-प्रथम आक्रमणमें बाणोंसे दिशि-विदिशि-गगन-महिको छा दिया था और यहाँ रामचन्द्रजीने अपने बाणों और उसके सिरोंसे उन्हीं सबको पाट दिया है। उसके बाणोंको रामजीने भस्मकर दिशाओंको साफ कर दिया था पर इस-(रावण-) में यह सामर्थ्य नहीं थी।

बं० पा०—दिशादिको पाटनेका भाव कि दसों दिक्पालोंको रावणके सिरका बलि करके बाणरूपी स्रुवाद्वारा आहुति देते हैं। यथा—*'वितरसि दिक्षु रणे दिक्पति कमनीयम्। दशमुखमौलिबलिं रमणीयम्॥ केशवधृतरामशरीर जय जय देव हरे॥'* (गीतगोविन्द) अर्थात् आप रणमें रावणके सिररूपी कमनीय बलिको सब दिशाओंमें वितरण करते हैं।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं॥ ७॥
कहँ लछिमन सुग्रीव* कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥ ८॥

अर्थ—कटे हुए सिर आकाशमार्गमें दौड़ते और **'जय जय'** की ध्वनि कर-करके भय उत्पन्न करते हैं॥ ७॥ लक्ष्मण कहाँ हैं? वानरराज सुग्रीव कहाँ हैं? कोसलपति रघुवीर कहाँ हैं?॥ ८॥

पं०—जब जय-जय-ध्वनिसे वानर डरते हैं तब मुण्ड *'कहँ लछिमन ……'* इत्यादि भी बोल-बोलकर और डरवाते हैं।

☞आ० रा० १। ११ में लिखा है कि सिर कटनेपर प्रसन्न होकर हँसते थे कि हम रामके हाथसे काटे गये। यथा—**'ततो रामः शरैस्तीक्ष्णैर्दशाननशिरांसि च॥'** (२७३), **'चिच्छेद तानि गगने गत्वा तोषयुतानि हि। रामहस्तान्मृतिजिताऽस्माकं चेति विचिन्त्य च॥ वन्दनं कर्तुकामानि गगनाच्च रणाजिरे। सस्मितानि पतन्ति स्म राघवस्य पदोपरि॥'** अर्थात् रामचन्द्रजीके तीक्ष्ण बाणोंके द्वारा रावणके जो सिर छेदे गये थे वे प्रसन्न होकर आकाशमें चले गये और वहाँ यह सोचकर कि हमको श्रीरामचन्द्रजीके हाथोंसे मारे जानेका गौरव प्राप्त है प्रसन्न हो मुस्कुराते हुए वन्दना करनेके लिये श्रीरामके चरणोंपर आकर गिरते थे।

नोट—२ (क) *'रघुबीर'* से *'धन्वी सकल लोक विख्याता'* सूचित किया। (ख)—*'रघुबीर कोसलाधीश'* कहकर रामको ही सूचित किया (ग)—*'कहँ लछिमन……कोसलाधीसा'* का भाव कि जो-जो प्रधान हैं हम उनको ढूँढ़ते हैं, पावें तो मार डालें। यथा—*'कहाँ राम रन हतउँ प्रचारी'*।

नोट—☞३ मेघनादने अङ्गद, हनुमान्, द्विविद, नल, नील और विभीषणका नाम लिया था, यथा—*'कहँ नल नील दुबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बलसींवाँ॥ कहाँ बिभीषन भ्राता द्रोही'*। पर रावणके सिर इनका नाम नहीं लेते। इसका कारण यह है कि वह राजा है, राजाओंसे युद्ध करता है, औरोंके साथ युद्ध करनेमें अपनी हीनता समझता है। विभीषणको लात मारकर निकाल दिया अतः उनको वह समझता ही क्या है। लक्ष्मणजीसे युद्धमें अभी-अभी पराजय पायी है—*'गिरयो धरनि दसकंधर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो। सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लइ गयो॥'* (८३ छंद)' अतः लक्ष्मणजीका नाम लेते हैं। सुग्रीवके कारण ही सारी वानर-सेना रामचन्द्रजीके साथ है, वे वानरराज हैं; अतः उनका नाम लेते हैं। अन्य कारण दोहा ६४ *'काँखि दाबि कपिराज कहँ'* एवं ४९ (१-३) में दिये जा चुके हैं।

* हनुमान्।—(का०)।

नोट—४ जो मेघनादने स्वयं कहा था वह यहाँ रावणके कटे सिर कह रहे हैं। इससे रावणकी अधिक वीरता सूचित होती है।

☞ यह वर्णन वाल्मी० में नहीं है।

छं०—कहँ रामु कहि सिर निकर धाए देखि मर्कट भजि चले।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले॥
सिर-मालिका कर कालिका गहि* बृंद बृंदन्हि बहु मिलीं।
करि रुधिर सरि मज्जनु मनहु संग्राम बट पूजन चलीं॥

अर्थ—'राम कहाँ हैं' यह कहते हुए शिरोंके झुंड दौड़े। वानर उन्हें देखकर भाग चले तब रघुकुलमणि श्रीरामचन्द्रजीने हँसकर धनुषसंधान करके बाणोंसे सिरोंको भली प्रकार वेध दिया। कलिकाओंके बहुत-से झुंड-के-झुंड हाथोंमें मुण्डमालाएँ लिये मिलकर चलती हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो रुधिर-नदीमें स्नान करके संग्रामरूपी वटवृक्षकी पूजा करने जा रही हैं।

मा० म०—'*कहँ राम कहि*.........' इति। बिना शरीरके सिरकी बोली सुनकर कपिदल भागा। अथवा, जीता है मरा नहीं है, वा, यह कि मरनेपर भी सँग लगा है—यह जानकर भागा।

नोट—ज्येष्ठ कृष्ण अमावस्याको स्त्रियाँ वटकी पूजा करती हैं। उसीसे यहाँ उत्प्रेक्षा करते हैं। वटमें अनेक वटारोह जड़वाली शाखाएँ निकलती हैं। तात्पर्य यह है कि कालिकाओंको रक्तपानसे प्रेम होनेके कारण वे संग्रामको जारी रखना चाहती हैं, अक्षय बनाना चाहती हैं। वटसावित्री सीमात्रकी अत्यन्त प्रसिद्ध और विशेष पूजा है। प्रसिद्धिकी दृष्टिसे ही इस विशेष पूजाकी उत्प्रेक्षा की गयी है।

बं० पा०—जिस वटका नाम 'सावित्री-वट' है, उसे अपने पतिके चिरंजीवी होनेके लिये पूजन किया जाता है।

गौड़जी—यहाँ कालिकासे वह कालीजी अभिप्रेत नहीं हैं जो पार्वतीजीके शरीरसे चण्ड-मुण्ड और रक्त बीजके विनाशके लिये पैदा हुई थीं। ये कालिकारूपधारिणी योगिनियाँ हैं जो मातृकाओंकी सेनामें करोड़ोंकी संख्यामें रहा करती हैं और जिह्वा फैलाकर नहीं बल्कि खप्परोंमें रक्त रोपकर पान करती हैं।

दो०—पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ† छाड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख‡ मनहुँ काल कर दंड॥९२॥

अर्थ—फिर दशग्रीवने क्रोधित होकर विभीषणपर प्रचण्ड शक्ति चलायी। वह विभीषणके सामने ऐसे चली मानो यमराजका दण्ड हो॥ ९२॥

नोट—१ (क) **काल**=यम। दंड यमराजका आयुध है, यथा—'**कालो दण्डधरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः**', '***काल दंड गहि काहु न मारा।***' (३६।७) (ख) रावणकी जब रामचन्द्रजीसे कुछ न चली और विभीषण सामने देख पड़े तब यह समझकर कि इसीके शत्रुसे मिल जानेके कारण, हमारी यह दुर्गति हुई एवं यह कि हमारे जीते जी ही इसने तिलक करा लिया है क्रोधका आना और अमोघशक्तिका उसपर छोड़ना स्वाभाविक ही है। विभीषणको देख भ्राता, पुत्र और सेनाका नाश स्मरण हो आया जिससे अवश्य ही असह्य दुःख उसे हुआ होगा।

नोट—२ विभीषणजीपर शक्ति चलानेका प्रसंग वाल्मी० ९०। ४२ (मेघनाद-लक्ष्मण अन्तिम युद्धमें मेघनादद्वारा), वाल्मी० १००। १९, २४ (रावण-लक्ष्मण-युद्धमें) और अ० रा० ११ में (राम-रावण-युद्धमें) वर्णित है। मेघनादकी चलायी हुई शक्तिको लक्ष्मणजीने काट डाला। लक्ष्मण-रावण-युद्धमें रावणने विभीषणपर शक्ति चलायी, उसे लक्ष्मणजीने काट डाला। तब उसने दूसरी शक्ति चलायी जिससे विभीषणके प्राणोंका संशय था। उससे भी विभीषणको बचाया। तब रावणने लक्ष्मणजीपर शक्ति चलायी जिससे वे मूर्च्छित हुए और सुषेणद्वारा अच्छे हुए। गीतावलीमें भी ऐसा ही उल्लेख है। अ० रा० ६ में भी यह

* गहि कालिका कर—(का०)। † पुनि रावन अति कोप करि। ‡ सनमुख चली बिभीषन—(का०)।

प्रसंग है कि 'विभीषणको देखकर रावणने महाशक्ति चलायी। प्राणोंका संशय देख लक्ष्मणजीने विचार किया कि इनको राघवने अभय प्रदान किया है इन्हें बचाना हमारा कर्तव्य है। यह सोचकर आप विभीषणके आगे आ खड़े हुए। और उस शक्तिके लगनेसे मूर्च्छित हो गये। अ० रा० ११ में नाभिसर सोखनेके बाद रावणने विभीषणपर महाभयंकर शक्ति चलायी है। वहाँ रामचन्द्रजीने उस शक्तिको बाणोंसे काट डाला है। इससे शक्तिका सहना एवं भक्तवत्सलताका विचार करनेका उल्लेख नहीं है।—'**ततो घोरां महाशक्तिमादाय दशकन्धरः॥ विभीषणवधार्थाय चिक्षेप क्रोधविह्वलः। चिच्छेद राघवो बाणैस्तां शितैर्हेमभूषितैः॥**' (५६-५७) अर्थात् क्रोधसे मूर्च्छित रावणने विभीषणवधके लिये भयंकर महाशक्ति चलायी। रघुनाथजीने काञ्चनभूषित पैने बाणोंसे उसे काट डाला।

साहित्यिक दृष्टिसे यह प्रसंग इन सब प्रसंगोंमेंसे लेकर चुना हुआ कहेंगे। और हमारे प्राचीन इतिहासों-शास्त्रोंके अनुसार कल्पभेदसे ये चरित कहे गये हैं। मनु-दशरथ और भानुप्रताप-रावणवाले कल्पकी कथा ऐसी ही होगी। क्योंकि जय-विजय इत्यादि रावणावतारोंकी कथाएँ तो वाल्मी०, आ० रा०, अ० रा० आदिमें दी ही हैं।

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा*॥ १॥
तुरत बिभीषनु पाछे मेला। सन्मुख राम सहेउ सो सेला॥ २॥

अर्थ—अत्यन्त भयानक शक्तिको आते देख, 'हमारा प्रण है शरणागतके दुःखका नाश करना'॥ १॥ (यह विचारकर) तुरंत विभीषणको अपने पीछे करके रामचन्द्रजीने सामने आकर वह शक्ति आप सह ली॥ २॥

नोट—१ '*प्रनतारति भंजन पन मोरा*'। यथा—'*जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहउँ ताहि प्रान की नाईं।*' विभीषण प्रणत हैं ही और प्रभुका '*भंजन भव भीर*' और 'आरतिहरन' गुण सुनकर आये ही थे, यथा—'*श्रवन सुनि आएउँ प्रभु भंजन भवभीर। त्राहि त्राहि आरतिहरन सरन सुखद रघुबीर॥*' अतः, प्रभुने उनके भव वा आर्तिका हरण किया और उनके प्राणोंकी रक्षा अपने प्राणोंसे भी अधिक की।

नोट—२ '*पाछे मेला*' से जनाया कि हाथसे पीछे कर लिया। पूर्व कहा '*आवत देखि सक्ति*.........' और फिर '*सहेउ सो सेला*'; इस तरह 'सेला' का अर्थ 'शक्ति' जनाया। पुनः, पीछे हटा देनेसे सूचित हुआ कि वह शक्ति विभीषणके लिये प्राणघातिनी थी। (अ० रा० ११। ५७; उपर्युक्त)

वि० त्रि०—मालूम होता है कि मातलिके घायल होनेके बादसे सारथीका काम विभीषण करते हैं, नहीं तो सरकार रथपर सवार हैं, रावणका रथ सामने है, दोनों ओरसे अस्त्र-शस्त्र चल रहे हैं, बीचमें विभीषण कहाँसे चले आये कि रावणने उनपर शक्ति छोड़ी, और रामजीने विभीषणको ढकेलकर उस शक्तिको अपनी छातीपर लिया। इस स्थलपर सारथीके स्थानपर विभीषणको बिना माने अर्थ बैठता नहीं।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई॥ ३॥
देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥ ४॥

अर्थ—शक्तिके लगनेसे कुछ मूर्च्छा हुई। प्रभुका तो यह खेल हुआ और देवताओंको व्याकुलता हुई॥ ३॥ प्रभुको श्रम (क्लेश, कष्ट, तकलीफ) हुआ देखकर विभीषणजी हाथमें गदा ले क्रुद्ध होकर दौड़े॥ ४॥

पं०—'*प्रभु कृत खेल*'। भाव कि नरनाट्यमें तदनुसार स्वाँग करना ही पड़ता है—'*जस काछिय तस चाहिय नाचा।*' खेलका हेतु भक्तकी रक्षा और विधि-वचनका निर्वाह है। अथवा, विभीषण-रावण-युद्ध देखनेके लिये यह कौतुक किया गया। रावणको दिखा देना चाहते हैं कि जो रावण तुम्हारे सम्मुख कभी दृष्टि भी न कर सकता था वह आज, हमारे आश्रित होनेसे कैसा बलवान् है। यवका घुन नहीं

* पाठान्तर—'आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रनतारतिहर बिरद सँभारा॥' अर्थ—तीक्ष्ण धारवाली शक्ति आते देख, शरणागतके दुःखके हरनेवाले प्रभुने अपना 'प्रणतारतिहर' पन स्मरण किया।

है और न 'भीरु' है।

नोट—पूर्व स्वामीकी 'सेवकहितता' दिखायी—*'तुरत बिभीषन पाछे मेला।……'* और यहाँ सेवककी 'सेवकाई' दिखायी—*'गहि कर गदा……'*।

☞विभीषणको शरणमें लेकर प्रभुने अबतक उनको संग्राममें लड़नेके लिये कभी नहीं भेजा। वे इनकी प्राणकी तरह रक्षा करते रहे। इस समय प्रभुको श्रमित देख विभीषण स्वयं दौड़कर रावणसे लड़ने चले। यही एक प्रथम और अन्तिम युद्ध विभीषणका है। प्रभुने उनको केवल मन्त्री ही बनाकर अपने पास ही लड़ाईभरमें रखा।

☞इस चरितसे प्रभु उपदेश दे रहे हैं कि जो कोई भी प्राणी हमारी शरणमें संसारसे भयभीत होकर आवेगा उसकी हम प्राणोंसे रक्षा करेंगे। उसे केवल एक बार सत्य ही शरणमें आनेकी जरूरत है फिर समस्त विकारोंसे उसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है, उसको इनकी चिन्ता न रहेगी। हम उसके शत्रुओंको मारकर उसे राज्य देंगे।

प० प० प्र०—*'लागि सक्ति……'* इति। मूर्च्छित देख वानरसेनाभरको अनिर्वचनीय दुःख और चिन्ता हुई। शिवादि मर्मज्ञ देवों और कविके हृदय भगवान्‌का शरणागत-परित्राण-विरद देखकर सत्त्वभावापन्न हो गये। प्रेम हृदयसे उमड़ पड़ा। अन्य देवताओंको भी दुःख और चिन्ता हुई; पर वे मनमें विचारने लगे कि विभीषण मर जाता तो क्या हानि थी, क्योंकि वे सब स्वार्थी ही तो हैं, उन्हें तो *'पर अकाज प्रिय आपन काजू।'*—ये सब भाव इस अर्धालीमें मात्राकी कमीद्वारा जनाया है।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥५॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥६॥

अर्थ—अरे अभागे! शठ! नीच! अरे दुर्बुद्धि! तू सुर, नर, मुनि, नागदेव सभीका विरोधी है॥ ५॥ तूने आदरसहित श्रीशिवजीको सिर चढ़ाये (इससे) एक-एक सिरके बदलेमें करोड़ों सिर पाये॥ ६॥

नोट—१ 'कुभाग्य, शठ, मन्द, कुबुद्धि' ये विशेषण सहेतुक हैं। रामविमुख होनेसे अभागा और शठ कहा, यथा—*'रामबिमुख सठ चहसि संपदा', 'सो नर क्यों दससीस अभागा।'* (२६। ४) देखिये। सबसे विरोध करनेसे 'मंद' कहा। हित-अनहित न समझनेसे दुर्बुद्धि कहा—*'तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता', 'हित अनहित पसु पच्छिउ जाना'।* औरोंने भी इसे अभागा कहा है। यथा—*'उतरु देत मोहि बधब अभागे'* (मारीच)। क्योंकि इसने कहा था कि राम मनुष्य नहीं हो सकते पर रावणने गाली दी।…), *'सो नर क्यों दससीस अभागा'*—(अङ्गदने कहा, क्योंकि वह श्रीरामजीको नर कहता है), *'दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कहेसि सहित अभिमान अभागे'*—(कवि वा वक्ता अभिमानके कारण उसे अभागा कहते हैं)।

पं०—सुर-नरादि सबका विरोधी होनेसे 'कुबुद्धि', कुबुद्धि होनेसे मंद, मंद होनेसे शठ और शठ होनेसे अभागी है।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो*। अब तव काल सीसु पर नाँच्यो॥७॥
राम बिमुख सठ चहसि† संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा॥८॥

अर्थ—उसी कारणसे अरे खल! अबतक तू बचता रहा, परन्तु अब तेरा काल तेरे सिरपर नाच रहा है॥ ७॥ अरे मूर्ख! तू श्रीरामजीसे विमुख होकर सम्पत्ति चाहता है। ऐसा कहकर विभीषणने रावणकी छातीमें गदा मारी॥ ८॥

* वाचा, नाचा † चह—(का०)

पं०—*'अब तव काल सीसु पर नाँच्यो'*। यह कैसे जाना? उत्तर—(१) अब तूने रामको कष्ट पहुँचाया है, अतः अब तेरे सब सुकृत क्षीण हो गये। (२) जो अमोघ शस्त्र तेरे पास थे अब वह भी प्रयुक्त हो चुके। वा, (३) प्रभुके हृदयमें तूने शक्ति मारकर मानो अपना मृत्युस्थान बता दिया एतावता अब वे तेरे प्राण हरण कर लेंगे।

करु०—भाव कि वरदान और तपस्याका फल पूरा मिल चुका।

नोट—१ *'राम बिमुख सठ चहसि संपदा'*। भाव की रामविमुखको सम्पत्ति नहीं मिल सकती—*'रामबिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥'* तब (और देवताओंकी सेवासे) इसकी आशा करना मूर्खता ही है—*'हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे।'* अतएव शठ कहा।

नोट—*'हनेसि माँझ उर गदा'* हृदयमें मारा क्योंकि वे जानते हैं कि हृदयपर घाव लगनेसे रावण व्याकुल हो जाता है। और हुआ भी यही।

छं०—उर माँझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।
दसबदन सोनित स्त्रवत पुनि संभारि धायो रिस भर्‌यो॥
द्वौ भिरे अति बल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हने।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ता कहुँ गने॥

शब्दार्थ—**मल्लयुद्ध**=द्वन्द्वयुद्ध, कुश्तीकी लड़ाई। **घाल**=घलुआ, सौदेकी उतनी वस्तु जितनी ग्राहकको तौल वा गिनतीके ऊपर दी जाती है। 'घाल न गिनना'=पसंगा बराबर भी न समझना,—*'बीर-करि केसरी-कुठारपानि मानी हारि तेरी कहा चली बिड तोसो गनै घालि को।'* (क० लं० ११)

अर्थ—घोर कठोर गदाकी कठिन चोट छातीमें लगते ही वह पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके दसों मुखोंसे खून बहने लगा। फिर स्वयंको सँभालकर क्रोधमें भरा हुआ वह दौड़ा। दोनों अत्यन्त बलवान् वीर भिड़ गये और मल्लयुद्धमें विरोधभावसे भिड़कर एक-दूसरेको मारने लगे। रघुवीरके बलसे गर्वित विभीषण उसको कुछ भी नहीं समझता।

पं०—*'मल्ल जुद्ध बिरुद्ध'* का भाव कि मल्लयुद्ध मित्रभावसे भी होता है पर उसमें प्राणोंपर आघात नहीं किया जाता, इसीसे कहा कि ये शत्रुभावसे एक-दूसरेके प्राण लेनेके विचारसे मल्लयुद्ध कर रहे हैं।

बं० पा०—यहाँ विभीषणने ही रावणसे युद्ध किया, इसका कारण यह है कि इन्हींके लिये प्रभुको यह श्रम हुआ है।

नोट—☞रावणने, लक्ष्मण, अङ्गद, सुग्रीव, विभीषण, जाम्बवन्त, नल और नील इतनेका नाम लेकर इनका अपमान किया था, यथा—*'तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद॥'*, *'तव प्रभु नारि बिरह बलहीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना॥'* (२२। १-२) से *'सिल्प कर्म जानहिं नल नीला'* तक। इन सबोंने अपना बल युद्धमें इसको दिखाकर इस अपमानका बदला लिया है। यथा—

१ लक्ष्मणजी—*'आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदन सूत हति ब्याकुल कियो।*
गिर्‌यो धरनि दसकन्धर बिकलतर बान सत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लेइ गयो॥' (८३ छंद)

२ अङ्गदने एक तो सभाहीमें उसका मानमर्दन किया था और फिर दुबारा—
'देखि बिकल सुर अंगद धाएउ। कूदि चरन गहि भूमि गिरायउ॥
गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयउ॥' (९६ छन्द)

३ सुग्रीवका युद्ध प्रकट यहाँ नहीं लिखा गया। कारण यह जान पड़ता है कि इनके अपमानका बदला रावणके भाई कुम्भकर्णके युद्धमें कवि दिखा चुके हैं। यथा—*'काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ.....॥'*

४ विभीषन—*'उर माँझ गदाप्रहार घोर कठोर लागत महि पर्‌यो।*

दस बदन सोनित स्त्रवत पुनि संभारि धाएउ रिस भर्यो॥' (९३ छन्द)

५ जाम्बवंत—*'मुरछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धाएउ रनधीरा॥'..........*
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माँझ उर मारेसि लाता॥
उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ तें महि परा.........।
मुरछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो॥' (९७)

६-७ नल नील—*'तब नल नील सिरन्ह चढ़ि गएऊ। नखन लिलार बिदारत भएऊ॥*
रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहिं धरन कहँ भुजा पसारी॥
गहे न जाहिं करन्ह पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमलबन चरहीं॥
कोपि कूदि दोउ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥' (९७। ६—९)

दो०—उमा बिभीषनु रावनहिं सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं* श्रीरघुबीर प्रभाउ॥ ९३॥

अर्थ—हे उमा! क्या विभीषण कभी भी रावणके सामने आँख उठा कर देख भी सकता था? (कदापि नहीं)। परंतु वही विभीषण अब कालके समान रावणसे भिड़ रहा है; यह श्रीरघुवीरका ही प्रताप है॥ ९३॥

नोट—१ *'सनमुख चितव कि काउ'*—अर्थात् सदा डरता था, यथा—*'नाइ सीस करि बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता॥'* (सुं० २४), *'अवसर जानि बिभीषण आवा। भ्राता चरन सीस तेहि नावा॥'* (सुं० ३८। २) *'पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन॥'*, *'तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।'* (सुं० ४०)

विभीषणजीने कठोर वचन सुनने और लात खानेपर भी आँख सामने न की। यथा—*'अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। अनुज गहे पद बारहिबारा॥ तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजे हित नाथ तुम्हारा॥'* (५। ४१), *'बंधु हमार भीरु अति सोऊ'*—(रावणवाक्य अङ्गदप्रति)।'

नोट—२ *'काल ज्यौं'* अर्थात् विरोधभावसे प्राण लेनेके लिये, कालके समान दुर्धर्ष होकर, सम्मुख आकर।

नोट—३ *'श्रीरघुबीर प्रभाउ'* इति। प्रभाव यह है कि प्रभु तृणको भी वज्र बना देते हैं। यथा—*'तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई।'*

देखा श्रमित बिभीषनु भारी। धाएउ हनूमान गिरि धारी॥ १॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता॥ २॥

अर्थ—विभीषणजीको बहुत श्रमित (थका हुआ) देखकर हनुमान्‌जी पर्वत लिये हुए दौड़े॥ १॥ (और उससे) रथ, घोड़े और सारथीका नाश कर दिया और उस (रावण) के हृदयमें लात मारी॥ २॥

नोट—*'गिरिधारी'* कहकर व्यञ्जनाद्वारा प्रकट किया कि पर्वतसे रथ, घोड़े और सारथीको मारा। रावण पहाड़की चोटसे बच गया। उसी समय हनुमान्‌जीने उसे लात मारी। विभीषणजीने हृदयमें गदा मारी थी और हनुमान्‌जीने भी हृदयमें ही मारा।

ठाढ़ रहा अति कंपित गाता। गएउ बिभीषन जहँ जनत्राता॥ ३॥
पुनि रावन कपि हनेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥ ४॥

अर्थ—वह खड़ा रहा पर उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा। तब विभीषण वहाँ गये जहाँ जनरक्षक प्रभु थे॥ ३॥ फिर रावणने ललकारकर हनुमान्‌जीको मारा। वे पूँछ फैलाकर आकाशमें चले गये अर्थात् उसके आघातसे इनको कुछ न हुआ॥ ४॥

नोट—१ *'गएउ बिभीषन जहँ जनत्राता'*। (क)—*'जनत्राता'* विशेषण देनेका भाव कि विभीषणजीकी

* 'भिरत सो काल समान अब'—(का०)

रक्षाके लिये ही उन्होंने शक्ति अपने ऊपर लेकर इनको बचा लिया था। (ख)—*'गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायउ'* उपक्रम है और *'गएउ बिभीषन जहँ जनत्राता'* उपसंहार है। (ग) श्रीहनुमान्‌जीके पहुँचनेसे इनको अवकाश मिला तब ये प्रभुके पास गये।

नोट—२ प्रभुको श्रमित देख विभीषण धाये, विभीषणजीको श्रमित देख हनुमान्‌जी धाये, हनुमानजीका सङ्कट देख वानर-भालु चलेंगे और उन सबोंको पीड़ित देख फिर श्रीरघुवीर सबकी रक्षा करेंगे। इस प्रकार *'जनत्राता'* पदका पूरा चरितार्थ यहाँ है। यथा—

१ विभीषण—*'देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायउ। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायउ॥'* (९३। ४)

२ हनुमान्‌जी—*'देखा श्रमित बिभीषन भारी। धाएउ हनूमान गिरि धारी॥'* (९४। १)

३ वानर-भालु—*'हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।'* (९४ छन्द)

४ श्रीरामजी—*'रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले॥ तब रघुबीर प्रचारे धाए कीस प्रचंड।'* (९४)

पु० रा० कु०—*'पूँछ पसारी'*। इससे हनुमान्‌जीने अपनी प्रबलता दिखायी। यथा—*'गहेसि पूँछ कपि सहित उड़ाना'*।

पं० वि० त्रिपाठीजी—हनुमान्‌जीने देखा कि सरकार मूर्छित हैं, विभीषण भी युद्धमें श्रमित हो गया। रथी-सारथी दोनों संकटापन्न हैं। ऐसे अवसरपर रावणका सन्निकट रहना ठीक नहीं। अतः रावणकी चोट खाकर हनुमान्‌जी आकाशमें चले और पूँछको फैला दिया जिसमें 'कहाँ जाता है' कहकर रावण भी पूँछ पकड़े आकाशमें चला आवे। बुद्धिमतांवरिष्ठकी नीति सफल हुई। रावण ।*'गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥'* नहीं तो शत्रुसे चोट खाकर आकाशमें चला आना तो भागना हो जायगा। अतः महावीरके प्रति ऐसा सोचा भी नहीं जा सकता।

गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥ ५॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एक हनत करि क्रोधा॥ ६॥

अर्थ—रावणने पूँछ पकड़ ली, कपि उसके समेत उड़े। फिर महाबलवान् हनुमान्‌जी उससे फिरकर भिड़े॥ ५॥ दोनों समान योद्धा हैं। आकाशमें लड़ते हुए वे एक-दूसरेको क्रोध कर-करके मारने लगे॥ ६॥

नोट—१ *'गहिसि पूँछ कपि सहित उड़ाना'* यह पूँछकी पुष्टता और हनुमान्‌जीका बल दिखाया। पुनः ऊपर उड़नेमें अभिप्राय यह था कि ऊपरसे प्रहार करें। *'पुनि'* और *'फिरि'* में पुनरुक्तिवदाभास है।

पं०—रावण पूँछ पकड़े खींचता है। और हनुमान्‌जी ऊपर उड़े जा रहे हैं यह देख लोग ऐसा न समझें कि हनुमान्‌जी उससे भागते हैं, यह विचार कर *'पुनि फिरि भिरेउ'* कहा।

'जुगल सम जोधा' इति। यथा—

रावण	हनुमान्
१ *'परेउ सबल जनु बज्र प्रहारा।'* (८३। २)	*'जानु टेकि कपि भूमि न गिरा।'* (८३। १)
२ *'मुरछा गइ बहोरि सो जागा। कपिबल बिपुल सराहन लागा॥'* (८३। ३)	*'उठा सँभारि बहुत रिसभरा।'* (८३। १)
३ *'हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता।'* (९४। २)	*'पुनि रावन कपि हतेउ पचारी।'* (९४। ४)
४ *'ठाढ़ रहा अति कंपित गाता।'* (९४। ३)	*'चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी।'* (९४। ५)
५ *'हनत एक एकहि करि क्रोधा।'* (९४। ६)	
६ *'महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहँ जय जय भनेउ।'* (९४ छन्द)	

दोनोंमें इस स्थानपर आकार, बल और बुद्धिमें समानता कही है। दोनों पर्वताकार—*'कज्जलगिरि'*, *'सुमेरु'*। दोनों *'महि परत पुनि उठि लरत'* और दोनों एक-दूसरेसे पार नहीं पाते—*'निसिचर बुधि बल परै न पारा'*। वह भी पार नहीं पाता, नहीं तो घायल करके चल देता।

☞ हनुमान-मेघनाद और हनुमान्-रावण-युद्धका मिलान—

हनुमान-मेघनाद	हनुमान्-रावण
देखि पवनसुत कटकु बिहाला	*१ देखा श्रमित बिभीषन भारी*
गहिं गिरि मेघनाद कहुँ धावा। महा सैल एक तुरत उपारा॥	*२ धाएउ हनूमान गिरिधारी*
भंजेउ रथ सारथी निपाता। रथ सारथी तुरत सब खोई॥	*३ रथ तुरंग सारथी निपाता*
ताहि हृदय महँ मारेसि लाता।	*४ हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता*
आवत देखि गएउ नभ सोई॥	*५ ठाढ़ रहा अति कंपित गाता*
बार बार प्रचार हनुमाना। निकट न आव मरम सो जाना॥	*६ पुनि रावन तेहि हतेउ प्रचारी।*………
	हनत एक एकहि करि क्रोधा।

☞मेघनाद एक बारकी लात खाकर इतना डर गया कि तीसरी बार ललकारनेपर भी सामने नहीं आता और रावण स्वयं ललकार-ललकारकर उनसे लड़ रहा है। इससे रावणमें मेघनादसे विशेषता दिखायी।

सोहहिं नभ छल बल बहु करहीं। कज्जल गिरि सुमेरु जनु लरहीं॥ ७॥
बुधि बल निसिचर परै न पार्‍यो*। तब मारुतसुत प्रभु संभार्‍यो†॥ ८॥

शब्दार्थ—**पार पड़ना**=सफलता प्राप्त करना, जीतना। **पारना**=गिराना। यथा—*'गहि भूमि पार्‍यो लात मार्‍यो'*।'

अर्थ—बहुत छल-बल करते हुए वे आकाशमें (ऐसे) शोभित हो रहे हैं मानो कज्जलका पर्वत और सुमेरुपर्वत दोनों लड़ रहे हैं॥ ७॥ जब बुद्धि और बलसे निशिचरसे पार न पाया (वा, निशिचर गिराये न गिरा) तब पवनसुतने प्रभुको स्मरण किया॥ ८॥

नोट—१ रावणको पर्वताकार और काला होनेसे कज्जलगिरि कहा। पूर्व भी रावणको कज्जलगिरिकी उपमा दी गयी है। यथा—*'अगंद दीख दसानन बैसा। सहित प्रान कज्जलगिरि जैसा॥'* (१९। ४) श्रीहनुमान्‌जी **'सुवर्णशैलाभदेहम्'** हैं अतः सुमेरु पर्वतकी उत्प्रेक्षा की गयी।

नोट—२ पहले *'छल बल बहु करहीं'* कहा, फिर *'बुधि बल परै न पारा'* कहा। इस प्रकार *'छल'* से *'बुद्धि बल'* और *'बल'* से 'शरीरबल' का अर्थ सूचित किया। विशेष *'निसिचर छलबल करइ अनीती।'* (५३। ३), तथा *'चिक्करहिं मर्कट भालु छलबल करहिं जेहि खल छीजहीं।'* (८० छन्द) देखिये।

नोट—३ *'बुधि बल निसिचर परै न पार्‍यो।*………*'* इति। यहाँ रावणको हनुमान्‌जीसे अधिक बलवान् दिखाया। एवं हनुमान्‌जी आदि वानर-योद्धाओंके बलपर रावणको पराजय करनेका निषेध और जाम्बवन्तके *'तब निज भुजबल राजिवनयना। कौतुक लागि संग सब सेना॥'* इन वचनोंको चरितार्थ किया है। अन्यत्र भी यह बात गोस्वामीजीने कही है कि वानरोंमें जो बल रावणके सामना करनेका है वह सब प्रभुका प्रताप है, [यथा—*'रामप्रताप प्रबल कपि जूथा।'* (४१। १), *'कपि जयसील राम बल ताते।'* (८०। ३)], नहीं तो सुग्रीवके साथ रहकर भी हनुमान्‌जी बालिसे उनकी रक्षा क्यों न कर सके? यथा *'तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान। बैर बालि सुग्रीवि के कहा कियो हनुमान।'* (दो० ११०)

छं०—संभारि श्रीरघुबीर धीर पचारि कपि रावनु हन्यौ।
महि परत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जय जय भन्यौ॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रन मत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले॥

शब्दार्थ—**दलमलना**=मसल वा भीड़ डालना। *'भुजबल रिपुदल दलमलि*………*॥'* (४४)

अर्थ—जयश्रीको प्राप्त, धीर, रघुकुलवीर श्रीरामचन्द्रजीका स्मरण करके हनुमान्‌जीने ललकारकर रावणको मारा। वे दोनों पृथ्वीमें गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं, यह देख देवताओंने दोनोंकी जय पुकारी अर्थात्

*†पारा, संभारा—(का०)।

जय-जयकार किया। हनुमान्‌जीका क्लेश देखकर रीछ और वानर क्रोधभरे हुए शीघ्र चले। रणमदमाते रावणने सब उत्तम योद्धाओंको अपने प्रचण्ड भुजबलसे मसल डाला।

नोट—१ ***'जुगल कहुँ जय जय भन्यौ।'*** (१)—इससे जनाया कि दोनों ही एक-दूसरेकी मारसे पृथ्वीपर गिरते और फिर उठकर लड़ते हैं, नहीं तो दोनोंकी जय कैसे बोलते? (२) रावण तो शत्रु है, उसकी जय क्यों बोलते हैं? देवता सत्यवादी हैं, वे झूठ नहीं बोल सकते, यथार्थ ही कहेंगे। पुनः, दोनोंकी वीरतापर प्रसन्न हो-होकर जय बोल रहे हैं। देखिये, शत्रु होनेपर भी भगवान् कृष्णजी कर्णकी वीरताकी प्रशंसा करते रहते थे।

नोट—२ ***'सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले।'*** हनुमान्‌जीका हटना नहीं कहा। इससे जनाया कि वह इनसे भी लड़ता था, इनसे असावधान न था और साथ-ही-साथ और सबसे भी लड़ता था।

बं० पा०—दोकी जय बोली, अतएव दो बार ***'जय'*** कहा।

दो०—तब रघुबीर पचारे* धाए कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल देखि† तेहिं कीन्ह प्रगट पाषंड॥ ९४॥

अर्थ—तब श्रीरघुवीरके ललकारनेपर बड़े बलवान् वानर बड़े वेगसे दौड़े। प्रबल वानरदलको देखकर उसने माया प्रकट की॥ ९४॥

शब्दार्थ—**पाषंड**=माया। यहाँ ***'कीन्ह प्रगट पाषंड'*** कहा और आगे कहते हैं कि ***'प्रभु छन महँ माया सब काटी।'*** (९६। १), इस तरह दोनों पर्याय हुए।

नोट—१ (क) ***'तब रघुबीर पचारे'*** अर्थात् हनुमान्‌जीका संकट सुभट निवारण न कर सके, वरन् स्वयं मर्दित हुए, यह देख प्रचण्ड योद्धाओंको भेजा। ***'पचारे'*** पूर्व रावण और आगे ***'कीस प्रचण्ड'*** दोनोंमें लगता है। (ख) ***'धाये'*** इति। जो सुभट हनुमान्‌जीकी सहायताके लिये चले, वे अङ्गद अथवा नल-नीलादि यूथप न थे। इसीसे उनके विषयमें ***'चले'*** पद दिया था। और सर्वत्र ***'धाए'*** पद आया है—(विभीषणजी धाये, यथा—***'गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो।'*** हनुमान्‌जी धाये, यथा—***'धायेउ हनूमान गिरिधारी।'*** अब प्रचण्ड कीश धाये; यथा—***'धाए कीस प्रचंड'***। और पूर्व ***'हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।'***) ***'चले'*** से जाना गया कि रावणके सम्मुख लड़नेका साहस न पड़ता था। अतः उन्हें उतना उत्साह न था और ये प्रचण्ड कीश उत्साहपूर्वक उससे लड़ने जा रहे हैं।

नोट—२ ***'कपिदल प्रबल देखि तेहि प्रगट कीन्ह पाषंड।'*** भाव कि अभीतक एक हनुमान्‌जीको ही मैं बल और बुद्धिसे न जीत सका था और अब तो अङ्गदादि और भी महाबली वीर आ गये, सबसे कैसे लड़ूँगा। मैं अकेला और ये सब मेरे समान बलवान् हैं, यह विचारकर माया रची। यथा—***'मैं अकेल कपि भालु बहु माया करउँ अपार॥'*** (८८)

अंतर्धान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥ १॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते॥ २॥

अर्थ—क्षणभरके लिये वह अदृश्य हो गया। फिर उस दुष्टने अनेक रूप प्रकट किये॥ १॥ श्रीरघुनाथजीकी सेनामें जहाँ जितने रीछ-बन्दर थे, वहाँ उतने ही रावण प्रकट हो गये (अर्थात् एक-एक योद्धाके लिये एक-एक)॥ २॥

नोट—१ ***'अंतर्धान भएउ छन एका'*** इति। अन्तर्धान होनेका भाव कि जिसमें कोई यह न जान सके कि असली रावण कौन है। वा, अन्तर्धान हुए बिना यह माया न रच सकता था, अतः अन्तर्धान हुआ।

नोट—२ रावणको ब्रह्माका वरदान था कि जब जो और जितने रूप चाहे, उतने रूप हो सकता था, यथा—'**वितरामीह ते सौम्य वरं चान्यं दुरासदम्॥ छन्दतस्तव रूपं च मनसा यद्यथेप्सितम्। एवं पितामहोक्तं**

* राम पचारे बीर तब। † बिलोकि—(का०)।

च दशग्रीवस्य रक्षसः॥' (वाल्मी० ७। १०। २४-२५) अर्थात् पितामह ब्रह्माजीने दशग्रीवसे कहा कि हम तुमको और भी एक वर यह देते हैं कि तुम ईप्सित रूप धारण कर सकोगे।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा*॥ ३॥
भागे बानर† धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमनु रघुबीरा॥ ४॥

अर्थ—वानरोंने असंख्य रावण देखे। सब रीछ और वानर जहाँ-तहाँ भगे॥ ३॥ वानर धीरज नहीं धरते हैं। हे लक्ष्मणजी! रक्षा कीजिये! हे रघुवीरजी! रक्षा कीजिये! ऐसा पुकारते भागे जा रहे हैं॥ ४॥

नोट—१ पहले 'वानर-समूह' का एक साथ देखना कहा—*'देखे कपिन्ह.........'*। इससे बहुवचन पद दिया। फिर प्रत्येक वानर और रीछका, जो जहाँ पाता है, तहाँ अलग-अलग सबका भागना कहा। अतः *'भजे भालु अरु कीसा'* कहा। फिर दूसरी बार *'भागे बानर'* बहुवचन पद दिया। वानर दीपदेहरी न्यायसे *'भागे'* और *'धरहिं'* दोनोंके साथ है; यहाँ सभीका अधीर होना, सभीका *'त्राहि त्राहि.........'* पुकारते भागना सूचित किया। इसीसे बहुवचन पद दिया और पुनः *'भागे'* कहा।

नोट—२ वानर अमित हैं। इसीसे रावणने अमित रूप धारण किये। जिसमें एक-एक वानरके लिये कम-से-कम एक-एक तो हो जाय।

नोट—३ *'त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा'* इति। श्रीराम-लक्ष्मणकी शरण गये; क्योंकि पूर्व अभी-अभी हनुमान्‌जीको भी संकटमें देख चुके हैं, इससे समझते हैं कि और कोई रक्षा नहीं कर सकता।

दहँ दिसि धावहिं कोटिन्ह रावन‡। गर्जहिं घोर कठोर भयावन॥ ५॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई॥ ६॥

अर्थ—दसों दिशाओंमें करोड़ों रावण दौड़ते हैं और घोर, कठोर, भयङ्कर गर्जन करते हैं॥ ५॥ सब देवता डरकर (परस्पर यह कहते) भाग चले—'अरे भाई! अब जयकी आशा छोड़ो'॥ ६॥

रा० प्र०—१ दस दिशिमें नीचेकी दिशा भी आ गयी। पातालकी ओर, रथादिके नीचे या विवर-सिंधुसे रावणोंका प्रकट हो दौड़ना जनाया। २—सुरोंका डरना कहकर जनाया कि जब ये ही डर गये तब औरोंकी कथा क्या कहनी।

सब सुर जिते एक दसकंधर। अब बहु भए तकहु गिरि कंदर॥ ७॥
रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥ ८॥

शब्दार्थ—**तकना**=शरण वा आश्रय लेना, यथा—*'देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा।'*

अर्थ—एक ही दशकंधरने तो सभी देवताओंको जीत लिया था और अब तो बहुत हो गये हैं, इससे अब तो पर्वत-कन्दराओंकी शरण लेना चाहिये॥ ७॥ ब्रह्मा, शिव और ज्ञानी मुनि जिन-जिनने प्रभुकी महिमा कुछ थोड़ी-बहुत भी जानी है, वे ही वहाँ रह गये॥ ८॥

नोट—१ *'तकहु गिरि कंदर।'* भाव कि जब एक ही रावण था तब भी कोई और उपाय बचनेका न था, यही एक उपाय था। यथा—*'रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा॥ दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए॥'* (१। १८२) इससे वही उपाय अब भी करनेको कहते हैं।

नोट—२ *'जिन्ह-जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी।'* (क) *'प्रभु'* पदसे जनाया कि वे सामर्थ जानते हैं। जैसा जयन्त और खरादिके प्रसङ्गमें देखा है। (ख) ब्रह्माजी, शिवजी, अगस्त्यादि महर्षि महिमा जानते हैं, पर ये भी कुछ ही जानते हैं, पूर्ण नहीं। यथा—*'बिधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहिं रघुबीर प्रभाऊ॥'* (१। ३२१। ६), *'तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी॥'* (३। १३। ५; श्रीअगस्त्यजी), *'महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥.........तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥ तिमि*

---

* भागे भालु बिकट भट कीसा। † चले बलीमुख—(का०)। ‡ दस दिसि कोटिन्ह धावहिं रावन।—(का०)।

रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥' (९१) पुनः, '***जिन्ह जिन्ह***' का भाव कि सब नहीं जानते थे, कुछ ही जानते थे। (घ) ***महिमा,*** यथा—'***प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई।***' (११३। ४)

नोट—३ (क)—पहले कहा कि '***डरे सकल सुर चले पराई***' इससे समझा जाता कि ब्रह्मा, शिव आदि देवता भी भाग गये; क्योंकि ये सब साथ आये थे। यथा—'***सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढ़े बिमाना॥ हमहुँ उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरंगा॥***' (८०। १-२) इसलिये समुदायको कहकर फिर इनको पृथक् कर दिया। पुनः, (ख)—सिद्ध मुनि भी आये थे। '***सुर चले पराई***' से जाना जाता कि मुनि नहीं भागे। अतः उसे यहाँ स्पष्ट किया कि वे भी भागे, केवल वे ज्ञानी मुनि रह गये जो महिमा जानते थे। पुनः, (ग) भागे लगभग सभी देवता, रहे कोई दो-चार ही, इससे प्रथम '***सकल सुर**.........*' कहकर तब जो रह गये, उनको कहा। भागनेवाले इतने थे कि उनको गिना न सकते थे, जो रहे, वे इतने थोड़े थे कि उन्हें गिन सकते हैं। (घ) पुनः, '***बिरंचि संभु***' के साथ '***मुनि ज्ञानी***' का भाव कि ऐसे-ऐसे जो ज्ञानी थे, जैसे शिव और ब्रह्मा जिनके सत्सङ्गको शिवादि भी जाया करते थे।

छं०—जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रन बाँकुरे।
मर्दहिं दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भू भट अंकुरे॥

अर्थ—जो प्रभुका प्रताप जानते थे, वे निडर (वहीं बने) रहे। वानरोंने शत्रु-(माया-रावण-रूपों-) को सच्चा ही मान लिया। समस्त वानर-भालु विचलित हो चल दिये और भयसे विकल सभी पुकारते हैं कि 'हे कृपालु! रक्षा कीजिये।' अत्यन्त बली रणबाँकुरे हनुमान्‌जी, अङ्गदजी, नील और नल कपटरूपी भूमिसे अङ्कुरके समान उपजे हुए करोड़ों-करोड़ों भट-रावणोंसे लड़ते और उनको मर्दन करते हैं। फिर भी और भी माया-रावण निकलते ही आते थे।

नोट—१ प्रथम कह आये हैं कि '***भागे भालु बिकट भट कीसा***' इससे संदेह होता है कि सभी भागे। उसके निवारणार्थ कहते हैं कि सब नहीं भागे, हनुमानादि जो प्रभुका प्रताप जानते हैं, वे ही रणभूमिमें स्थिर रहे और सब भाग चले। इसीसे यहाँ फिर वानरोंको कहा।

नोट—२ '***कपट भू भट अंकुरे***' इति। मायाके रावणोंको अङ्कुकी उपमा देनेका भाव कि—(क) बीज भूमिमें पड़नेपर अङ्कुर शीघ्र निकल आता है, वैसे ही रावणकी मायासे इतने रावण उत्पन्न होते देर न लगी। (ख) अँखुए बहुत कोमल होते हैं, बड़ी जल्दी और बिना परिश्रम वे उखाड़ फेंके जा सकते हैं, जराहीमें वे नष्ट हो सकते हैं; वैसे ही माया-रावण देखनेमात्रके थे, इनमें कुछ अधिक बल न था, इनके मर्दनमें कुछ परिश्रम उनको न हुआ।

वि० त्रि०—एक रावण तो किसीका मारा मरता ही नहीं, सो हनुमान्, अङ्गद, नील, नल करोड़ों रावणोंका मर्दन कैसे करते थे? भाव यह कि वे सब सिनिमाके रावण थे, देखनेमात्रके लिये थे, वहाँ कुछ था नहीं, अतः, ये लोग अपने समझमें उनका मर्दन करते थे; पर वे मायासे उत्पन्न थे, अतः मर्दन करते-ही-करते दूसरेका अङ्कुर निकल पड़ता था। अर्थात् वहींसे दूसरे रावण पैदा हो जाते थे।

दो०—सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारंग* एक सर हते सकल दससीस॥ ९५॥

अर्थ—वानर और देवताओंको विकल देख कोसलपति श्रीरामचन्द्रजी हँसे और शार्ङ्गधनुषपर एक बाण सजकर समस्त मायाके रावणोंको मारकर नष्ट कर डाला॥ ९५॥

---

* बिसिखासन—(का०)।

नोट—*'हँस्यो कोसलाधीस'* इति।—पुनः यह विचारकर हँसे कि (क) ये देवतालोग मेरे दुःखको हरण करनेके लिये कपि हुए, किंतु इस समय ये दोनों तन-(देवतन और वानरतन-) से व्याकुल हैं; क्योंकि सब दुष्ट रावणके फन्देमें पड़े हैं, मेरी सहायता क्या करेंगे? (मा० म०) (ख) देवता दिव्य और स्वाभाविक सर्वज्ञ होकर भी मायाको सत्य मानते हैं। (रा० प्र०) अथवा हँसकर अपनी योगमायाको राक्षसी मायाका विनाश करनेको भेजा। हास्य आपकी माया है ही। (प० प० प्र०)

गौड़जी—देवता दो प्रकारके माने जाते हैं, ईश्वरकोटि और जीवकोटि। ईश्वरकोटिमें पञ्चदेव हैं, जिनकी उपासना की जाती है। इन्होंने सर्वज्ञता और त्रिकालज्ञताकी शक्तियोंका स्वेच्छासे त्याग किया है। क्योंकि इनके त्रिकालज्ञ और सर्वज्ञ होनेसे सृष्टिकी स्वाभाविक गतिमें भयङ्कर बाधा उत्पन्न होती है। शेष देवयोनिके सभी प्राणी मनुष्यादि योनियोंके सभी प्राणियोंसे साधारणतया अधिक ज्ञान रखनेवाले होते हैं। उन्होंने सर्वज्ञता और त्रिकालज्ञताका त्याग नहीं किया है, वरन् मायावश होकर वे अल्पज्ञ हैं। त्रिकालज्ञता और सर्वज्ञता अपेक्षाकृत अधिक मात्रामें ऋषियोंमें तपोबलसे, योगियोंमें योगबलसे और भक्तोंमें भगवत्कृपासे पायी जाती हैं। यह देवताओंकी अपेक्षा अधिक हो सकती हैं। परन्तु ईश्वरकोटिकी इच्छित सर्वज्ञता और त्रिकालज्ञतासे बढ़कर नहीं हो सकतीं। ईश्वरकोटिके देवता भी जब स्थूल शरीर धारण करते हैं, तब स्वेच्छासे उस शरीरके अनुकूल अल्पज्ञता भी धारण कर लेते हैं, वे बरबस अपने स्वरूपको भूल जाते हैं और मायाका बन्धन अपने चारों ओर जकड़ लेते हैं। परन्तु सूक्ष्म शरीरमें स्थूलकी अपेक्षा स्वभावसे ही उनकी सभी शक्तियाँ बढ़ी होती हैं। अवतारोंमें साधारणतया इसी प्रकार मर्यादाकी रक्षा होती रहती है। प्रस्तुत प्रसङ्गमें सुरोंका घबराना स्वाभाविक है क्योंकि वे स्वभावसे अल्पज्ञ हैं, सर्वज्ञ नहीं।

पं० विजयानन्द त्रिपाठी—*'हते सकल दससीस'* इति। माया बाणसे कट गयी, अर्थात् सरकारने वह यन्त्र ही तोड़ दिया, जहाँसे रोशनी निकलकर रणाङ्गणभरमें रावण-ही-रावण दिखलाती थी। सिनेमामें जो माया हमलोग देखते हैं, उससे बड़ी माया रावणकी थी। वह चाहा हुआ दृश्य दिनदहाड़े खुले मैदान बिना किसी पर्देके रणाङ्गणमें दिखला देता था।

प्रभु छन महँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहिं तम फाटी॥ १॥
रावनु एक देखि सुर हरषे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरषे॥ २॥

शब्दार्थ—**फटना**=किसी पदार्थका बीचसे कटकर छिन्न-भिन्न हो जाना। नष्ट होना।

अर्थ—प्रभुने क्षणभरमें सब माया काट डाली जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है॥ १॥ अब रावण एक (रह गया यह) देखकर देवता प्रसन्न हुए और लौटकर प्रभुपर बहुत फूल बरसाये॥ २॥

नोट—१ *'जिमि रबि उए जाहिं तम फाटी।'* (क) भाव कि बहुत शीघ्र और बिना परिश्रम मायाका नाश बाणसे कर दिया। सूर्यको परिश्रम नहीं करना पड़ता, उनके उदयमात्रसे ब्रह्माण्डका अन्धकार दूर हो जाता है, यथा—*'उदय तासु त्रिभुवन तम भागा।'* (१। २५६) पुनः, सूर्य एक, वैसे ही बाण एक। (ख) यहाँ रामबाण रवि, बाणका चलना रवि-उदय, मायाके अमित रावण तमबरुथ और मायाका कटना तमका फटना है। यथा—*'रामबान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधानकी॥'* (५। १६। २)

नोट—२ (क) *'सुर हरषे फिरे'* इति। जबतक रावण एक ही था, तबतक देवता रण देखते रहे। जब बहुत हुए तब भगे थे। अब फिर एक रह गया, तब फिरे। (ख) *'सुमन बहु बरसे'* से कृतज्ञता, आनन्द और सेवा सूचित की।

नोट—३ यहाँ देवताओंका हर्ष और लौटना पहले कहा तब वानरोंका; कारण कि देवता आकाशमें होनेसे सब देख सकते थे कि माया कट गयी। अतः इन्होंने मायाका नाश प्रथम देखा। वानर पृथ्वीपर इधर-उधर भगे थे, इससे वे न देख सकते थे। रघुनाथजीके लौटानेपर इन्होंने देखा कि मायानिवृत्ति हुई, तब ये लौटे।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥ ३॥
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥ ४॥

शब्दार्थ—**तरल**=चञ्चलतापूर्वक, शीघ्रतासे। **तमकि**=तड़पकर, क्रोधकर।

अर्थ—भुजा उठाकर श्रीरघुनाथजीने वानरोंको लौटाया। तब वे एक-दूसरेको पुकार-पुकारकर लौटे॥ ३॥ प्रभुका बल पाकर भालु और वानर दौड़े और शीघ्र कोध करके रणभूमिमें आये॥ ४॥

नोट—१ (क) *'भुज उठाइ'* इति। दूरसे लोगोंको बुलानेको आश्वासन करनेमें एवं अभय देनेमें, भुजा उठाकर संकेत करनेकी रीति है। पुनः, *'भुजा उठाना'* प्रतिज्ञा भी सूचित करता है, यथा—*'भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी। राम बिमुख त्राता नहिं कोपी'*, *'चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहउँ दोउ भुजा उठाई॥'*, *'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।'* भाव कि कोई भय नहीं, हम सत्य कहते हैं, तुम लौट आओ, डरो मत, हम तुम्हारी रक्षा करेंगे। (ख) भुजा उठाकर सबको पुकारनेसे गम्भीरतामें दोष आता है। इसीसे हाथ उठाकर पुकारना नहीं कहा। भुजा उठाना आदि संकेत सेनामें किये जाते हैं, उसीसे सेनाको समझाया कि धैर्य धारण करो। (पं०) (ग) भुजा उठानेका भाव कि मैं अपने भुजबलसे रावणको मारूँगा। अथवा, अपनी भुजाका बल उनको दिया। इत्यादि। (मा० म०)

नोट—२ प्रभुने पुकारा नहीं तो वे फिरे कैसे? इसका समाधान दूसरे चरणमें है—*'फिरे एक एकन्ह तब टेरे।'* अर्थात् जो निकट थे, उन्होंने आँखों देखा कि माया निवृत्त हो गयी, प्रभुको भुजा उठाये लौटनेका संकेत भी करते देखा, तब उन्होंने पीछेवालोंको पुकारा और उन्होंने अपने पीछेवालोंको इत्यादि। इस तरह सबको सूचना पहुँच गयी।

अस्तुति करत देवतन्हि देखे*। भएउँ एक मैं इन्ह के लेखे॥ ५॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल॥ ६॥

शब्दार्थ—**मरायल**=पिटा हुआ, लतमरुआ। **धायल**=धावा। ☞'धायल' भोजपुरी बोली है। गुसाईंजीने इस बोलीका प्रयोग बहुत कम किया है। मानसमें केवल यहीं है और विनयमें *'हमहिं दिहल जड़ कुटिल करमचंद मंद मोल बिनु डोला रे'* में है।

अर्थ—देवताओंको प्रभुकी स्तुति करते देखकर रावण मनमें क्रोधित हुआ कि इनकी समझमें भी मैं एक हो गया। (भाव कि इनके लिये तो मैं अकेला ही बहुत हूँ तब भी मुझे अकेले देख ये प्रसन्न हो रहे हैं। यह सोच वह उनसे बोला)॥ ५॥ अरे मूर्खो! तुम तो सदा ही मुझसे पिटते आये हो, ऐसा कहकर कोप करके वह आकाशकी ओर दौड़ा॥ ६॥

नोट—१ *'अस्तुति करत देवतन्हि देखे।'* (क)—इनसे जनाया कि फूल बरसानेके साथ देवताओंने स्तुति भी की थी। स्तुति, यथा—*'जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार।'* (८५), *'जय जय प्रभु गुन ज्ञान बल धाम हरन महिभार।'* (८५; पाठान्तर), *'बरषि सुमन दुंदभी बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥ जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा॥ अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए॥'* (७६। ३-४)

(ख) यहाँ प्रथम स्तुति है जो रावणके सामने देवताओंने की। इसीसे उसे क्रोध हुआ। स्तुति सुनी तब देखा कि देवता स्तुति कर रहे हैं। इसीसे स्तुति करना प्रथम कहा।

नोट—२ रणभूमिको छोड़ उनपर जा दौड़नेका भाव कि इन्हीं सबने हमारे मारनेका उपाय रचा, सब उपद्रवके कारण ये ही हैं। मैं तो मरूँगा ही, पर इनको इनके सहायकोंके सामने मारकर मैं अपना हौसला तो पूर्ण कर लूँ। पुनः, भाव कि वानरदलसे पहले ही संकोचको प्राप्त हुआ था तब माया रची थी, वह भी न चली और अब वानरकटक फिर आ पहुँचा, यह देख देवताओंको मारनेके मिष उनसे अलग हुआ।

---

* करत प्रसंसा सुर तेहि देषे—(का०)।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे॥ ७॥
देखि बिकल सुर अङ्गद धायो*। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो॥ ८॥

अर्थ—देवता हाहाकार करते हुए भगे। (वह बोला) अरे दुष्टो! तुम मेरे सम्मुखसे कहाँ जा सकोगे॥ ७॥ देवताओंको व्याकुल देख अङ्गद दौड़े और उछलकर उसका पैर पकड़कर उसे पृथ्वीपर गिरा दिया॥ ८॥

नोट—१ इन्द्र देवराज है। उसे देवताओंकी रक्षा करनी चाहिये। अङ्गद इन्द्रका पौत्र है, अतः ये रक्षाके लिये दौड़े। दूसरे, अङ्गदने रावणसे चलते समय जो कहा था कि ***'हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहिं का करउँ बड़ाई॥'*** उस प्रतिज्ञाकी पूर्तिका अवसर अबतक न मिला था, यह मिला इसपर वे न चूके, सबसे पहले स्वयं कूद गये।

छंद—गहि भूमि पार्‌यो लात मार्‌यो बालिसुत प्रभु पहिं गयो।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो॥
करि दाप चाप चढ़ाइ दस संधानि सर बहु बरषई।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरषई॥

अर्थ—रावणको पकड़कर पृथ्वीपर गिराकर लात मारकर अङ्गदजी प्रभुके पास गये। रावण सँभलकर उठा और बड़े भयङ्कर-कठोर शब्दसे गर्जने लगा। क्रोध करके दसों धनुष चढ़ाकर उनपर बाण संधानकर बहुत बाण बरसाने लगा। सब योद्धाओंको घायल और डरसे व्याकुल कर दिया और अपना बल देखकर प्रसन्न हुआ।

नोट—***'प्रभु पहिं गयउ'*** यह अङ्गदजीकी जय हुई। सुरकार्यरूपी सेवा हुई, यह आपकी कृपासे, यह भी जनाया। ***'दसकंठ'*** शब्द देकर जनाया कि दसों कण्ठोंसे गर्जन किया।

दो०—तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप।
काटे बहुत बढ़े पुनि जिमि तीरथ कर पाप॥ ९६॥

अर्थ—तब श्रीरघुनाथजीने रावणके सिर, बाहु, बाण और धनुष काट दिये। वे (सिर और बाहु) फिर बहुत बढ़े जैसे तीर्थमें किये हुए पाप बढ़ते हैं॥ ९६॥

नोट—१ ***'पुनि'*** का भाव कि पूर्व भी प्रभुके काटनेपर बढ़े थे, अब फिर बढ़े।

नोट—२ अन्य स्थानोंमें किये हुए पाप तीर्थ-सेवनसे नष्ट हो जाते हैं, पर तीर्थमें आकर किये हुए पाप वज्रलेपके समान अमिट हो जाते हैं। यथा—**'अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति। तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥'** पाप करनेवालोंकी तीर्थमें पाप करनेसे पापमें अधिक प्रवृत्ति बढ़ती है। इन पापोंका विनाश तीर्थसेवनसे नहीं हो सकता। उनका फल अवश्य भोगना पड़ता है।

गौड़जी—गोस्वामीजीने यत्र-तत्र दृष्टान्तोंमें नीतिकी बड़ी महत्त्वकी उक्तियाँ कही हैं। यहाँ भी रावणके सिर कटनेपर बहुतसे सिर बढ़नेकी समता तीर्थके पापसे करते हैं। तीर्थमें किया हुआ पाप बढ़ता ही जाता है। प्रायश्चित्तसे वह मिट नहीं सकता। वाराहपुराणमें मथुरामाहात्म्यके प्रसङ्गमें कहा भी है—**'अन्यत्र हि कृतं पापं तीर्थमासाद्य गच्छति। तीर्थे तु यत्कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति॥'**

अपने पूर्वकृत पापोंके नाशके लिये ही तीर्थ जानकर मनुष्य तीर्थमें रहता है। परन्तु तीर्थमें रहते हुए भी अनेक मूर्ख ऐसे हैं जो समझते हैं कि यहाँ तो जो चाहें करें, अन्तमें मुक्त होंगे ही। **'काश्यां मरणान्मुक्तिः'**, इत्यादि प्रमाणोंके आधारपर वह अपनेको यमयातनासे निडर मानकर मनमानी करते हैं। ऐसे लोग तीर्थको धोखा देते हैं, अपनी आत्माको छलते हैं और तीर्थको पापका साधन बनाते हैं। इन धूर्तोंके लिये काशी आदि तीर्थोंका वास मुक्ति देनेवाला नहीं है। ऐसे लोगोंके सिवा जो जीविकादि सांसारिक सम्बन्धोंसे तीर्थमें आ बसते हैं, किसी तीर्थके विचारसे नहीं, वे वस्तुतः सुकर्मसे प्रेरित होकर आते हैं, ***'कवनेहुँ जनम अवध बस जोई। रामपरायन***

---

* बिकल देखि सुर अंगदु धावा, गिरावा—(का०)

फुरि सो होई॥' और तीर्थके प्रभावसे उनका सुधार हो जाता है। इनमें वे धूर्त भी आ जाते हैं, जिन्हें यह लाभ तो अवश्य होता है कि अपने वज्रलेप पापोंका फल भोगकर अन्तमें उनका सुधार हो जाता है* काशीमें मरनेसे मुक्ति तभी और इसीलिये होती है कि भगवान् शंकर तत्त्व-ज्ञानका उपदेश और राममन्त्र देते हैं, परंतु यह सौभाग्य उन्हें ही मिलता है जिनके घोर अपकर्म इस प्राप्तिमें बाधक नहीं होते। तीर्थमें आकर जो बसे उसे अपने जीवनका सुधार अवश्य ही करना कर्त्तव्य है, क्योंकि तीर्थ करना पापोंका प्रायश्चित्त है और प्रायश्चित्तका यही तात्पर्य है कि—**'अज्ञानाद्यदि वा ज्ञानात् कृत्वा कर्म विगर्हितम्। तस्माद्विमुक्तिमन्विच्छन् द्वितीयं न समाचरेत्॥'** फिर वही पाप-कर्म न करे। अतः अन्यत्र किया हुआ पाप जब तीर्थमें कटता है तब तीर्थमें किया पाप कहाँ कटेगा? तीर्थकी शक्तिके भरोसे पापमें प्रवृत्त प्राणी साथ ही तीर्थके अपराधका महापाप भी बढ़ाता जाता है। यही तीर्थापराध बढ़ना पापका बढ़ना है। इस प्रसङ्गमें तीर्थके पापके बढ़नेका तात्पर्य यही है। शब्दकल्पद्रुममें पुराणोंके आधारपर २६४ तीर्थ गिनाये हैं और संक्षेपमें माहात्म्य भी दिये हैं। सभी पापनाशक और पुण्यवर्धक हैं। पुराणोंमें पापकी भयानकता और पुण्यकी रोचकता दिखानेकी पापसे निवृत्ति और पुण्यमें प्रवृत्ति उपजानेको अनेक कथाएँ दी हैं, जिनसे मूर्खोंको प्रायः उलटी सूझती है और वे तीर्थमें पाप करनेका लैसंस-सा समझने लगते हैं। गोस्वामीजीने इस छोटेसे वाक्यसे तीर्थसेवियों और तीर्थनिवासियोंको खरी चेतावनी दी है। मेरी रायमें ***'तीरथ कर पाप'*** ही पाठ समीचीन है।†

नं० प०—जहाँसे शीश और भुजा काटे गये थे, वहींसे फिर उत्पन्न हो गये, जैसे तीर्थका किया हुआ पाप हजारगुणातक बढ़ता है। अर्थात् तीर्थके किये हुए पापको पुण्यकर्मसे नष्ट करने लगिये तो वह पुण्यकर्मसे नष्ट होता जायगा, पर वह फिर जितना पहले था उतना ही होता जायगा, हजारगुणा पुण्यकर्म करनेके बाद बिलकुल नष्ट हो जायगा। उसी तरह शिवजीको सिर चढ़ानेके बदलेमें रावणके सिर कटनेपर भी बढ़ते जाते हैं, जब बदला चुकता हो जायगा, तब न बढ़ेंगे।

तीर्थका किया हुआ पाप कहनेका भाव कि अन्यत्र किया हुआ पाप एक बार पुण्यकर्म करनेसे नष्ट हो जाता है, पर तीर्थका पाप बहुत बार पुण्यकर्म करनेपर ही नष्ट होता है। अतः श्रीरघुनाथजीका बाण पुण्यकर्मके समान है और रावणके शीश और भुजा तीर्थके किये हुए पापके समान हैं। (☞ नं० प० का पाठ है ***'काटे भए बहोरि तेइ.........'*** और भा० दा० जीका पाठ है ***'काटे बहुत बढे पुनि।'*** पूर्वके दोहा ९१ में भी कटनेपर रावणके सिरोंका अपार होना कहा गया है और उसकी उपमा ***'सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार'*** यह दी गयी है। दोनोंका मिलान कीजिये।)

नोट—३ का० पं० और मा० म० का पाठ यह है—***'तब रघुपति लंकेस के सीस भुजा सर चाप। काटे भए बहोरि जिमि कर्ममूढ़के पाप॥'*** इसका भाव मयंककी टीकामें यह लिखा है कि—'जो धर्मके स्थानपर पाप करता है और अपने शारीरिक सुखके लिये पापका सञ्चय करता है, उसको कर्ममूढ़ कहते हैं। वा, जो अघरूपी कर्मको करता है और उसी क्षण दुःखमें पड़ता है उसीको कर्ममूढ़ कहते हैं। पंजाबीजी अर्थ करते हैं कि जैसे 'मूढ़ लोगोंके कर्मोंके पाप शीघ्र उत्पन्न होते हैं।' पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी ***'कर्ममूढ़'*** का भावार्थ यह कहते हैं कि जो कर्मके ज्ञानमें मूढ़ है, भजन, धर्म नहीं जानता। जो वेदादिकी फलश्रुतिसे मोहित हो सकाम कर्म करता है, यह नहीं जानता कि इनसे और भी गाढ़ बन्धनमें पड़ता है, वह ***'कर्ममूढ़'*** है।‡

---

* इस तरह वज्रलेपका भाव वह भी कहा जाता है कि बहुत कालमें जाकर मिट पाता है। जैसे रावणके सिर बढ़ते जाते थे। उनको काटकर समाप्त करनेमें भगवान्‌को समय लगा; वैसे ही तीर्थको उसके वज्रलेप पापोंके काटनेमें बहुत समय लगेगा, तब वे शुद्ध होकर मुक्ति प्राप्त कर सकेंगे।

† प्रसिद्ध महात्मावर्य्य पं० श्रीजानकीशरणजी श्रीअवधवासके सम्बन्धमें यह कहा करते थे कि यदि इस धाममें वास करनेकी नीयतसे यहाँ आवे और वास करनेके लिये, पेट भरनेके लिये कोई ऐसा कर्म करना पड़े जो उसके लिये निन्दित कहा गया है, पर जिससे दूसरेकी हानि न हो तो वह भी करके धामवास करनेवाला अन्य प्राणियोंसे अच्छा ही है; भक्तका भाव ही उसके लिये मुख्य है।

‡ रा० प्र०—कार लिखते हैं कि 'कर्ममूढ़ वे हैं, जो वेदादि-रीति निषिद्धचर्यासे करनेवाले हैं, जिनकी निन्दा वेदादिमें जो सम्भूतीको भजते हैं, वे अन्धतममें पड़ते हैं और कर्मकी नौका दृढ़ नहीं।'

सिर भुज बाढ़ि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिस भई घनेरी॥ १॥
मरत न मूढ़ कटेहु भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा॥ २॥

अर्थ—शत्रुके सिर और भुजाओंकी बढ़ती देखकर रीछ और वानरोंको बहुत क्रोध हुआ॥ १॥ अरे! यह मूर्ख सिर और भुजाओंके कटनेपर भी नहीं मरता। (ऐसा कहते हुए) भालु और वानर योद्धा कोप करके दौड़े॥ २॥

पु० रा० कु०—*'वानरभालुको रिस'* होनेका तात्पर्य कि उनको युद्ध करनेका उत्साह हुआ। शत्रुकी प्रबलता देख भय न हुआ।

बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद* बलसीला॥ ३॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरि तरु गहि कपिन्ह सो मारा॥ ४॥

अर्थ—बालिपुत्र अङ्गद, मारुतनन्दन हनुमान्‌जी, नल, नील, वानरराज सुग्रीव और द्विविद—ये सब महाबलवान् वृक्ष और पर्वतोंका प्रहार करते हैं। रावणने उन्हीं पर्वतों और वृक्षोंको पकड़कर वानरोंको मारा॥ ३-४॥

नोट—यहाँ भी बालिपुत्रको ही प्रथम रखा—९६ (८) देखिये। प्रतिज्ञासमय भी *'बालि'* का सम्बन्ध कविने दिया है, यथा—*'यह कहि चलेउ बालिनृप जायो।'* विशेष दोहा ७४ (६), ८४ (४) में देखिये।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी॥ ५॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गएऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भएऊ॥ ६॥

अर्थ—कोई वानरवीर तो शत्रुके शरीरको नखोंसे फाड़कर भाग चलते हैं और कोई लातोंसे मारकर भाग जाते हैं॥ ५॥ तब नल और नील रावणके सिरोंपर चढ़ गये और नखोंसे उसके ललाटको चीरने-फाड़ने लगे॥ ६॥

पं०—ललाट फाड़ते हैं कि इसके फटनेसे वह शीघ्र मरेगा।

पां०—नल-नीलने सुन रखा था कि रावणके ललाटमें रावणकी मृत्यु मनुष्य और वानरोंसे लिखी है। (ये देवताके अंशसे हैं। देवतासे सुना होगा कि रावणने नर-वानरको छोड़ अन्य सबसे अजेयत्व और अमरत्व माँग लिया है। अङ्गदसे रावणने स्वयं कहा है कि *'जरत बिलोकेउँ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥ नर के कर आपन बध बाँची।'* (२९। १-२) इतनी बात तो सम्भवत: अङ्गदसे भी सुनी हो) उसीके निश्चय करनेके लिये ये सिरपर चढ़े और माथेकी खाल नोचकर देखना चाहते हैं।

मा० म०—'भालको विदीर्ण करके उसकी आयुका अङ्क देखते हैं। वा, देखते हैं कि कितने दिन जियेगा। वा, अशङ्क होकर उसके भालके शुभका अङ्क देखते हैं। वा, उसके कुकर्मका अङ्क मिटाते हैं।'

रा० प्र०—नल-नीलके विषयमें रावणने कहा था कि *'सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला।'* (२३। ५) अर्थात् वे थवई हैं, वे युद्ध क्या जानें? उसीका उत्तर यहाँ ये दोनों दे रहे हैं, अपना बल-पराक्रम उसको दिखा रहे हैं।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी†। तिन्हहिं धरन कहँ भुजा पसारी॥ ७॥
गहे न जाहिं करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमलबन चरहीं॥ ८॥

अर्थ—खून देखकर उसके हृदयमें बहुत विषाद हुआ। तब उनको पकड़नेके लिये उसने हाथ फैलाये परन्तु वे हाथोंके ऊपर-ऊपर फिरते हैं, पकड़े नहीं मिलते। मानो दो भौंरे कमलवनमें विचर रहे हैं॥ ८॥

नोट—१ *'बिषाद उर भारी'* लज्जा और इनका कुछ कर न पानेसे दु:ख और क्रोध हुआ। पुन: विषादका कारण यह भी है कि रावणको सम्भ्रान्त देख वानर हर्षनाद करने लगे थे, यथा—**'नीललाघवसम्भ्रान्तं**

---

* दुबिद कपीर पनस (का०) † पाठान्तर—'रुधिर बिलोकि सकोप सुरारी।'

दृष्ट्वा रावणमाहवे॥'''''''''''''वानराणां च नादेन संरब्धो रावणस्तदा॥' (वाल्मी० ५९। ८१-८२) अर्थात् नीलके लाघव-(फुर्ती-)को देखकर और फिर वानरोंके हर्षनादसे भी रावण घबड़ा गया।

पं०—यहाँ रावणका महान् बल दिखाया कि उसे युद्धमें यह भी न मालूम हुआ कि उसके सिरपर कोई चढ़कर मस्तक विदीर्ण कर रहा है, रुधिर देखा तब जाना।

नोट—२ *'गहे न जाहिं''''''''* से नल-नीलका लाघव (फुर्तीलापन) दिखाया। इस लाघवको देख रावण भी विस्मित और सम्भ्रान्त हो गया। यथा—**'पावकात्मजमालोक्य ध्वजाग्रे समवस्थितम्। जज्वाल रावणः क्रोधात्ततो नीलो ननाद च॥ ध्वजाग्रे धनुषश्चाग्रे किरीटाग्रे च तं हरिम्। रावणोऽपि महातेजाः कपिलाघवविस्मितः॥ सम्भ्रमाविष्टहृदयो न किंचित्प्रत्यपद्यत॥'** (वाल्मी० ५९। ८०-८१, ८४) अर्थात् अग्निपुत्र नीलको अपनी ध्वजाके अग्रभागपर स्थित देख रावण क्रोधसे जल उठा और नीलने भी बड़ा नाद किया। कभी ध्वजाके अग्रभागपर, कभी धनुषपर, कभी मुकुटोंके आगे उसको देखकर महातेजस्वी रावण उनके लाघवसे ऐसा विस्मित एवं सम्भ्रान्त हो गया कि कुछ विचार न कर सका।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥ ९॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्हि मारि घायल कपि कीन्हे॥ १०॥

शब्दार्थ—**मरोरना**=ऐंठना, एक ओरसे घुमाकर दूसरी ओर फेरना।

अर्थ—फिर उसने क्रोध करके कूदकर दोनोंको पकड़ लिया; पर ज्यों ही वह उन्हें पृथ्वीपर पटकनेको हुआ त्यों ही वे उसकी भुजाओंको मरोड़कर भागे॥ ९॥ फिर उसने कोप करके दस धनुष हाथोंमें लिये और वानरोंको बाणोंसे मारकर घायल कर डाला॥ १०॥

नोट—१ यह नल-नीलकी जय हुई। रावणने पटका तब भी उन्होंने उसकी भुजाओंको मरोड़ डाला।

नोट—२ *'दस धनु कर लीन्हें।'* यह तीसरी बार बीसों भुजाओंसे रावणने बाणोंका प्रहार किया है।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥ ११॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धाएउ रनधीरा॥ १२॥

अर्थ—श्रीहनुमान्‌जी आदि सब वानरोंको मूर्च्छित करके सन्ध्याका समय प्राप्त होनेसे रावण हर्षित हुआ॥ ११॥ समस्त वीर-वानरोंको मूर्च्छित देखकर रणधीर जाम्बवन्तजी दौड़े॥ १२॥

नोट—१ ☞ *'अंगदादि'* और *'हनुमदादि'* से उन्हींके समान अति बलवान् योद्धा ही अभिप्रेत हैं—*'''''''''अंगदादि कपि साथ।'* (५१) तथा *'हनुमदादि अंगद सब धाए।'* (८४। ४) देखिये इनमें सुग्रीव, लक्ष्मण और जाम्बवन्त नहीं हैं, जब इनको कहना होता है, तब इनके नाम देते हैं—

१ *'मारुतसुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला॥ पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन॥'* (७२। ८-९), *'जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥'* (७३। ४)

२ *'सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अंगदादि कपि नाना॥', 'लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जग्य कर जाई॥', '''''''''जामवंत सुग्रीव बिभीषन॥ सेन समेत रहेहु तीनिउ जन॥'* (७४। ६, ७, १०)

३ *'अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव॥'* (६४)

तथा यहाँ—*'हनुमदादि मुरुछित करि बंदर।''''''''जामवंत धाएहु बलसीला॥'*

सुग्रीव, विभीषण और जाम्बवान्—ये तीनों राजा हैं और मन्त्री भी; इससे ये सब रघुनाथजीके प्रायः साथ ही रहते हैं।

☞ जहाँ 'कपिदल', 'कपिवीर', 'सुभट', 'वानर सकल', आदि पद आते हैं, वहाँ केवल सेनासे तात्पर्य रहता है, अङ्गद-हनुमादादिसे नहीं, जबतक कि इनके नाम स्पष्ट न दिये गये हों। यथा—

१ *'सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा॥', 'दस दस सर सब मारेसि परे*

भूमि कपि बीर।.........' (४९), *'देखि पवनसुत कटक बिहाला। क्रोधवंत जनु धाएउ काला॥'* (५०। १)

२ *'देखि निबिड़ तम दसहु दिसि कपिदल भयउ खँभार। एकहि एक न देखई जहँ तहँ करहिं पुकार॥'* (४५) *'सकल मरम रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना॥ समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए॥'* (४६। १-२)

३ *'ब्याकुल किये भालु कपि परिघ त्रिसूलन्हि मारि।'* (४१) *'.........कोउ कह कहँ अंगद हनुमंता। कहँ नल नील द्विबिद बलवंता॥'* (४२। ३)

४ *'रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचंड भुजबल दलमले। तब रघुबीर पचारे धाये कीस प्रचंड॥'* (९४)

५ *'चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे। हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत तन बाँकुरे॥'* (९५ छन्द)

नोट—२ (क) जो किंचित् हर्ष युद्धके प्रारम्भमें था—*'राम बचन सुनि बिहँसा॥'* (८९)—वह बीचमें न रह गया था। जब अन्तमें *'किये सकल भट घायल भयाकुल'* तब उसका हर्ष लिखा गया, यथा—*'देखि निजबल हरषई॥'* (९६ छन्द) प्रथम अपना बल देख हर्ष हुआ फिर प्रदोषकाल पाकर हर्ष हुआ कि अब तो स्वाभाविक ही और भी अधिक बल बढ़ेगा। विशेष *'जातुधान प्रदोष बल पाई॥'* (४५। ४) में देखिये।

☞ पुनः (ख)—नल-नीलके कारण विषाद हुआ था, अब सबको मूर्च्छित करनेपर पुनः हर्ष हुआ। पुनः, (ग) सन्ध्यासमय हो जानेसे आजकी लड़ाई समाप्त हुई, रात विश्राम करनेको मिलेगी। यथा—*'संध्या भई फिरी द्वौ बाहनी॥'* (५४। ४), *'दिन के अंत फिरी द्वौ अनी। समर भई सुभटन्ह श्रम घनी॥'* (७१। १) इससे यह विचारकर हर्ष हुआ कि एक बार फिर अपना जोर और लगा लूँ। दोहा ४५ (४) भी देखिये।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी॥ १३॥
भएउ क्रुद्ध रावनु बलवाना। गहि पद महि पटकै भट नाना॥ १४॥
देखि भालुपति निज दल घाता। कोपि माँझ उर मारेसि लाता॥ १५॥

अर्थ—जाम्बवन्तके साथके भालू पर्वत और वृक्ष धारण किये हुए उसे ललकार-ललकार करके मारने लगे॥ १३॥ जिससे बलवान् रावण क्रोधित हुआ और पैर पकड़कर अनेक योद्धाओंको पटकने लगा॥ १४॥ ऋक्षराजने अपनी सेनाको घायल देखकर कोप करके उसकी छातीमें लात मारी॥ १५॥

नोट—यहाँ *'घाता'* पद दिया और आगे कहा है कि *'मुरुछा बिगत भालु कपि सब आए प्रभु पास।'* (९७) इससे *'घात'* का यहाँ संहार या नाश अर्थ नहीं है, वरन् 'घायल' और 'अचेत' अर्थ है। यहाँ केवल रीछोंकी सेनाका युद्ध कहा।

छं०—उर लात घात प्रचंड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहे भालु बीसहु कर मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति भालुपति प्रभु पहिं गयो।
निसि जानि स्यंदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो॥

अर्थ—छातीमें लातकी बड़ी गहरी चोट लगते ही वह व्याकुल होकर रथसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। बीसों हाथोंमें रीछोंको पकड़े हुए वह ऐसा मालूम होता था मानो रात्रिमें भौंरे कमलोंमें बस रहे हैं। रावणको मूर्च्छित देखकर फिर लात मारकर जाम्बवान् प्रभुके पास गये। रात्रि जानकर सारथी उसे रथमें डालकर होशमें लानेका उपाय करने लगा।

नोट—१ *'मनहुँ कमलन्हि बसे निसि मधुकरा'* इति। भ्रमर रात्रिमें कमलके भीतर बन्द हो जाते हैं, कमल रातमें सम्पुटित हो जाता है। यहाँ रावणके हाथ कमल हैं, मुट्ठीका बँधना कमलका संकुचित होना है, काले रीछ काले भ्रमर हैं, मुट्ठीके भीतर रीछ मानो सम्पुटित कमलके भीतर भौंरे हैं। रात्रिका समय है ही।

नोट—२ *'मुरुछित बिलोकि बहोरि पद हति'* इति। मूर्च्छित होनेपर मारना यह युद्धनीतिके विरुद्ध है। जाम्बवन्तने यह अनीति क्यों की? यह शङ्का पंजाबीजीने करके उसका समाधान यों किया है कि 'अपने कटकको अत्यन्त व्याकुल देख क्रोधावेशमें उन्होंने ऐसा किया। अथवा, विचारा कि थोड़ी मूर्च्छा है फिर उठकर न हमारे पीछे पड़े और रात्रि हो रही है, इसका बल भी बढ़ जायगा। अतएव उसको अधिक मूर्च्छित करनेके लिये लात मारी।' बाबा हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि मूर्च्छा होनेपर भी यह निश्चय करनेके लिये मारा कि सत्य ही मूर्च्छित है या माया कर रहा है। इसका समाधान यह भी हो सकता है कि वह व्याकुल होकर रथसे गिर पड़ा है; पर अभी होश है इसीसे रीछोंको मुट्ठीमें दबाये है, छोड़ता नहीं है, उनको छुड़ानेके लिये फिर लात मारी और वे छूट गये, यह बात दोहेसे ध्वनित होती है।

मा० म० और बं० पा० कहते हैं कि रावण अनीति करता था अतः इनने भी अनीति की। अधर्मीके साथ अधर्म करना अधर्म नहीं है।

पं० विजयानन्द त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'शत्रुका सिर कट गया, लड़ाई समाप्त हो गयी। उसपर भी यदि वह जीता है, तब तो अब युद्धकी बात न रह गयी, अब तो उसे मारना है, चाहे जैसे वह मरे। तभी तो *'बालितनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला॥ बिटप महीधर करहिं प्रहारा।'* उस एकके मारनेके लिये इतने सुभट सिमिट गये। उसी भावसे प्रेरित होकर यहाँ जाम्बवन्तजी मूर्च्छित होनेपर भी लातसे मारते हैं, पर *'बर प्रसाद सो मरै न मारा।'*

मा० म०—सारथी लङ्कामें इस भयसे ले गया कि यहाँ यत्न हो नहीं सकता, और वानर आकर घेर न लें। अथवा, यदि यह मर गया तो वानर इसके मृतक शरीरको बहुत दुःख देंगे।

नोट—३ वाल्मीकीयमें उठा ले जानेका कारण विस्तारपूर्वक सारथीने रावणसे कहा है। वही सब कारण यहाँ समझना चाहिये। सारथीको श्रीरामजीकी उदारताका पर्याप्त प्रमाण मेघनाद, कुम्भकर्णादिके संग्राममें मिल चुका है कि वे मूर्च्छितको अपने यहाँ नहीं ले जाते, यद्यपि मेघनाद, कुम्भकर्ण और रावण तीनोंने इसके विपरीत किया है। मेघनाद और रावणने लक्ष्मणजीको उठा ले जाना चाहा था, पर वे उठ ही न सके और कुम्भकर्ण तो सुग्रीवको मूर्च्छित देख उठाकर ले ही गया था। इधरसे तो मेघनाद और कुम्भकर्ण रावणके निकट ही पहुँचा दिये गये।

☞वाल्मी० में जाम्बवान्‌द्वारा मूर्च्छित किये जानेकी चर्चा नहीं है वहाँ, रामबाणोंसे अत्यन्त मूर्च्छित होनेपर सारथी ले गया है।

दो०—मुरुछा बिगत* भालु कपि सब आए प्रभु पास।
निसिचर सकल† रावनहि घेरि रहे अति त्रास॥ ९७॥

अर्थ—मूर्च्छारहित होनेपर सब रीछ और बन्दर प्रभुके पास आये। (उधर) सब निशाचर अत्यन्त त्रस्त होकर रावणको घेरे खड़े हैं॥ ९७॥

नोट—*'घेरि रहे अति त्रास'* इति। *'अति त्रास'* इससे कि सारथीने बहुत उपाय होशमें लानेके लिये किये; पर मूर्च्छा बहुत गहरी है, चेतनता नहीं आती है, कहीं यह मर न जाय। पंजाबीजीका मत है कि मूर्च्छा देख शोकातुर हैं, इससे पास बैठे उपाय करते हैं और *'अति त्रास'* यह है कि कहीं उसे अत्यन्त मूर्च्छित सुन उठा ले जानेके लिये श्रीरामचन्द्रजी वानरोंको न भेज दें, जैसे यज्ञ-विध्वंसके लिये भेजे थे। रा० प्र० कार कहते हैं कि *'अति त्रास'* यह है कि वानर कहीं छापा न मारें। पर मेरी समझमें तो राक्षस छल-कपटका व्यवहार करते हैं, इससे उनको दूसरोंसे भी वैसा ही भय हो सकता है। नहीं तो राक्षस बराबर देखते आ रहे हैं कि वानरोंने कभी अबतक रात्रिमें चढ़ायी नहीं की और न कभी किसी निशिचर योद्धाके मरनेपर या मूर्च्छित होनेपर उसको वे उठा ले गये। वे वीर हैं, ऐसे कार्य करनेमें अपनी लघुता समझते हैं।

---

* गै मुरुछा तब। † सकल निसाचर—(का०)।

तेही निसि सीता पहिं जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥ १॥
सिर भुज बाढ़ि सुनत रिपु केरी। सीता उर भइ त्रास घनेरी॥ २॥

अर्थ—उसी रात त्रिजटाजीने श्रीसीताजीके पास जाकर सब समाचार कह सुनाया॥ १॥ शत्रुके सिरों और भुजाओंकी बढ़ती सुनकर श्रीसीताजीके मनमें बड़ी चिन्ता और डर हुआ॥ २॥

नोट—*'तेही निसि'* अर्थात् जिस रातमें मूर्च्छित रावणको सारथी लङ्कामें ले जाकर सावधान करनेका उपाय कर रहा था, उसी रातको।

पं०—*'तेही'* से यह भी सिद्ध होता है कि जिस रातको हनुमान्‌जी अशोकवनमें आये थे, उसी रातको उसका यहाँ आना हुआ था, बीचमें रातमें न आती थी, रातमें पहरा अधिक रहता था। पर आज राजाकी मूर्च्छा सुन सब व्याकुल और असावधान हैं, इससे आज इस समय वृत्तान्त सुनानेका अवसर मिला।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥ ३॥
होइहि कहा कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता॥ ४॥

अर्थ—श्रीसीताजीका मुख उदास हो गया, मनमें चिन्ता पैदा हो गयी। तब श्रीसीताजी त्रिजटासे बोलीं— ॥ ३॥ हे माता! क्यों नहीं बताती हो कि क्या होगा? संसारभरको दुःख देनेवाला रावण किस प्रकार मरेगा?॥ ४॥

नोट—१ अनिष्टकी प्राप्तिसे उदास हुईं और इष्टकी प्राप्ति न देख चिन्ता हुई कि न जाने क्या होना है? कैसे शत्रु मरेगा? यही आगे वे स्वयं कहती हैं। मिलान कीजिये—***'सोच हृदय बिधि का होनिहारा। सब सुख सुकृत सिरान हमारा॥'*** (२। ७०)

नोट—२ ***'बिस्वदुखदाता'*** का भाव कि एक-दोको ही दुःख देनेसे सब पुण्य क्षीण हो जाते हैं और वंशभरका नाश हो जाता है, यथा—***'बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे।'*** और यह तो सुर, नर, मुनि, गौ, विप्रादि सबको ही दुःख देता रहा है, तब इसकी मृत्यु नहीं होती तो और किस प्रकार होगी?

रघुपति सर सिर कटेहु न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥ ५॥
मोर अभाग जिआवत ओही। जेहि हौं हरिपदकमल बिछोही॥ ६॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजीके बाणोंसे सिर कटनेपर भी नहीं मरता। (जान पड़ता है कि) विधाता हमपर प्रतिकूल है, वही यह सब विपरीत (वा, विधि सब उलटे ही) चरित करता है॥ ५॥ मेरा दुर्भाग्य ही उसको जिला रहा है, जिसके कारण मैं हरिपदकमलसे बिछुड़ी हुई हूँ॥ ६॥

नोट—१ ***'रघुपति सर सिर कटेहु न मरई'*** का भाव कि रघुपतिके बाण अमोघ हैं, यथा—***'जिमि अमोघ रघुपति के बाना।'*** (५। १। ८) पर वे भी निष्फल हो रहे हैं।—विशेष—***'मरइ न रिपु श्रम भयेउ बिसेषा।'*** (१०१। २) में देखिये।

नोट—२ ***'केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता'***, जब इस प्रश्नपर भी त्रिजटाने उत्तर न दिया तब वे आश्चर्य और चिन्ता प्रकट करके स्वयं इस अनिष्टका समाधान करती हैं कि—'रघुनाथजीका बाण तो अमोघ है, उससे भी नहीं मरता। सिर कटनेपर तो सभी मरते हैं पर यह सिर कटनेपर और वह भी रघुपतिके बाणसे नहीं मरता, यह आश्चर्यकी बात है। यह अनहोनी बात फिर क्यों हो रही है? क्या कारण है?' तब स्वयं समाधान करती हैं कि विधाता प्रतिकूल हैं, इसीसे ऐसा हो रहा है, यथा—***'बिधि बिपरीत भलाई नाहीं।'*** फिर सोचती हैं कि विधाताका क्या दोष, वह तो कर्मके फलका देनेवाला है, यथा—***'कठिन करम गति जान बिधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता॥'*** (२। २८२। ४) अतः यह हमारे ही कर्मोंका फल देनेवाला है। हमारा दुर्भाग्य उदय हुआ है, इसीसे हमारा हरिपदकमलसे बिछोह हुआ और इसीसे रावण मरने नहीं पाता।

नोट—३ ***'जेहि हौं………'*** का भाव कि यदि रावण मर जाय तो मेरा वियोग छूट जायगा, इसीसे मेरा दुर्भाग्य उसे मरने नहीं देता। ***'हरिपदकमल'*** का भाव कि ये पदकमल दुःखके हरनेवाले हैं; उनसे

अलग होनेसे दुःख कैसे दूर हो सकता है? बिछोह होनेसे अपनेको अभिमानी मानती हैं।

जेहि कृत कपट कनकमृग झूठा। अजहुँ सो दैव मोहि पर रूठा॥७॥

जेहि बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए॥८॥

अर्थ—जिसने मायाका मिथ्या कनक-मृग बनाया था, वही दैव (भाग्य) अब भी मुझपर रुष्ट है॥ ७॥ जिस विधाताने मुझे असह्य (न सहे जाने योग्य) दुःख सहाये और लक्ष्मणजीको कड़वे वचन कहलाये॥ ८॥

बं० पा०—१ *'कनकमृग झूठा'* क्योंकि वह मृग न था, वह तो राक्षस निकला। २—*'दुख दुसह सहाए'*—यह कि घरसे निकालकर वनवास दिया और फिर यहाँ भी आकर प्राणपतिका वियोग कराया।

नोट—*'कटु बचन।'* ये वे ही वचन हैं जो मारीचके पुकारनेपर लक्ष्मणजीको भेजनेके लिये उन्होंने कहे थे। आ० २८ (५) उन्हीं वचनोंके कारण लक्ष्मणजी वहाँसे गये और मेरा अपहरण हुआ। इसका शोक अबतक उनके हृदयमें बना है। यथा—*'कहत हित अपमान मैं कियो होत हिय सोइ सालु। रोष छमि सुधि करत कबहूँ ललित लछिमन लालु॥'* (गी० ५। ३) ☞मायासीताके मुखसे मायावाले चरितका ही निकलना कैसा सुन्दर है!

रघुपति बिरह सबिष सर भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी॥ ९ ॥

ऐसेहु दुख जो राखु मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना॥१०॥

अर्थ—श्रीरघुनाथजीके विरहरूपी भारी विषैले (विषमें बुझाये हुए, विषयुक्त) बाणोंसे ताक-ताककर कामदेवने मुझे बहुत बार (मार) मारी॥ ९॥ ऐसे भी दुःखमें जो विधाता हमारे प्राण रख रहा है (शरीरसे निकलने नहीं देता), वही उसको जिला रहा है और कोई नहीं॥ १०॥

मा० म०—यहाँ *'मार'* शब्दका अर्थ कामना है। भाव यह कि रामचन्द्रजीके वियोगसे दर्शनकी कामना जो बार-बार होती है, वही विषैले बाण हैं। वह कामना मनको विह्वल कर मारती है।

नोट—१ *'तकि तकि मार बार बहु मारी।' 'बार बहु'* यह कि जब-जब रावणने सताया, जब-जब रणमें प्रभुको कष्ट सुना, इत्यादि।

नोट—२ *'ऐसेहु दुख जो राखु..........।'* भाव कि ऐसे दुःखमें प्राण निकल जाने चाहिये।

बहु बिधि कर बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की॥११॥

कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत* मरै सुरारी॥१२॥

प्रभु† ताते उर हतै न तेही। एहि के हृदय बसति बैदेही॥१३॥

अर्थ—दयासागर श्रीरघुनाथजीका बारम्बार स्मरण करके श्रीजानकीजी बहुत प्रकारका विलाप कर रही हैं॥ ११॥ त्रिजटा बोली—हे राजकुमारी! सुनिये। देवशत्रु रावण हृदयमें बाण लगते ही मरेगा॥ १२॥ परन्तु प्रभु उसके हृदयमें बाण इससे नहीं मारते कि इसके हृदयमें वैदेही बस रही हैं॥ १३॥

प० प० प्र०—*'बहु बिधि कर बिलाप जानकी'* में १५ मात्राएँ हैं। *'करति'* लिखनेसे मात्राएँ पूर्ण हो जातीं पर ऐसा न करके *'कर'* पाठ रखनेमें भाव यह दरसाया है कि 'श्रीजानकीजीका विलाप वर्णन करनेमें कविकी मति कुण्ठित हो जाती है। विलाप सुनकर त्रिजटादि भी व्याकुल हो गयीं।' उत्तरार्धमें मात्राएँ पूर्ण रखकर जनाया कि बराबर कृपानिधानका स्मरण करनेसे अधीरता न रह गयी। ☞इससे यह भी जनाया कि भगवान्‌का स्मरण बारम्बार करनेसे विलापका कारण ही नष्ट हो जाता है।

नोट—१ *'करि करि सुरति कृपानिधान की।'* (क) *'सुरति'* अर्थात् मिलनि, बोलनि, हँसनि, प्रीति इत्यादि समझकर (बं० पा०)। यथा—*'रामबिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥'* (उ० १९। ४; अङ्गदकी दशा) (ख) *'कृपानिधान'* का भाव कि वे सबपर कृपालु हैं, हमपर भी दया

* लागे। † ताते प्रभु—(का०)।

करें। (पं०) यथा—*'आरज सुवन के तो दया दुवनहुँ पर मोहिं सोच मोतें सब बिधि नसानि। आपनी भलाई भलो कियो नाथ सब ही को, मेरे ही दिन सब बिसरी बानि॥'* (गी० ५। ७) कृपाओंका स्मरण करती हैं जैसे कि जयन्त, शूर्पणखा आदिसे कृपा करके रक्षा की थी। इत्यादि। (ग) *'राजकुमारी'* का भाव कि राजा धीर होते हैं, तुम राजकुमारी हो, तुम अधीर क्यों होती हो, तुम भी धीरज धरो।

नोट—२ श्रीसीताजीने दो प्रश्न किये—*'होइहि कहा'* और *'केहि बिधि मरिहि।'* त्रिजटाने संक्षेपसे दोनोंका उत्तर एक ही चरणमें देकर पहले सावधान किया। श्रीसीताजी बहुत दुःखी थीं, इससे प्रथम रावणका मरण कहा, जिसमें यह सुनकर कुछ धीरज हो जाय। साथ ही यह भी कह दिया कि हृदयमें बाण लगनेपर मरेगा—यह *'केहि बिधि'* का उत्तर है और वह *'होइहि कहा'* का।

नोट—३ *'प्रभु'* का भाव कि वे समर्थ हैं जब चाहें तभी उसे मार सकते हैं, पर ऐसा नहीं करते, इसमें कुछ कारण है, वह यह है। *'उर सर लागत मरै'*, इसपर यह शङ्का हुई कि तो फिर वहाँ शर कैसे और कब मारेंगे, इसके निवारणार्थ वह कहती है कि *'प्रभु ताते………'* इत्यादि।

पं० वि० त्रिपाठीजी—*'प्रभु ताते उर……बैदेही'* इति। ध्यान देनेकी बात है कि वैदेही रावणपर अति ही रुष्ट हैं, उसकी मृत्यु चाह रही हैं, परन्तु वह वैदेहीके ध्यानमें अति दृढ़ है। अतः मारना चाहते हुए भी सरकार उसके हृदयमें बाण नहीं मारते। इससे अधिक उपासनाका महत्त्व क्या दिखलाया जा सकता है। उपास्य इतना रुष्ट है कि उपासकका मरण चाहता है, पर उपासक उपास्यके ध्यानको हृदयसे पकड़े हुए है। अतः उपास्य लाचार है, कुछ कर नहीं सकता। ईश्वर भी उसको मारनेके लिये उसके ध्यान भङ्ग करनेका उपाय करते हैं। ध्यान अक्षुण्ण रहनेपर उनकी भी एक नहीं चलती। भक्तिवश्य भगवान्‌की जय!!!

छं०—एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुअन अनेक लागत बान सब कर नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुंदरि तजहि संसय महा॥

अर्थ—इसके हृदयमें जानकीजीका निवास है, जानकीजीके हृदयमें मेरा निवास है और मेरे उदरमें अनेकों भुवन हैं। (अतः रावणके हृदयमें) बाण लगते ही सब (भुवनोंका) नाश हो जायगा। ये वचन सुनकर श्रीसीताजीके मनमें अत्यन्त हर्ष और खेद हुआ, यह देखकर त्रिजटा फिर बोली कि हे सुन्दरी! सुनिये और महासन्देह छोड़िये, शत्रु अब इस प्रकार मरेगा—

नोट—१ रावणके हृदयमें जानकीजी, जानकीजीके हृदयमें रामजी और रामजीके हृदयमें अगणित लोक। इस तरह रावणके हृदयमें (सीताजीके होनेसे) वे समस्त लोक हुए, यह 'एकावली अलङ्कार' है।

नोट—२ *'सुनि बचन हरष बिषाद मन अति।' 'जानकी उर मम बास है'* यह सुन *'अति हर्ष'* हुआ। ऐसे ही हनुमान्‌जीसे *'तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा॥ सो मन रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीतिरस एतनेहि माहीं॥'*, यह प्रभुका संदेश सुनते ही *'मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही'* यह दशा हो गयी थी। और, विषाद इससे कि जब बाण हृदयमें मारेंगे नहीं तब वह मरेगा कैसे? अति हर्ष और अति विषाद साथ-ही-साथ होनेसे यहाँ *'तन सुधि'* का विस्मरण नहीं हुआ।

नोट—३ *'पुनि त्रिजटा कहा'* से जनाया कि 'सब कर नास है' इतना कहकर वह चुप हो गयी थी। अब *'अति बिषाद'* देख फिर बोली। *'संसय महा'*—संशय रावणवध न होनेका, क्योंकि *'अति बिषाद'* इसीसे हुआ था।

☞इस भावका समानार्थक श्लोक यह है—

'यो रामो न जघान वक्षसि रणे तं रावणं सायकैः स श्रेयो विदधातु वस्त्रिभुवनव्यापारचिन्तापरः। हृद्यस्य प्रतिवासरं वसति सा तस्यास्त्वहं राघवो मय्यास्ते भुवनावली विलसिता द्वीपैः समं सप्तभिः॥' (हनु० १४। २६)

अर्थात् जो रामचन्द्रजी उस रावणके हृदयमें बाण इससे नहीं मारते कि इसके हृदयमें प्रतिदिन वह जानकीजी निवास करती हैं और उनके हृदयमें मैं वास करता हूँ एवं मेरे हृदयमें सप्तद्वीपोंसहित ब्रह्माण्डसमूह विलास करते हैं—वे त्रैलोक्य व्यापारकी चिन्तामें तत्पर रघुनाथजी तुम्हारा कल्याण करें।

दो०—काटत सिर होइहि बिकल छुटि जाइहि तव ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ मरिहहिं रामु सुजान॥ ९८॥

अर्थ—सिरोंके काटनेसे वह व्याकुल हो जायगा, हृदयसे तुम्हारा ध्यान छूट जायगा, तब सुजान श्रीरामजी रावणके हृदयमें बाण मारेंगे॥ ९८॥

नोट—*'सुजान'*, यथा—*'जान सिरोमनि कोसलराऊ'* वे जानते हैं कि किस अवसरमें क्या करना चाहिये। शीघ्रता करनेसे कार्य बिगड़ जायगा। स्वार्थ भी उनके समान कोई नहीं जानता। पुनः, *'सुजान'* से जनाया कि उन्हें बतानेकी जरूरत नहीं है कि हृदयमें बाण मारें। वे स्वयं सर्वज्ञ हैं, केवल देख रहे हैं कि कब ध्यान छूटे।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई॥ १॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही॥ २॥

अर्थ—ऐसा कहकर बहुत तरह समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी॥ १॥ श्रीरामचन्द्रजीका स्वभाव याद कर वैदेहीजीको विरहकी अत्यन्त पीड़ा उत्पन्न हुई॥ २॥

शीला—त्रिजटाके प्रथम वचनसे यह तो निश्चय हो गया कि रावणका मरण इससे नहीं होता कि उसका ध्यान नहीं छूटता। और ध्यान छूटनेका फिर उससे उपाय भी निश्चय हुआ। पर यह समझकर दुःख हो रहा है कि श्रीरामजीको तो बाण चलाने और सिर काटनेभरका ही अख्तियार है, ध्यान छूटे वा न छूटे, या न जाने कबतक न छूटे। इस सन्देहके निवारणार्थ *'बहुत भाँति'* समझाया।

नोट—१ *'बहुत भाँति'*—यह कि—(१) रघुनाथजी परब्रह्म परमात्मा हैं; वे क्षणभरमें उसे मार डालें, पर वे ब्रह्मा और शिवजीके वचनोंको सत्य करनेके लिये नर-नाट्य कर रहे हैं, जिससे वह यही जाने कि ये ईश्वर नहीं हैं, मनुष्य ही हैं। (२) रावणका मृत्यु-समय अभी नहीं आया है, उस समयतक टाल रहे हैं और साथ-साथ निज-जनकी परीक्षा ले रहे हैं कि देखें किस-किसका हमपर पूर्ण विश्वास है कि ये अवश्य रावणवध करेंगे। (३) शिवजीको सिर चढ़ाये हैं, उसका फल वरदानानुसार उसे भुगता रहे हैं और शिवजीकी उदारता सबको दिखा रहे हैं। (४) १४ वर्षका वनवास है। उसे प्रभु समरमें बिता रहे हैं, जब दिन पूरे होंगे तब तुरन्त उसे मारकर विभीषणको राज्य देकर, तुमको साथ लेकर भरतविरहसे व्याकुल वे पुष्पकपर सवार हो अवध पहुँचेंगे। (५) प्रभुके चरित विधि-हरि-हरको भी अगम हैं। मैं जो कुछ कह रही हूँ, वह तुम्हारी कृपासे। (६) श्रीरामजी 'प्रणत कुटुम्बपाल हैं, अतएव विभीषणके भाईको तब मारेंगे जब विभीषणसे कहला लेंगे। जब नर-नाट्यसे प्रभु अपनेसे श्रम दिखावेंगे तब विभीषण कहेंगे और फिर प्रभु उसे तुरन्त मारेंगे। इत्यादि।

इस प्रकार रावण-वध प्रभुके ही अधीन जब दिखाया तब उन्हें सन्तोष हुआ और पूर्व जो वचन कहे थे उनसे मृत्यु रावणाधीन समझ पड़ती थी, इससे विषाद बना रहा था।

मा० म०—बहुत भाँति समझाया कि थोड़े धैर्यसे बड़ा काम निकलता है। इसलिये तुम धीरज धरो, जिस हेतु रघुनाथजी वनमें आये हैं, उसे वे अवश्य पूरा करेंगे। अब कल ही वह मारा जायगा।

नोट—२ 'राम सुभाव', *'अति कोमल रघुबीर सुभाऊ।'* (५। ५७। ५)

(२) *'सुनहु सखा निज कहउँ सुभाऊ। जान भुसुंडि संभु गिरिजाऊ॥ जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥ तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥'* (५। ४८) इत्यादि।

(३) *'मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ॥ मो पर कृपा सनेह बिसेषी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी॥'* (२। २६०। ५-६)

(४) *'देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ॥'* (अ० २६७। ८)

(५) *'सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहि न काऊ॥ जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥'* (अ० २१८। ५-६)

(६) *'अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न देखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ॥'* (उ० १२४। ४)

मा० म०—स्वभाव यह कि मेरे बिना वे मुझसे भी अधिक दुःखी होंगे। यथा—*'तव दुख दुखी सुकृपानिकेता।'* (५। १४। ९), *'जन के दुख रघुनाथ दुखी अति सहज प्रकृति करुनानिधानकी। तव बियोग संभव दारुन दुख········।'* (गी० ५। ११)[ये दोनों वचन हनुमान्‌जीके हैं, जो उन्होंने श्रीजानकीजीसे कहे हैं]; इसीसे अधिक व्यथा हुई और उत्कण्ठा लगी है कि कब उनसे फिर मिलकर उनको सुखी करूँगी।

पं०—प्रभुका कृपालु स्वभाव समझकर डरती हैं कि रावणपर कहीं दया न करें। वा, प्रभुका अपने ऊपर प्रेम है, यह स्वभाव स्मरण करती हैं।

निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति* न राती॥ ३॥
करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी॥ ४॥

अर्थ—श्रीसीताजी रात्रि और चन्द्रमाकी बहुत तरहसे निन्दा कर रही हैं कि यह रात युगके समान बड़ी हो गयी, व्यतीत ही नहीं होती है॥ ३॥ श्रीजानकीजी रामविरहसे दुःखी होकर मन-ही-मन भारी विलाप करती हैं॥ ४॥

नोट—१ *'निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती'* इति। निशि और चन्द्रमा दोनोंकी निन्दा करती हैं। रात्रिकी निन्दा कि काटे नहीं कटती। चन्द्रमाको देखकर विरहिनियोंको अधिक दुःख होता है, यथा—*'घटै बढ़ै बिरहिनि दुखदाई।'* (१। २३८। १), *'बिष संजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवंत नर नारी॥'* (१२। १०) *'बहु भाँती'*, यथा—*'कोक सोक प्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही॥'* (१। २३८। २)

नोट—२ *'करति बिलाप मनहि मन भारी।'* इति। मनमें विलाप करती हैं; क्योंकि कोई ऐसा अधिकारी है नहीं जिससे दुखड़ा रोवें, जो दुःख कम हो जाय। यथा—*'कहेहू ते कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई॥'* (५। १५। ५) त्रिजटा एक अधिकारिणी थी, सो भी चली गयी—(प०)।

जब अति भएउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू॥ ५॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा॥ ६॥

अर्थ—जब अत्यन्त विरहसे हृदयमें अत्यन्त जलन हुई तब उनके बायें नेत्र और बाहु फड़क उठे॥ ५॥ शुभ शकुन विचारकर मनमें धैर्य धारण किया कि दयालु रघुवीर अब अवश्य मिलेंगे॥ ६॥

रा० प्र०—१ *'अति'* से पराकाष्ठाका विरह जनाया, इससे बढ़कर हो नहीं सकता; अतएव अब इसका नाश होकर सुख होगा। २—पूर्व श्रीजानकीजीने रावणकी ओर नेत्र न किये थे वरन् तृणका ओट कर लिया था, अतः नयन फड़के और जो यह प्रतिज्ञा की थी कि *'सो भुज कंठ कि तव असि घोरा।·········'* सो उसी कारण बाहु भी फड़के।

नोट—बाम अङ्ग फड़कना शकुन है, यथा—*'प्रभु पयान जाना बैदेही। फरकि बाम अँग जनु कहि देही॥'* (५। ३५। ६) यह शकुन प्रियका शीघ्र मिलाप जनाता है। यथा—*'रामसीय तन सगुन जनाये। फरकहिं मंगल अंग सुहाये॥ पुलकि सप्रेम परस्पर कहहीं। भरत आगमन सूचक अहहीं॥·········भये बहुत दिन अति अवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥'* (२। ७। ४—६), इति *'सगुन बिचारि'* धैर्य धारण किया कि प्रभु अब अवश्य मिलेंगे।

बं० पा०—*'अब मिलिहहिं कृपाल रघुबीरा।'* कृपालु हैं एवं वीर हैं, यह जानकर विश्वास हुआ कि अब रावणको शीघ्र मारकर मिलेंगे। अतः कृपालु और रघुवीर कहा।

* बिहाति—(का०, ना० प्र०), 'न राति सिराती'—(गौड़जी)।

इहाँ अर्द्ध निसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा॥ ७॥

अर्थ—इधर रावण आधी रातको जागा (होशमें आया) और अपने सारथीपर रुष्ट होने लगा॥ ७॥

नोट—१ (क) *'इहाँ सुबेल सैल रघुबीरा।'* (११। १) देखिये। (ख) *'अर्द्ध निसि………'* इति। अर्द्धनिशिमें जागना कहकर जनाया कि रावणको जाम्बवन्तकी लातसे गहरी चोट पहुँची थी। इसीसे सन्ध्यासे लेकर आधी राततक मूर्छा बनी रही।

नोट—२ *'खीझन लागा।'* भाव कि वह क्रोधयुक्त लाल नेत्र करके बोला, यथा—'**क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत्।**' (वाल्मी० १०४। १) पुनः, *'लागा'* पदसे सूचित किया कि देरतक क्रोधयुक्त वचन कहे। वाल्मी० १०४ में ८ श्लोकोंमें इसका खीझना वर्णन किया गया है। पुनः, खीझनेका कारण कि मेघनाद-कुम्भकर्णादि रणसे विमुख होकर न फिरे थे और मैं रणविमुख हुआ, जिनके आगे मैंने अभिमानके वचन कहे थे, उनको मुँह कैसे दिखाऊँगा।

सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही॥ ८॥
तेहि पद गहि बहु बिधि समुझावा। भोरु भए रथ चढ़ि पुनि धावा॥ ९॥

अर्थ —अरे शठ! तूने मुझे रणभूमिसे अलग कर दिया। अरे अधर्मी और नीच! तुझे धिक्कार है। अरे मन्दबुद्धि! तुझे धिक्कार है॥ ८॥ सारथीने पैर पकड़कर बहुत प्रकारसे समझाया*। सबेरा होनेपर उसने पुनः रथपर चढ़कर धावा किया॥ ९॥

नोट—१ *'सठ रनभूमि छड़ाइसि मोही'* इति। भाव कि—(१) रणभूमिमें पीठ देने, वहाँसे भाग जानेसे वीरकी अपकीर्ति होती है, जो मरणसे भी अधिक दुःखद है। तूने इस कार्यसे लोकमें चिरकालसे प्राप्त मेरे यश, वीर-विक्रमको नष्ट कर दिया और शत्रुके सामने मुझे कायर निश्चित किया। यथा—'**त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम्। यशोवीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः॥ शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रञ्जनीयस्य विक्रमैः। पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया॥**' अर्थात् हे अनार्य! बहुत दिनोंसे इकट्ठा किया हुआ हमारा यश, वीर्य, तेज तथा विश्वास सब तूने नाश कर दिया। क्योंकि विक्रमसे प्रसन्न करने योग्य अति विख्यात वीर, शत्रुके सामनेसे युद्धकी सदा अभिलाषा किये हुए हमको तूने बाहर लाकर कायर बना दिया। (वाल्मी० १०४। ५-६) वीरका पीठ न देकर रणमें सम्मुख मरना ही उसकी शोभा है। यथा—*'बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराई॥'* (अ० १४३। ८), *'संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥'*

(२) इन शब्दोंसे रावणका सच्चा वीर होना दिखाया है। वीरके अयोग्य काम किया, अतः 'शठ, अधम और मंदमति' कहा। अधर्मी, क्योंकि वीरधर्मके विरुद्ध कार्य किया। मन्दमति, क्योंकि यह न समझा कि सम्मुख मरनेसे वीरकी शोभा और सद्‌गतिकी प्राप्ति होती है और रणविमुख होनेसे अपकीर्ति जो जीते-जी मरण-तुल्य है। यथा—'**अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्। संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते॥ भयाद्रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम्॥**' (गीता २। ३४-३५) इत्यादि।

---

* भा० १०। ७६। २८, ३२-३३ में ऐसा ही प्रद्युम्नजीने अपने सारथीसे कहा—'लब्धसंज्ञो मुहूर्तेन कार्ष्णिः सारथिमब्रवीत्। अहो असाध्विदं सूत यद् रणान्मेऽपसर्पणम्॥ धर्मं विजानताऽऽयुष्मन् कृतमेतन्मया विभो। सूतः कृच्छ्रगतं रक्षेद् रथिनं सारथिं रथी॥ एतद् विदित्वा तु भवान् मायापोवाहितो रणात्। उपसृष्टः परेणेति मूर्च्छितो गदया हतः॥ अर्थात् मुहूर्तभरमें सचेत हो प्रद्युम्नजीने अपने रथको रणभूमिमें न देख सारथीसे कहा—अरे सारथी! तू मुझे रणभूमिसे हटाकर यहाँ ले आया, यह अच्छा •न किया। मैं मूर्च्छित अवस्थामें तेरे द्वारा यहाँ लाया गया, धिक्कार है।'… सारथीने कहा कि हे आयुष्मन् विभो! सारथीका धर्म है कि वह विपत्तिमें रथीकी रक्षा करे, इसी धर्मानुसार मैंने ऐसा किया। शत्रु (शाल्व) के गदा प्रहारसे पीड़ित होकर आप अचेत हो गये थे, इसीसे युद्धभूमिसे मैं आपको हटा लाया।

(३) तूने हमें वीर्य, सामर्थ्य और पौरुषरहित, कायर, क्षुद्र, सत्त्व एवं तेजहीन, राक्षसी मायासे हीन, अस्त्र-शस्त्रसे अनभिज्ञ पुरुषके समान समझा, इसीसे हमारा रथ रणभूमिसे हटा लाया। यथा—'**हीनवीर्यमिवाशक्तं पौरुषेण विवर्जितम्। भीरुं लघुमिवासत्त्वं विहीनमिव तेजसा॥ विमुक्तमिव मायाभिरस्त्रैरिव बहिष्कृतम्......त्वया शत्रोः समक्षं मे रथोऽयमपवाहितः॥**' (वाल्मी० १०४। २—४)

नोट—२ '***धिग-धिग अधम मंदमति तोही***' में '***धिग-धिग***' और '***अधम***' पदसे भाव जना दिया है कि जान पड़ता है कि तूने शत्रुसे कुछ पुरस्कार (रिश्वत) पाया है, इसीसे मेरे वचन सुनकर अब भी तू मुझे शत्रुके सम्मुख नहीं ले चलता। यथा—'**यत् त्वं कथमिदं मोहान्न चेद्वहसि दुर्मते। सत्योऽयं प्रतितर्को मे परेण त्वमुपस्कृतः॥**' (वाल्मी० ६। १०४। ७)

नोट—३ '***पद गहि बहु बिधि समुझावा।***' (क) चरण पकड़ना दीनतापूर्वक विनय करनेकी एक मुद्रा है; यथा—'***गहि पद बिनय कीन्हि बैठारी***'—(दशरथजी; अ० ३४)। (ख)—वाल्मी० रा० और अन्य ग्रन्थोंमें जिस-जिस विधिसे समझाया है, वह सब '***बहु बिधि***' पदसे जनाया। भेदके कारण एवं ग्रन्थविस्तारके भयसे उसे न लिखा। वाल्मी० १०४ में सारथीने नीतियुक्त ये वचन कहे—न तो मैं डरा हुआ हूँ, न मूढ़ हूँ, न शत्रुसे कुछ घूस पायी है, न मतवाला हूँ, न आपकी सत्क्रियाओंको भूला हूँ; वरन् आपके यशकी रक्षाके लिये प्रेमसे यह हित किया है। रथ लौटानेका कारण सुनिये—'हमने यह जानकर कि बड़ा भारी रणकर्म करनेके कारण आपको बड़ा श्रम हुआ है, इससे यह समय वीर्य दिखानेका नहीं है। दूसरे, घोड़े भी श्रमित हो गये थे। तीसरे, जो-जो कारण दिखायी देते हैं, उन सबसे सर्वथा अमङ्गल ही दिखायी देता है। चौथे, सारथीका कर्तव्य है कि रथीका देश, काल, लक्षण वा चेष्टा, दीनता, हर्ष, खेदादि सबपर ध्यान रखे; तथा पृथ्वीकी समता-विषमता युद्धके समय और शत्रुके छिद्रको भी देखता रहे। शत्रुके समीप कब रथ ले जाना चाहिये, कब दूर रखना चाहिये, कबतक शत्रुके सामने रखना चाहिये और कबतक शत्रुके पीछे खड़े रहना चाहिये—ये सब बातें सारथीको जानना चाहिये। इन सबका विचारकर आपके स्नेहके कारण मैंने रथ हटाया कि आप सुस्ता लें और घोड़े भी। अब आप जो आज्ञा दें, वह मैं करके आपके ऋणसे उद्धार हो जाऊँ। सारथीके वचन सुन रावण प्रसन्न हुआ—(वाल्मी० १०४। ११—२४)।'

वि० त्रि०—अपराध क्षमापनके लिये सारथीने रावणके पैर पकड़ लिये। शान्त होनेपर अनेक प्रकारसे समझाया; यथा—'***मूर्छित प्रभुहिं बिलोकि सो अन्यायी रिक्षेश। कीन्हेसि कठिन प्रहार पुनि करन हेतु निःशेष॥ ये अनीति रत भालु कपि चपल बिगत मर्याद। समर धर्म लंघन करत इनहि न हर्ष बिषाद॥ याते प्रभुहि चढ़ाइ रथ लै आयों मैं लंक। करहिं उचित उपचार सब जामें होइ निशंक॥ रक्षा मूर्छित वीरकी मुख्य सारथी धर्म। लैं आयों प्रभु को इहाँ जानि बूझि सब मर्म॥***'

नोट—४ '***भीरु भए रथ चढ़ि पुनि आवा।***' '***पुनि आवा***' से जनाया कि—(क) उसने स्वयं सारथीसे कहा कि चल हमें वहाँ शीघ्र पहुँचा दे, जिसमें मेरा भागना न समझा जाय, वानर न आने पायें, मैं वहाँ प्रथम पहुँच जाऊँ। वाल्मी० रा० में कई बार सारथीसे रावणकी यह आज्ञा पायी जाती है, अतः '***चढ़ि आवा***' से वही भाव कविने जना दिया है। यथा—'**रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं नय। '......ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोदयामास हयान् स सारथिः। सराक्षसेन्द्रस्य ततो महारथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत्॥**' (वाल्मी० १०४। २५—२७) (ख) वह सच्चा वीर है, रणका उत्साह उसे है; इसीसे पुनः आया।—'**युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम्**' (वाल्मी० १०४। २४) अर्थात् युद्धलोभी रावण बोला।

सुनि आगवनु* दसानन केरा। कपिदल खरभर भएउ घनेरा॥ १०॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी। धाए कटकटाइ भट भारी॥ ११॥

अर्थ—रावणका आगमन सुनकर कपिदलमें बड़ी खलबली मची॥ १०॥ भारी योद्धा क्रोधसे (दाँत)

---

* आगमन—(का०)।

कटकटाकर पर्वत और वृक्ष उखाड़कर जहाँ-तहाँसे दौड़े॥ ११॥

नोट—*'खरभर भएउ घनेरा'।* (क) यहाँ जो खलबली हुई वह भयके कारण नहीं हुई, किंतु यह रणोत्साहसे रणमें पहुँचनेकी उत्सुकताकी खलबली है। सभी आगे पहुँचना चाहते हैं। वा, (ख) सेनामें भयसे खलबली हुई तब भारी-भारी भट दौड़े। इसीसे पहले *'कपिदल'* कहा और फिर *'धाए भट भारी'* कहा।

नोट—२ (क) *'धाए कटकटाइ'* से इनका उत्साह दिखाया। वीर भारी वीरको पाकर उत्साहित होते हैं। कटकटाना वानर-क्रोधका लक्षण है। यथा—*'कटकटाइ गरजा अरु धावा।'* (सुं० १९) देखिये।

छंद—धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोपि करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो।
चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तन ब्याकुल कियो॥

अर्थ—विकट और विकराल भालु-बंदर जो हाथोंमें पर्वत लिये दौड़े वे अत्यन्त क्रोध करके चोट करते हैं। उनके मारते ही राक्षस भाग चले। बलवान् वानरोंने सेनाको विचलितकर फिर रावणको घेर लिया। चारों ओरसे चपेटे (थप्पड़, तमाचे एवं हाथ-पैरके घिस्से) मारकर और नखोंसे देहको विदीर्ण करके रावणको वानरोंने व्याकुल कर दिया।

नोट—१ (क) विकट और कराल 'मर्कट-भालु' के विशेषण हैं। यथा—*'नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥ अमित नाम भट कठिन कराला।'* (सुं० ५४) (ख) *'अति कोपि करहिं प्रहार.........'* अर्थात् प्रहार बड़े क्रोधसे करते हैं, जिसमें वे मार सह न सकें और ऐसा ही हुआ भी। सब राक्षससेना भाग गयी, रावण ही रह गया; अत: उसीको घेरा (रा०प्र०)। (ग) *'चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि.....'* इति। यहाँ अङ्गदके *'याको फल पावहिगो आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे॥'* (३२। ७), इन वचनोंका चरितार्थ है। यहाँ वानर और भालु दोनों ही हैं।

दो०—देखि महा मर्कट प्रबल रावन कीन्ह बिचार।
अंतरहित होइ निमिष महुँ कृत माया बिस्तार॥ ९९॥

अर्थ—वानरोंको महाप्रबल देख रावणने विचार किया और अन्तर्धान होकर पलभरमें मायाका विस्तार किया (फैलायी)॥ ९९॥

नोट—*'कीन्ह बिचार'।* पूर्व एक बार विचार लिख आये हैं, यथा—
'रावन हृदय बिचारा भा निसिचर संघार।.........॥' (८७), *'.........तब रावन माया बिस्तारी।'*
'अंतरधान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥' (९५। १)

इसीसे दूसरी बार ९५ (१) में विचार करना न कहा, केवल अनेक रूप प्रकट करना कहा, वैसे ही अब यहाँ भी न लिखा। अथवा, विचारके साथ ही अन्तर्धान हुआ, इससे विचार न लिखा। अब विचार करता है कि दो बार दो प्रकारकी माया की, वह इन्होंने काट डाली, अब क्या करूँ? कौन माया रचूँ?

☞ अबतक रावणने तीन बार माया रची। उनका सारांश—

१—प्रथम बार रावण अकेला था और कपि-भालु बहुत थे। दूसरी बार रावण अकेला था और कपिदल प्रबल वा प्रचण्ड था। तीसरी बार रावण अकेला था और मर्कट महाप्रबल थे।

२ (क)—जब कपि-भालु बहुत थे तब साधारण माया रची थी, जिसमें निशाचर-सेना और बहुत-से राम-लक्ष्मण थे, यथा—*'देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुजसहित बहु कोसलधनी॥'* (८८। ८) (ख) जब कपिदल प्रबल था तब जितने वानर-भालु थे और जहाँ थे वहीं उसने उतने रावण प्रकट किये और (ग) जब कपि महाप्रबल थे तब उसने भूत-प्रेत, बेताल, योगिनियाँ जलती हुई अग्नि और जलती रेत इत्यादि प्रचण्ड जन्तु आदि उत्पन्न किये।

३ (क)—प्रथम बार मायाके राम-लक्ष्मण थे अतः माया भयावनी न थी। तब लक्ष्मणादि सभी माया देख चित्रलिखित-सरीखे खड़े देखते रह गये। पर केवल चकित थे, न भगे न चिल्लाये। यथा—*'जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे', 'निज सेन चकित बिलोकि········।'* (८८ छंद) दूसरी बार अमित रावण, प्रत्येक वानरके साथ कम-से-कम एक थे। इससे वानर व्याकुल हो भगे और *'त्राहि त्राहि'* करने लगे, यथा—*'चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपाल पाहि भयातुरे॥'* (९५) यह भागना कपिदलका है। हनुमदादि अतिबली वानर नहीं भगे थे, यथा—*'हनुमंत अंगद नील नल अतिबल लरत रनबाँकुरे।'* (९५ छंद) और, (ग) तीसरी बारकी मायासे वानर व्याकुल हुए और भागे भी, पर भागनेकी राह कहीं न पाकर थकित हो गये। लक्ष्मण, सुग्रीवसमेत सभी वानर अचेत हो गये, कोई वीर न बचा।

४ प्रथम मायामें किसीने न पुकार की, दूसरीमें कपिदलने पुकार की, हनुमदादिने नहीं वरन् ये सहायता करने लगे और तीसरीमें हनुमदादि सुभट भी त्राहि-त्राहि करने लगे।

५ प्रथममें *'भालु मर्कट अपडरे',* दूसरीमें *'भागे भालु बिकल भट कीसा'* और तीसरीमें *'हा राम हा रघुनाथ कहि सुभट मीजहिं हाथ'*। भाव कि पहले साधारण वानर-भालुका अपडर कहा, दूसरीमें भट (योद्धा) वानर-भालुका डर कहा और तीसरीमें उत्तम-उत्तम योद्धाओंका।

६ पहली माया एक चौपाई (दो चरण) में कही—*'देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी॥'* और दूसरी पाँच चरणोंमें। पहलीसे दूसरीमें और उससे तीसरीमें अधिक विस्तार है। और तीसरी बार तोमर छंदके सात चरण और आधे दोहेमें माया कहकर दुबारा फिर तोमर छन्दके आठ चरण और हरिगीतिकाके दो चरणोंमें वह माया कही।

७ प्रथममें वानरोंका डर आदि हरिगीतिकाके चार चरणोंमें कहे। दूसरीमें वानरोंका भय चौपाईके पाँच चरणों और हरिगीतिकाके दो चरणोंमें लिखा, तीसरी बार तोमरके १२ चरणोंमें लिखा।

८ प्रथम बार विचार करते ही माया प्रकट कर दी, यथा—*'तब रावन माया बिस्तारी। देखी कपिन्ह निसाचर अनी।·········'* दूसरीमें अन्तर्धान होना पड़ा और क्षणभर लगा तब माया रची, यथा—*'कपिदल प्रबल देखि तेहि कीन्ह प्रगट पाखंड॥ अंतरधान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका॥'* तीसरी बार अन्तर्हित होकर निमेषभरमें माया रची गयी। कुछ लोगोंके मतानुसार क्षण निमेषका चतुर्थांश है। इस प्रकार एकसे दूसरेमें और दूसरेसे तीसरेमें अधिक समय लगा।

९ (क) पहली माया काटनेका प्रसङ्ग हरिगीतिकाके चार चरणोंमें है। यथा—*'निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी। माया हरी हरि निमिष महँ हरषी सकल मर्कट अनी॥'* दूसरी बारका एक दोहा और चौपाईके एक चरणमें है। यथा—*'सुर बानर देखे बिकल हँसे कोसलाधीस। सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥'* (९५), *'प्रभु छनमहँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहिं तम फाटी॥'* और तीसरी बार—*'रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महँ माया हरी।'*

(ख) प्रथम बार सब चकित थे, कोई व्याकुल वा भगे न थे, तब एक निमेषमें। दूसरी बार सुर और वानर दोनों विकल हो भगे थे, तब क्षणभरमें। और तीसरी बार सब अचेत हैं और सुरोंको हर्ष-विषाद दोनों हैं, वे भगे नहीं हैं, अतः फिर निमेषमें हरना कहा।

(ग) प्रथम दो बार हँसे और जब फिर उसने माया रची तब क्रोध हुआ। हँसे तबतक माया भी रही, क्योंकि आपका हास्य स्वयं माया है। अब क्रोध किया, अतएव आगे अब मायाका पता नहीं रह गया।

१० प्रथम बार मायाहरणमें *'हरि'* और हँसकर धनुष सजनेमें *'कोसलधनी'* पद दिया—*'माया हरी हरि निमिष महँ'* दूसरी बार सुर और वानर दोनोंको विकल देखा तब हँसने और माया काटनेमें एक ही पद *'कोसलाधीस'* दिया। और तीसरी बार हँसे नहीं कोपकर बाण चलाकर माया काटी। तब रघुवीर पद दिया। *'रघुबीर'* हैं अतएव अब उसकी माया डर गयी, अब माया आगे नहीं आयेगी।

११ प्रथम बार *'हरषी सकल मर्कट अनी'* पर लड़नेका उत्साह माया कटनेपर न रह गया। दूसरी

बार सुर-वानर दोनों हर्षित हुए और प्रभुका बल पाकर फिरे और *'प्रभुबल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥'* पर लड़े नहीं। तीसरी बार *'माया बिगत कपिभालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।'* भाव कि दूसरी बार कुछ उत्साह हुआ और अबकी तो उत्साहसे उसे मारने दौड़े।

छंद—जब कीन्ह तेहि पाषंड भए प्रगट जंतु प्रचंड।
बेताल भूत पिसाच कर धरे धनु नाराच॥१॥
जोगिनि गहे करबाल एक हाथ मनुज कपाल।
करि सद्य सोनित पान नाचहिं करहिं बहु गान॥२॥

शब्दार्थ—**करबाल** (सं०)=तलवार। **सद्य**=ताजा, तुरंतका।

अर्थ—जब उसने माया रची, तब हाथोंमें धनुष-बाण लिये हुए वेताल, भूत और पिशाच भयङ्कर जीव प्रकट हो गये। योगिनियाँ एक हाथमें तलवार और एकमें मनुष्योंकी खोपड़ियाँ लिये तत्काल ही ताजा खून पीकर नाचती हैं और बहुत तरहके गीत गाती हैं॥ २॥

पं०—*'करि सद्य सोनित पान.......।'* भाव कि हाथमें खोपड़ियोंके खप्पड़ लिये हैं, तलवारसे सिर काट-काट तत्काल रुधिर पीती हैं। वा, खोपड़ियोंसे रक्त बह रहा है वही पीती हैं।

मा० म०—*'गहे करबाल'* के यहाँ दो अर्थ हैं। १—हाथमें सिरके बाल पकड़े हैं और उसी हाथमें तलवार लिये हैं। २—अपनी गोदमें बालक भी लिये हैं—ऐसे भयङ्कर रूपको देखकर काल भी डरता है।'

छंद—धरु मारु बोलहिं घोर रहि पूरि धुनि चहुँ ओर।
मुख बाइ धावहिं खान तब लगे कीस परान॥३॥
जहँ जाहिं मर्कट भागि तहँ बरत देखहिं आगि।
भए बिकल बानर भालु पुनि लाग बरषै बालु॥४॥

अर्थ—वे धरो-पकड़ो, मारो इत्यादि भयावने शब्द बोलती हैं, यह ध्वनि चारों ओर भर रही है। मुँह फैलाकर खानेको दौड़ती हैं। तब वानर भागने लगे॥ ३॥ जहाँ भी वानर भागकर जाते हैं वहीं आग जलती देखते हैं। वानर-भालु व्याकुल हो गये। फिर वह रेत बरसाने लगा॥ ४॥

नोट—१ *'धरु मारु बोलहिं घोर'*, यथा—*'मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू॥'* (५२। ६) देखिये। भय उत्पन्न करनेके लिये ये शब्द करते हैं, यह बात *'घोर'* पदसे जना दी है।

नोट—२ *'पुनि लाग बरषै बालु'* जिसमें अन्धकार हो जाय, किसीको देख न पड़े। यथा—*'बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथ पसारा॥'* (५१। ४) रा० प्र०—कार बालूसे तप्त रेतका भाव कहते हैं।

नोट—३ *'तब लगे कीस परान'*। *'तब'* का भाव कि पिशाचादिको देखकर न डरे, उनके शब्दसे न डरे, योगिनियाँ कराल हैं यह भी देख न डरे। कारण कि पूर्व इस मायाको देख चुके हैं और जानते हैं कि यह सब झूठा है। जब वे खाने दौड़ीं तब इस मायाको सत्य समझकर डरकर भागे। जब वे भगे तब जिधर जायँ उधर आग दिखायी पड़ी तब व्याकुल हुए कि अब *'सबकर मरन बना एहि लेखे'*।

छंद—जहँ तहँ थकित करि कीस गर्जेउ बहुरि दससीस।
लछिमन कपीस समेत भए सकल बीर अचेत॥५॥
हा राम हा रघुनाथ कहि सुभट मीजहिं हाथ।
एहि बिधि सकल बल तोरि तेहिं कीन्ह कपट बहोरि॥६॥

अर्थ—वानरोंको जहाँ-तहाँ (जो जहाँ हैं उनको वहीं) थकित करके फिर दशशीश गर्जा। श्रीलक्ष्मण और सुग्रीवसहित सब वीर वानर अचेत हो गये॥ ५॥ हा राम! हा रघुनाथ! (भाव कि हम बड़े कष्टमें हैं) कहकर

सुभट अपने हाथ मलते हैं। इस प्रकार सारी सेनाका बल तोड़कर उसने फिर और माया रची॥ ६॥

रा० प्र०—१ *'गर्जेउ'* जयसूचक है कि वानर अब कहीं न तो ठहर ही सकते हैं और न भागनेकी जगह पाते हैं। २ *'लछिमन कपीस समेत'* का भाव कि सामान्य-विशेषकी कथा ही क्या?

प० प० प्र०—*'अचेत'* का अर्थ यहाँ मूर्छित नहीं है, किंतु 'किंकर्तव्यविमूढ़' है। क्या करना चाहिये, इससे कैसे बचें इत्यादि कुछ भी निर्णय न करनेमें समर्थ नहीं हैं। भाव कि सब आर्त्त हैं। *'रहत न आरत के चित चेतू।'* (२। २६९। ४) रावणकी मायाके सामने इन सबकी अतुलित वीरता निष्क्रिय हो जानेसे इनको यहाँ 'वीर' मात्र कहा, बलवीर अथवा महावीर आदि न कहा।

पां०—*'हा राम'* का भाव कि आप सबमें रमे हैं, हमारी विपत्ति देखिये। *'रघुनाथ'* का भाव कि आप विपत्ति-निवारणमें कुशल हैं, हमारी विपत्ति हटाइये। आपके नाथ होते हुए भी हम अनाथ-से हो रहे हैं।

रा० प्र० का मत है कि '**हा राम हा रघुनाथ**' का भाव यह है कि कुछ पराक्रम नहीं चल सकता। अपनी दशासे रघुनाथजीको न देखकर 'हा राम! हा रघुनाथ!' करके हाथ मलते हैं। भाव कि अपनी-सी दशा रामजीकी भी मानते हैं।

नोट—१ *'मीजहिं हाथ'* अर्थात् कुछ वश नहीं चलता, कुछ हो नहीं सकता, जीते-जिताये हारे जाते हैं। (पं०) 'हाथ मींजना या मलना' मुहावरा है। शोक, पश्चात्ताप, निराशा, क्रोध और कष्टमें हाथ मलते हैं। यथा—*'कर मीजहिं सिर धुनि पछिताहीं।* २। ७६। ५।' (शोक निराशासे), *'अबला बालक बृद्ध जन कर मींजहिं पछिताहिं।'* (२। १२१; पश्चात्ताप, बेबशीसे), *'मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई।'* (२। १४४ पश्चात्तापादिसे) २ *'एहि बिधि सकल बल तोरि।'* भाव कि इस मायासे तो सेनाभरका बल क्षीण कर दिया, सब मनमें हार गये। अब रहे राम, सो उनका बल भी तोड़ूँ; इसलिये फिर दूसरी प्रकारकी माया रची।

प० प० प्र०—*'हा राम हा रघुनाथ'* इति। यहाँ उपदेश है कि अहङ्कारजनित मायाकी शक्तिसे कोई भी जीव, कितना ही बड़ा धीर-वीर क्यों न हो, अपनी सामर्थ्यसे बच नहीं सकता। ऐसी दशामें जिसके अन्तःकरणसे *'त्राहि त्राहि आरति हरन सरन सुखद रघुनाथ'* ऐसी पुकार निकलेगी वही बच सकेगा, अन्य सब मायाके चक्करमें ही भ्रमते और घबड़ाते रहेंगे।

छंद—प्रगटेसि बिपुल हनुमान धाए गहे पाषान।
तिन्ह रामु घेरे जाइ चहुँ दिसि बरूथ बनाइ॥ ७॥
मारहु धरहु जनि जाइ कटकटहिं पूँछ उठाइ।
दस दिसि लँगूर बिराज तेहि मध्य कोसलराज॥ ८॥

शब्दार्थ—**बरूथ**=सेना, दल, टोली।

अर्थ—उसने बहुत-से हनुमान् प्रकट किये, जो पत्थर लिये दौड़े। चारों ओर दल बनाकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीको जा घेरा॥ ७॥ पूँछ उठाकर कटकटाकर कहते हैं कि मारो, पकड़ बाँधो, जाने न पाये। दसों दिशाओंमें लंगूर और उनके बीचमें कोसलराज श्रीरामजी विराजमान हैं॥ ८॥

नोट—*'तेहि कीन्ह कपट बहोरि'*। वह माया यह है। अभीतक जितनी माया रची उससे श्रीरामजी मोहित न हुए, शेष सब मोहित हो गये। अतः अब यह दूसरी माया उनको मोहित करनेके विचारसे रची।

करु०—एक ही हनुमान्ने लङ्का भस्म कर दी, एक ही अङ्गदने रावणका सभामें कैसा अपमान किया। ऐसे अगणित हनुमान् रावणने अपनी मायासे रच लिये—यह रावणका प्रताप है। तो रावणने प्रथम ही यह प्रताप क्यों न दिखाया था? इसका समाधान यह है कि रावण तो इनको कुछ न समझता था, पर उसने सोचा कि यदि ये (हनुमान् और अङ्गद) मेरा प्रताप जान लेंगे तो फिर लङ्काको न आवेंगे और न जाननेसे जाकर रघुनाथजीसे अपनी प्रभुता और मेरी लघुता कहेंगे तब रघुनाथजी संग्रामके लिये शीघ्र आवेंगे। उस समय मैं अपना प्रताप सबको दिखाऊँगा।

प० प० प्र०—लङ्कादहनादिके समय विविध माया-कृतिसे हनुमान्-अङ्गदादिको भयभीत न करनेमें अनेक कारण हो सकते हैं। जैसे—(१) अपने दासोंकी कीर्ति बढ़ानेकी भगवान्‌की इच्छा। (२) सभी राक्षसोंके विनाशकी (श्रीरामजीकी) प्रतिज्ञा। (३) सभी राक्षसोंको रणाङ्गणमें खर-दूषणादिके समान विरोध-वैर करते हुए स्वयं प्रभुके हाथसे मरवाकर और स्वयं उनके हाथों मरकर भवसागर पार कराके अपनी *'प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ'* इस प्रतिज्ञाको पूरा करना। (४) रावणका महत्त्व बढ़ानेके लिये इसी समय भगवान्‌की इच्छासे उसमें ऐसी इच्छाका होना। (५) श्रीलक्ष्मणजी, श्रीहनुमान्‌जी आदि महावीरोंको अपने बल-पराक्रमादिका कभी अभिमान न होने पाये, इस कृपामूलक भगवदिच्छाने ही यह कराया। *'राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥', 'उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन'*। (६) जैसे पूर्व *'रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायउ'* वैसे ही अब रण-शोभाके लिये रावणको ऐसी प्रेरणा की गयी। इत्यादि।

गौड़जी—मायारचित रूपोंमें सभी गुण-कर्म नकली होते हैं, असली नहीं। इसीलिये असली पराक्रम भी नहीं होता। मायाकी खूबी यही है कि देखकर असलीका भ्रम हो जाय, डर समा जाय। जब यह पता चल जाता है कि यह मायाके रूप हैं असली नहीं, तब तो साधारण कपि भी *'मर्दहिं कोटिक रावण।'* रावण तो भगवान्‌की मायासे स्वयं मोहित होकर उन्हें मनुष्य समझता है, इसीलिये यहाँ *'प्रगटे बिपुल हनुमान'* उसे पहलेका अनुभव है कि मायामृगसे यह छले जा चुके हैं फिर मायाके हनुमान्‌से क्यों न छले जायँगे। फिर भी विपुल हनुमान् प्रकट करके अपनी मूर्खता पूर्णतया दिखा देता है।

छंद—तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इन्द्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमाल ही॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी॥१॥

शब्दार्थ—तुंग=ऊँचा। बारी=बाग, खेत, वृक्ष आदिके चारों तरफ रक्षाके लिये बनाया हुआ घेरा।

अर्थ—उनके मध्यमें कोसलराजका सुन्दर श्यामशरीर कैसी शोभाको प्राप्त हुआ मानो अनेकों इन्द्रधनुषोंकी श्रेष्ठ ऊँची बाड़के बीचमें ऊँचा तमाल वृक्ष हो। प्रभुको देखकर देवताओंके हृदयमें हर्ष और विषाद दोनों उत्पन्न हुए और वे जय-जयकार करके जय बोलते हैं। तदनन्तर श्रीरघुवीरने कोप करके एक ही बाणसे पलभरमें समस्त माया हर ली॥ १॥

नोट—१ *'प्रभु देखि हरष बिषाद उर'* इति। 'प्रभु' अर्थात् समर्थ हैं। उनका सामर्थ्य समझ और अद्‌भुत छटा देख हर्ष हुआ अतएव जय-जयकार करने लगे। और, रावणने यह माया रच रखी है उसमें प्रभुको अवरुद्ध देख विषाद हुआ।—दोनों भाव एक साथ उदय होनेसे 'प्रथम समुच्चय अलंकार' हुआ। अबकी कोई देवता न भागे, अतः *'प्रभु देखि'* पद दिया। भाव कि उनको देख सामर्थ्य भी स्मरण हो आया। पूर्व भी जो देवता न भागे थे उनके सम्बन्धमें भी कहा था कि *'रहे बिरंचि संभु मुनि ग्यानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी॥'* (९५। ८)

नोट—२ *'बदत जय जय जय करी'* अर्थात् जोर-जोर पुकारकर जय-जयकार करते हैं। अब रावणका डर नहीं रह गया, अब ये 'प्रभु' को सत्य ही प्रभु जान गये हैं। पिछली बार रावणसे भागनेपर इनकी रक्षा की गयी, इसलिये अब निःशङ्क हो गये।

रा० प्र०—हर्ष और विषाद कि रावणने ऐसी माया की। वा, पहिले परम विषाद हुआ फिर प्रभुको देख हर्ष हुआ। पहिले विषाद किया फिर हर्ष, इसीसे *'बिषाद'* शब्दके बाद *'जय जय करी'* पद दिया। *'बदत'* दीपदेहरी-न्यायसे दोनोंमें लगेगा। शब्दोंद्वारा विषाद प्रकट किया फिर 'जय' उच्चारण किया।

प० प० प्र०—'रघुवीर' शब्दसे यहाँ विद्या, कृपा और पराक्रम तीन वीरताएँ सूचित कीं। विद्यावीर हैं अतः जान लिया कि यह राक्षसी माया है। कृपावीर हैं अतः 'हा राम रघुनाथ' सुन सबको आर्त जान कृपा की। पराक्रमवीर हैं अतः एक ही बाणसे पलमात्रमें माया हर ली।

नोट—३ ☞पूर्व जब-जब माया रची गयी। तब-तब हँसकर प्रभुने उसे काटा।

१—*'पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा। पावकसायक सपदि चलावा॥*
भएउ प्रकास कतहुँ तम नाहीं। ग्यान उदय जिमि संसय जाहीं॥' (४६। ३-४)

२—*'कौतुक देखि राम मुसुकाने। भए सभीत सकल कपि जाने॥*
एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥' (५१। ७-८)

३—*'निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।*
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मर्कट अनी॥' (८८ छन्द)

४—*'सुर बानर देखे बिकल हँस्यो कोसलाधीस। सजि सारंग एक सर हते सकल दससीस॥'* (९५)
'प्रभु छन महँ माया सब काटी। जिमि रबि उएँ जाहिं तम फाटी॥'

पर यहाँ 'हँसी' की जगह 'कोप' किया है। भेदका भाव यह है कि जबतक क्रीड़ा करना था तबतक हँसते रहे और राक्षस माया करते रहे। परम कौतुकी हैं ही, कौतुक देखते रहे—*'कौतुक देखि राम मुसुकाने'*। अबकी लक्ष्मण और सुग्रीवतक अचेत हो गये; इसलिये अब क्रीड़ा समाप्त करना चाहा तब कोप किया। कोप होनेपर फिर माया न हुई। लक्ष्मणजीने मेघनाद-युद्धमें ऐसा ही विचारकर क्रोध किया था। यथा—*'बिबिध बेष धरि करइ लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई॥ देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भयउ अहीसा॥ लछिमन मन अस मंत्र दृढ़ावा। एहि पापिहि मैं बहुत खेलावा॥ सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्हि करि दापा॥'* (७५। १२—१५) पुनः, प्रभुका हास्य माया है। अबतक मायाका खेल देखना और सबको दिखाना था अतः हँसते रहे। आप भी मायामें सम्मिलित रहे। पुनः, रावणकी मायाका पूरा बल देख लिया और सबको दिखा दिया तब कोप किया। 'रघुवीर' पद देकर जनाया कि ये पराक्रमवीर हैं, इनके लिये यह माया क्या है? अब अपना पराक्रम दिखाते हैं, जिससे फिर वह माया न कर सकेगा।

गौड़जी—कोपका कारण यह है कि मायाके अनेक हनुमानोंका; परम भागवतोंका विनाश, रावण स्वयं प्रभुके हाथों ही करा रहा है। ऐसी क्रीड़ा प्रभुको इष्ट नहीं है। अतः क्रोध किया कि ऐसी क्रीड़ाका तुरंत अन्त हो जाय।

प० प० प्र०—*'कोपि'* इति। भाव कि जैसे महामुनि कपिलदेवजीने अपने कोपके हुङ्कारसे ही सगरपुत्रोंको भस्म कर दिया वैसे ही श्रीरामजीने अपने तीरके साथ अपना कोप ही छोड़ा। इससे यह भी जनाया कि अब रावणको निर्वाण देनेका समय समीप आ गया। मारीचने कहा है *'निर्बान दायक क्रोध जाकर'*।

वीरकवि—रामचन्द्रजीके चारों ओर असंख्यों हनुमान् पूँछ उठाये हुए विद्यमान हैं, यही उत्प्रेक्षाका विषय है। पूँछ और इन्द्रधनुष, रामतन और तमालवृक्ष उपमेय-उपमान हैं। यह विलक्षण कल्पना है, जो न कहीं सुनी न देखी गयी। अतः यहाँ 'अनुक्तविषया-वस्तूत्प्रेक्षालंकार' है।

छं०—माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाँड़े राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥ २॥

अर्थ—माया दूर होनेपर वानर और भालु प्रसन्न हुए और वृक्ष तथा पर्वत ले-लेकर सब लौट पड़े। श्रीरामचन्द्रजीने बाणसमूह छोड़े, जिनसे रावणके बाहु और सिर फिर कट-कटकर पृथ्वीपर गिरे। श्रीराम-रावणके युद्ध-चरित्र यदि सैकड़ों शेष, शारद, वेद और कवि अनेक कल्पोंतक गाते रहें तो भी वे लोग उसका पार नहीं पा सकते॥ २॥

नोट—१ अबकी बार वानरोंका उत्साह भी बढ़ा, इससे वे पर्वतादि लिये हुए फिरे। पिछली बार फिरे थे पर पर्वतादि न लाये थे और प्रथम बार तो उत्साहहीन ही हो गये थे। *'फिरे'* का भाव कि पूर्व रावणके भयसे भागे थे, यथा—*'तब लगे कीस परान'* अब फिरे।

नोट—२ (क) शेष, शारद, वेद और कवि ये चारों गायक हैं और रामचरित गाते रहते हैं, यथा—'*सारद सेष महेस बिधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरंतर गान॥*' (१। १२) इससे इनका गाना कहा। शेष दो हजार जिह्वासे और शारदा सबकी जिह्वासे गाती है और वेद तो प्रभुकी स्वयं वाणी है। पुनः भाव कि—(ख) एक-एक पार नहीं पाते यह तो प्रसिद्ध ही है, कदाचित् बहुत-से कहें तो कह सकें, उसपर वक्ता कहते हैं कि अगणित भी एकत्र होकर कहें तब भी न चुके। तात्पर्य कि अपार है। पुनः, (ग) न कह सकनेका कारण यह कि राम-रावण-युद्धकी कोई उपमा ब्रह्माण्डमें नहीं मिलती, राम-रावण-युद्धमें अनन्वयालंकार है। यथा—'**गन्धर्वाप्सरसां सङ्घा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम्। गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः॥ रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव॥ एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं रामरावणम्॥**' (११०। २३-२४; च० सं०)

पं० वि० त्रिपाठीजी—जिस भाँति राम-रावण-समर-चरित्र ब्रह्माण्डमें हुआ, उसी भाँति राम-रावण-समर प्रत्येक पिण्डमें हो रहा है। विनय-पत्रिकाके 'वपुष ब्रह्माण्ड सुप्रवृत्ति लंकादुर्ग' शीर्षक भजनमें इसका सविस्तर निरूपण किया है। पिण्डमें मोह रावण है, ज्ञान राम हैं, जानकीजी भक्ति हैं, हनुमान्‌जी वैराग्य हैं, प्रवृत्ति लङ्का-दुर्ग है; कुम्भकर्ण अहंकार है, विभीषण जीव हैं, कैवल्यके साधन वानरी सेना हैं, सो अनन्तकालसे प्रत्येक पिण्डमें राम-रावण-युद्ध होता चला आया है और होता चला जायगा। कभी रामकी जीत होती है कभी रावणकी जीत है। ब्रह्मद्वारा मोहका सिर कटता है, परंतु फिर निकल आता है, उसका मरना दुष्कर व्यापार है। लाखों, करोड़ों साधकोंमेंसे किसी एकका मोह मारा जाता है तो उसे स्वराज्यकी प्राप्ति होती है, अतः यह समर-चरितके सम्यक् ज्ञानमें सचमुच शत शेष, शारद, निगम कवि सभी असमर्थ हैं। वह बात तो केवल अध्यात्मदृष्टिसे कही गयी, अब यदि इसीमें आधिभौतिक दृष्टि और आधिदैविक दृष्टिसे जो राम-रावण-समर-चरित हुआ उसे भी जोड़ दिया जाय तो पारावार. कहाँ मिलेगा?

दो०—ताके गुनगन कछु कहे* जड़मति तुलसीदास।
निज† पौरुष अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास॥ १००॥

अर्थ—मुझ मंदबुद्धि तुलसीदासने उनके कुछ गुणगण कहे, जैसे अपने पुरुषार्थके अनुसार मक्खी भी आकाशमें उड़ती हैं॥ १००॥

नोट—१ '*श्रीराम रावन समर चरित*' शब्द छन्दमें देकर और दोहेमें '*ताके गुनगन कछु कहे*' कहकर यहाँ अपने 'श्रीराम-रावण-समरचरित' की इति लगायी। आगे अब रावणका कोई पुरुषार्थ नहीं दिखाया गया है।

नोट—२ '*गुनगन कछु कहे*……'। भाव कि ऐसे-ऐसे बुद्धिमान् वक्ता नहीं कह सकते तब मेरा कहना तो मूर्खता ही है। क्योंकि मेरी बुद्धि तो अति नीच है, यथा—'*मति अति नीचि ऊँचि रुचि आछी।*' (१। ८। ७), '*मन मति रंक मनोरथ राऊ*', '*लघुमति मोरि चरित अवगाहा।*' (१। ८। ५-६) फिर कहा क्यों? न कहते। उसपर कहते हैं कि सभी कहते हैं, यद्यपि पार नहीं पा सकते वैसे ही मैं भी बुद्धिभर कहता हूँ, कुछ पार पानेके लिये नहीं कहता। मिलान कीजिये बा० १३ (९) से दोहा १३ तक। '*जेहि मारुत गिरि मेरु उड़ाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥*' इत्यादिमें भाव आ चुके हैं।

नोट—३ '*जिमि निजबल अनुरूपते माछी उड़ै अकास*'। यथा—'*तुम्हहिं आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥ तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥*' (७। ९१। ५-६), '*निज निज मति मुनि हरिगुन गावहिं। निगम सेष सिव पार न पावहिं॥*' (७। ९१। ४)

यहाँ गोस्वामीजी अपनेको मच्छर और शेष-शारदादिको गरुड़ जनाते हैं। पार तो दोनों ही नहीं पाते। अपने-अपने पुरुषार्थभर आकाशमें उड़ते हैं। वैसे ही पार तो शेष-शारदादि भी नहीं पाते, पर अपनी शक्तिभर कहते हैं तथा मैंने भी शक्तिभर कहा।

नोट—४ ☞ का० मा०, म०, पं० में पाठ यह है—'*निज पौरुष अनुसार जिमि मसक उड़ाहिं अकास*'।

* कहे तासु गुनगन कछू। † 'जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उडइ अकास।' 'निज पौरुष……'—भा०दा०।

रा० गु० द्वि० और भा० दा० आदिका पाठ *'जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़ै अकास'* है। काशीवाला पाठ अधिक उत्तम जान पड़ता है। क्योंकि 'मसक' 'माछी'से छोटा होता है और मच्छड़का दृष्टान्त कविने उत्तरकाण्डमें दिया भी है।

बं० पा०—*'माछी'* से मधुमक्खी समझो! मधुमक्खी पुष्पोंका रस लेकर तब मधुका छत्ता लगाती है, वैसे ही गोस्वामीजीने नाना पुराणादि अनेक ग्रन्थ-पुष्पोंका रस लेकर यह मानस-ग्रन्थ मधुछत्ता लगाया है, अतएव ये मधुकर मक्खी हैं।—[पर यहाँ कवितामें सबसे छोटा जन्तु ही मानना प्रशस्त है—(मा० सं०)]।

'रावण-वध'-प्रकरण

दो०—काटे सिर भुज बार बहु मरत न भट लंकेस।
प्रभु क्रीड़त सुर सिद्ध * मुनि ब्याकुल देखि कलेस॥ १००॥

अर्थ—सिर और भुजाओंके बारम्बार कटनेपर भी लङ्कापति योद्धा रावण मरता नहीं। प्रभु तो क्रीड़ा (खेल) कर रहे हैं किन्तु सुर, सिद्ध, मुनि प्रभुको क्लेशमान देखकर व्याकुल होते हैं॥ १००॥

नोट—*'प्रभु क्रीड़त.........'* यथा—*'प्रभु कृत खेल सुरन्ह बिकलई'* (९३। ३) यहाँ 'प्रथम उल्लास अलंकार' है।

काटत बढ़हिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥ १॥
मरै न रिपु श्रम भएउ बिसेषा। राम बिभीषन तन तब देखा॥ २॥

अर्थ—काटते ही सिरोंका समुदाय (समूह) बढ़ता ही जाता है। जैसे प्रत्येक लाभपर लोभ बढ़ता है॥ १॥ शत्रु नहीं मरता और परिश्रम बहुत हुआ। तब श्रीरामचन्द्रजीने विभीषणकी ओर देखा॥ २॥

नोट—१ *'जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई'*। जैसे कोई किसी एक बातकी कामना करे और वह पूरी हो जाय तो फिर वह और कामनाएँ करने लगता है, वे पूरी हुईं तो और बड़ी वस्तुकी कामना होती है। इस प्रकार लोभ बढ़ता जाता है। उसका अन्त नहीं हो पाता। यथा—'**कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात्। जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः॥**'—(श्रीमद्भागवत ७। १५। २०)

अर्थात्—कामका अन्त भूख-प्याससे और क्रोधका किसीके प्रहारसे वा कठोर वचन कहनेसे हो सकता है, पर दशों दिशाएँ जीतनेपर भी, उसके समस्त भोगोंके पानेपर भी लोभका अन्त नहीं।

श्रम भएउ बिसेषा

पं०—(क) विशेष इससे कि फाल्गुन शुक्ल द्वादशीसे चैत्र कृ० १४ तक अर्थात् १८ दिन-रात बराबर युद्ध हुआ है। (ख)—विभीषणकी ओर देखनेका भाव कि हमने इसे 'लंकेश' पद दिया था और रावण लंकेश मरता नहीं, तब क्या होगा? अथवा, देखकर सूचित किया कि तुम उपाय कुछ जानते हो तो कहो।

शीला—अन्तर्यामी होकर भी पूछते हैं। इसमें भाव यह है कि श्रीरामजी प्रणतकुटुम्बपाल हैं। अतएव वे विभीषणसे कहलाकर, कि 'इसे मारिये' तब रावणको मारेंगे।—(इसी तरह वालीको तभी मारा था जब सुग्रीवसे कहला लिया था कि *'बंधु न होइ मोर यह काला'*)।

रा० प्र०—रणक्रीड़ामें स्थूलदृष्टिमें श्रम हुआ।

नोट—*'श्रम भएउ बिसेषा'* वाल्मी० १०७ में कई बार घोर रोमहर्षण युद्ध होना लिखा है। दोनोंके चलाये हुए बाण न तो उत्साहरहित होते थे और न निष्फल ही। अपना-अपना कार्य अवश्य करते थे। अनेक प्रकारसे युद्ध हुआ। सूर्य प्रभारहित हो गये, पवनका चलना बंद हो गया, देवता बड़ी चिन्ताको प्राप्त हुए। तब रामचन्द्रजीने तीक्ष्ण बाणसे रावणका सिर काटा, सिर काटते ही पुनः ज्यों-का-त्यों वहाँ दूसरा सिर जम आता था, इस तरह

*मुनि सिद्ध सुर—(का०)।

सैकड़ों बार काटा और बराबर सिर नये जुड़ते जाते थे, न उसके सिरोंका अन्त होता था और न बाणोंका। यथा—'**एवमेव शतं छिन्नं शिरसां तुल्यवर्चसाम्॥ न चैव रावणस्यान्तो दृश्यते जीवितक्षये।**' (५७-५८) तब रामचन्द्रजीको चिन्ता हुई और वे विचार करने लगे कि जिन बाणोंसे हमने मारीच और खर-दूषणको मारा, क्रौंचवनमें कबंधको मारा, दण्डकारण्यमें विराधको मारा, सप्तताल वृक्ष गिराये और वालीको मारा तथा समुद्रको क्षुब्ध कर दिया, वे सब सफल बाण विद्यमान हैं। फिर किस कारणसे वे रावणपर मन्दतेज हो रहे हैं। यथा—'**मारीचो निहतो यैस्तु खरो यस्तु सदूषणः॥ क्रौंचावटे विराधस्तु कबन्धो दण्डकावने। यैः साला गिरयो भग्ना वाली च क्षुभितोऽम्बुधिः॥ त इमे सायकाः सर्वे युद्धप्रात्ययिका मम। किं नु तत्कारणं येन रावणे मन्दतेजसः॥ इति चिन्तापरश्चासीदप्रमत्तश्च संयुगे। ववर्ष शरवर्षाणि राघवो रावणोरसि॥**' (५९—६२) यह सोचकर पुनः सावधान हो बाणोंकी वर्षा करने लगे। फिर रोमहर्षण युद्ध हुआ। कभी पृथ्वीपर, कभी अन्तरिक्षमें और कभी पर्वतपर युद्ध होता। इस तरह सात दिन-रात निरन्तर युद्ध हुआ, क्षणमात्र बंद न हुआ।—'**तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्। अन्तरिक्षे च भूमौ च पुनश्च गिरिमूर्द्धनि॥ देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्। पश्यतां तन्महद्युद्धं सर्वरात्रमवर्तत॥ नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्त्तं न च क्षणम्। रामरावणयोर्युद्धं विराममुपगच्छति॥**' (वाल्मी० १०७। ६४—६६)

ऐसा घोर युद्ध हुआ। अतः कहा कि *'श्रम भएउ बिसेषा'।* सर्ग १०७ हीमें कई बार 'रोमहर्षण' युद्ध पद आया है। यथा—'**एवं तु तौ सुसंक्रुद्धौ चक्रतुर्युद्धमुत्तमम्। मुहूर्तमभवद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥**' (२८), '**तत्प्रवृत्तं पुनर्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥**' (४४), '**रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥**' (५०), '**तत्प्रवृत्तं महद्युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम्॥**' (६४) वाल्मीकीयका यह पूरा प्रसङ्ग *'श्रम भएउ बिसेषा'* से सूचित किया है।

इसके बाद वाल्मी० १०९ में मातलिने यह देख रामचन्द्रजीको ब्रह्मास्त्रका स्मरण कराया है कि उसका प्रयोग कीजिये और अध्यात्म एवं आनन्द रामायणोंमें विभीषणकी ओर प्रभुका रुख करना लिखा है। यथा—'**यैर्यैर्बाणैर्हता दैत्या महासत्त्वपराक्रमाः। एते ते निष्फलं याता रावणस्य निपातने॥ इति चिन्ताकुले रामे समीपस्थो विभीषणः। उवाच राघवं वाक्यं ब्रह्मदत्तवरो ह्यसौ॥**' (अ० रा० १०। ५०-५१) अर्थात् जिन-जिन बाणोंने महाबलवान् पराक्रमी दैत्योंका वध किया वे रावणवधमें निष्फल हो रहे हैं, इस प्रकार चिन्तित देख समीपस्थ विभीषण बोले कि ब्रह्माजीने इसे वरदान दिया है।

इन शब्दोंसे यह भाव ध्वनित होता है कि रघुनाथजीने उनकी ओर दृष्टि की तब उन्होंने यह कहा था।

उमा कालु मरु जाकी ईछा। सो प्रभु जन कर* प्रीति परीछा॥ ३॥
सुनु सर्बज्ञ चराचरनायक। प्रनतपाल सुर मुनि सुखदायक॥ ४॥

अर्थ—हे उमा! जिनकी इच्छामात्रसे काल भी मर जाता है वही प्रभु अपने जनकी प्रीतिकी परीक्षा ले रहे हैं॥ ३॥ विभीषणजी बोले—हे सर्वज्ञ! हे चराचरके स्वामी! हे शरणागतके पालन करनेवाले! हे देवता और मुनियोंके सुख देनेवाले! सुनिये॥ ४॥

नोट—१ *'कर प्रीति परीछा'* इति। (क)—इसका प्रेम हमपर दृढ़ है या नहीं। इसका प्रेम हममें है या भाईमें, प्रेम दृढ़ होगा तो माधुर्यमें न भूलेगा, न दृढ़ होगा तो घबड़ा जायगा। भाईपर प्रेम होगा तो नाभिकुण्डमें अमृतका होना न बतायेगा, हममें प्रेम होगा तो तुरंत बता देगा। मा० मयंककार लिखते हैं कि विभीषणकी ओर देखा कि—'मैं तुम्हारे ही लिये यह परिश्रम कर रहा हूँ, अतएव तुम उसकी मृत्युका उपाय बताओ। अथवा, रावणकी प्रचण्डताका कारण पूछा। अथवा, जनाया कि इस परिश्रमकी लाज तुम्हारे हाथ है। इत्यादि।'

वि० त्रि०—*'उमा कालु मरु·········परीछा'*। विभीषणजी सरकारके सचिव हैं। यथा—*'कह लंकेस मंत्र लगि काना।'* रावण भी कहता है कि *'सचिव सभीत बिभीषन जाके। बिजय बिभूति कहाँ जग ताके॥'* समयपर बिना पूछे भी मन्त्र देते हैं, यथा—*'इहाँ बिभीषनु मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥'* सो विभीषण देख रहे हैं कि कितनी बार सिर काटा गया, रावण मरता नहीं है। सुर, सिद्ध, मुनि प्रभुका

* कर जन—(का०)।

क्लेश देखकर व्याकुल हो गये। यथा—*'सुर सिद्ध मुनि ब्याकुल देखि कलेस।'* पर विभीषण जानते हुए, कि सिर काटनेसे यह नहीं मरेगा, कुछ बोलते नहीं, तो क्या इसके आत्मसमर्पणमें कुछ कमी है, भाईका कुछ प्रेम हृदयमें छिपा तो नहीं है; अतः उसकी परीक्षाके लिये श्रमनाट्य करते हुए उसकी ओर देखा। विभीषणने तुरंत उपाय बता दिया। रावण मारा गया। परंतु सरकारकी शङ्कामें तथ्य था। विभीषणके हृदयमें रावणके प्रति प्रेम इतना छिपा था कि वह स्वयं नहीं जानता था (यथा—*'बन्धु दसा देखत दुख कीन्हा'*) मेघनाद-कुम्भकर्णकी दशा देखकर दुःख नहीं किया, फिर भी विभीषण प्रीति-परीक्षामें उत्तीर्ण हो गये। पूर्णाङ्क १०० में ९० पानेवाला छात्र उत्तम श्रेणीमें उत्तीर्ण माना जाता है।

नोट—२ (क) *'सर्वज्ञ'* का भाव कि आप इसका मरणकाल और इसके हृदयमें अमृतका होना सब कुछ जानते हैं तो भी मुझसे पूछते हैं। तीनों कालका ज्ञान आपको है। (ख)—*'चराचरनायक'।* भाव कि चर-अचर (जड़-चेतन) सभीके आप नियन्ता हैं, सबकी व्यवस्था आपके ही हाथमें है, आप सब लोकोंके स्वामी हैं, यथा—*'ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूछेहु मोहि मनुज की नाईं॥', 'सुनहु राम तुम्ह कहँ मुनि कहहीं। राम चराचर नायक अहहीं॥'*

(ग) *'प्रनतपाल'।* गौ, सुर, विप्र, सिद्ध, मुनि आदि सब आपकी शरण जा चुके हैं, यथा—*'मन बच क्रम बानी छाँड़ि सयानी सरन सकल सुर जूथा।', 'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा।'* (१। १८६) इत्यादि। और आप सबको अभय दे चुके हैं, यथा—*'जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा………', 'निसिचरहीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।'* (३। ९); अतएव अब इसे मारिये। (घ) आप *'सुर मुनि सुख दायक'* हैं। सुरमुनिको दुष्टके वधसे ही सुख होगा। यथा—*'जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥'* (आ० २१। १), *'पंचबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुरमुनि सुखदायक॥'*; अतएव उसे मारिये। (पं०) इस समय सुरमुनि सब दुःखित हैं, यथा—*'प्रभु क्रीड़त मुनि सिद्ध सुर ब्याकुल देखि कलेस।'* (१००) अतः अब उसे मारकर उनका क्लेश दूरकर सबको सुखी कीजिये।

नाभि कुंड पियूष* बस याके। नाथ जिअत रावन बल ताके॥ ५॥

सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥ ६॥

अर्थ—इसके नाभिकुण्डमें अमृतका निवास है। हे नाथ! रावण इसके ही बलपर जीता है॥ ५॥ विभीषणके वचन सुनकर कृपालु रघुनाथजीने प्रसन्न हो हाथमें कठिन भीषण बाण लिये॥ ६॥

☞ समानार्थी श्लोक—**'नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्॥ तच्छोषयानलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्। विभीषणवचः श्रुत्वा रामः शीघ्रपराक्रमः॥ पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः।'** (अ० रा० ११। ५३—५५) अर्थात् इसके नाभिमें कुण्डलाकार अमृत स्थित है, उसे प्रथम पावकास्त्रसे सोख लीजिये तब उसकी मृत्यु होगी। विभीषणके वचन सुन प्रभुने वैसा ही किया।

टिप्पणी—१ *'एहिके हृदय बस जानकी'* यह त्रिजटाकी वाणी है जो हनुमन्नाटकसे मिलती है। यह बात श्रीसीताजीके बोध्यार्थ कही गयी। और, *'नाभि कुंड पियूष बस याके'* यह विभीषणवाक्य है जो अध्यात्मसे मिलता है। यह रामचन्द्रजीके प्रश्नका सहेतुक उत्तर विभीषणजीने दिया है। अतएव दोनों वाक्योंमें विरोध नहीं है। वा, कल्पभेदसे दोनों ही ठीक हो सकते हैं। जैसे नाटकमें परशुराम धनुषयज्ञमें आकर मिले और वाल्मी० रा० में विवाहके पीछे मार्गमें जनकपुरसे १२ कोसपर मिले।

मा० मु० टी०—अपने मनसे मारनेसे ऐश्वर्य प्रकट होगा, अतः विभीषणकी ओर देखा। श्रीजानकीजीका ध्यान छूटनेपर रामजीने विभीषणसे पूछा, इस तरह दोनों हेतुओंका यथार्थ निर्वाह हो गया।

मा० म०—*'हरषि'* और *'कृपाला'* से सूचित किया कि विभीषण रावणके मरणका हाल भली प्रकार जानता है। अतः उसके बताये उपायके सहारे मैं रावणको मार सबको सुखी करूँगा।

---

* 'नाभी कुण्ड सुधा।'—(का०)। 'नाभि कुण्ड पियूष।'—छ०, भा० दा०।

नोट—१ जिज्ञासा होती है कि अमृत रावणके नाभिमें कहाँसे हुआ और यदि रावणके शरीरमें अमृत था तो वह मरा क्यों? क्या अमृतका गुण जाता रहा? अमृतके प्रभावसे वानर जीवित हो गये, राहु अमर हो गया। मर्यादापुरुषोत्तमके समक्ष अमृतका गुण नष्ट होता समझमें नहीं आता? इस सम्बन्धमें वन्दनपाठकजी लिखते हैं कि अमृतके वाससे जनाया कि सञ्जीवनी-मुद्रा करता है। योगमें अमृत-प्रादुर्भाव एक मुद्रा है जिससे ब्रह्मरन्ध्रसे अमृत स्रवता है और नाड़ीद्वारा नाभिकुण्डमें आता है। किञ्चित्-किञ्चित् भरते-भरते बहुत कालमें नाभिकुण्ड भर पाता है। वे० भूषणजीने इसीको विस्तारसे यों लिखा है—

श्रीपातञ्जलि-ऋषि-प्रणीत योगदर्शन विभूतिपादके—'**नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम्॥, कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः॥, कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्॥, मूर्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम्॥, प्रतिभाद्वा सर्वम्॥**' (२९—३३) इन सूत्रोंपर भाष्य करते हुए कुछ विद्वानोंने प्रसंगवशात् यह भी बतलाया है कि योगकी सञ्जीवनी-मुद्राके द्वारा ब्रह्मरन्ध्रमें जिह्वासे अमृतस्राव होता है और वह अमृत '**कूर्मनाड्यां स्थैर्यम्॥**' (३१) इस सूत्रके वर्णित कुण्डलित सर्पकी तरह स्थित कूर्म (सुषुम्णा) नाड़ीसे प्रवाहित होकर नाभिकुण्डमें जाता है और जाकर शरीरको परिपुष्ट बनाया करता है। यदि युक्तिसे उस अमृतका अधिक सर्जन करके संग्रह किया जाय तो सैकड़ों वर्षोंमें नाभिकुण्डमें विशेषरूपसे संस्थित होकर मृत्युसे रक्षा किया करता है। वैद्यक शास्त्रके अनुसार—'**अयःपलं गुग्गुलुरत्नयोज्यः पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च। पलानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षे लिहन् यात्यमरत्वमेव॥**' (भावप्रकाश) (पाँच गुंजाका एक माशा, सोलह माशाका एक कर्ष और चार कर्षका एक पल) एक पल शुद्ध लौहचूर्ण, तीन पल गुग्गुल, पाँच पल व्योष (समभाग-शुंठि-मरीच-पिप्पली) और आठ पल त्रिफलाचूर्ण। सब ओषधियोंको एकमें मिलाकर उसमेंसे नित्य एक कर्ष सेवन करे तो सौ वर्षमें देवत्वकी प्राप्ति हो जाती है। अर्थात् जिह्वासे अमृतस्राव होने लगता है, जिसे योगकी सञ्जीवनी-मुद्राद्वारा कुण्डलित सर्पवत्—स्थित कूर्मनाड़ीके रास्ते नाभिकुण्डमें संगृहीत किया जा सकता है।

रावण महाविद्वान् परम तेजस्वी योगी तो था ही उपर्युक्त प्रकारसे औषध और योगके द्वारा अपनी नाभिमें अमृत संचित कर रखा था। स्मरण रहे कि उपर्युक्त क्रियाद्वारा संचित अमृत ही सुखाया जा सकता है। समुद्रमन्थनसे प्राप्त अमृत नहीं, क्योंकि वह नाभि या शरीरके किसी एक देशमें संचित नहीं होता अपितु पान करते मात्र ही सारे शरीरमें प्रविष्ट होकर अमर बना देता है।

पं०—'***कृपाला***' का भाव कि विभीषणपर (रावणवध करके राज्य देनेकी), सुर-मुनि आदिपर एवं रावणपर (उसको शापमुक्त करनेकी) कृपा करेंगे।

नोट—२ वाल्मी० में अगस्त्यजीके दिये हुए ब्रह्मास्त्रसे रावणवध हुआ। इस अस्त्रके वेगमें पवन, फलके अग्रभागमें अग्नि और सूर्य, सर्वाङ्गमें ब्रह्मा और भारीपनमें मेरु और मन्दराचलके अधिष्ठाता देवता वास करते थे—(वाल्मी० १०८। १—१३)। यह चमकते हुए सुवर्णके सुन्दर पंखोंसे भूषित तथा सब प्राणियोंके तेजसे इसका निर्माण हुआ था। इसकी करालताके विषयमें वाल्मीकिजी लिखते हैं कि वह काले नागके विषके समान चमकता था और मनुष्य, हाथी-घोड़ोंके समूहोंको तथा द्वारों, परिघों, पर्वतोंको भेदन करनेवाला था। नाना प्रकारके रुधिरोंसे युक्त तथा चर्बीके लगनेसे अति दारुण, वज्रसारसे भी पुष्ट, महानादयुक्त, नाना प्रकारके संग्रामोंके लिये दारुण, देखनेवालोंको भयप्रद, विषधर श्वास छोड़ते हुए सर्पके समान भयङ्कर, युद्धमें नित्य ही कंक, गृद्ध्र, शृगालादिको भोजन देनेवाला, यमराजके समान सबको भय पहुँचानेवाला और गरुड़के चित्र-विचित्र पंखोंसे युक्त था। रामचन्द्रजीने वेदविधिसे उसे मन्त्रित करके धनुषपर चढ़ाया और रावणके मर्मस्थल हृदयको वेधनेके लिये छोड़ा।

प० प० प्र०—'***नाभि कुंड पियूष***………' इति। आध्यात्मिक अर्थ—'नाभि'=परा वाणी और वृत्तियोंका उद्गम स्थान। दशशीश=दशेन्द्रियोंकी वृत्तियाँ। बीस भुज=दस प्राण और दस इन्द्रियोंके कर्म। जबतक वृत्तियोंके उद्गमका कारण नष्ट न होगा, तबतक वृत्तिरूपी सिर बढ़ते ही रहेंगे, नित्य नवीन उत्पन्न होते रहेंगे। (विषयाकार) वृत्तिका कारण वासना है। वासनाका मूल द्वैत-भाव है और द्वैत-भावका मूल अज्ञान है। जबतक अज्ञान गुप्तरूपमें भी रहता है तबतक वृत्तिको काटनेसे भी अहंकाररूपी रावण न मरेगा। अज्ञानका पूर्ण नाश ज्ञान-विज्ञानसे ही

होगा। ज्ञान अग्नि है—'**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते**' (गीता)। '**तच्छोषयाऽनलास्त्रेण तस्य मृत्युस्ततो भवेत्।**' ऐसा विभीषणजीने अ० रा० में कहा भी है। '*ज्ञान अनल जिमि कसे कनकसे।*' मानसमें भी कहा ही है।

वाल्मी० के अनुसार ब्रह्मास्त्रका प्रयोग किया है। यह भी आध्यात्मिक दृष्ट्या ठीक ही है। ब्रह्म=ब्रह्माकार वृत्ति=*सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा।* यही अस्त्र है। यह अस्त्र भी पावकमय ही होता है।

योगदृष्टिसे सारांशरूपमें अर्थ इस प्रकार है—'**नाभिदेशेऽमृतं तस्य कुण्डलाकारसंस्थितम्।**' (अ० रा०) यह कुण्डलाकारस्थित अमृत कुण्डलिनीशक्ति है जो कुण्डलाकार नाड़ीमें स्थित है। पर वह सुप्त (गुप्त-सी) है। जब प्राणापानके संयोगजनित अग्निसे यह जाग उठेगी और अपना निवासस्थान छोड़कर बाहर निकलेगी तब वह विषयाकार वृत्तियोंको खा जायगी और सहस्रारचक्रमें ब्रह्मरन्ध्रमें मन-प्राणोंसहित जीवको ले जायगी और उन्मनी प्राप्त कराके जीवशिवैक्य स्थापितकर अहंकारका विनाश कर देगी। विशेष विस्तारके लिये योगशिखोपनिषद् तथा श्रीमदाचार्यकृत 'सौन्दर्य लहरी' के प्रथम ४१ श्लोक देखिये।

असुभ होन लागे तब नाना। रोवहिं खर सृकाल बहु* स्वाना॥७॥

बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥८॥

शब्दार्थ—**सृकाल** (शृगाल)=गीदड़। **केतु**=पुच्छल तारा। इस तारके साथ एक प्रकाशकी पूँछ दिखायी देती है। ये अनेक माने जाते हैं।

अर्थ—तब अनेक अपशकुन होने लगे। बहुत-से गदहे, गीदड़ और कुत्ते बहुत जोर-जोर रोने लगे॥७॥ जगत्के दुःखके हेतु पक्षी बोल रहे हैं। जहाँ-तहाँ केतु आकाशमें प्रकट हो गये हैं॥८॥

नोट—१ '*रोवहिं खर*............' इति। खर, शृगाल और श्वानको एक साथ कहने और एक ही क्रिया देनेका भाव कि ये सब एक साथ मिलकर रो रहे हैं। यथा—'**विनेदुरशिवा गृध्रा वायसैरभिमिश्रिताः**'—(वाल्मी० ९५। ४७)। इनका एक साथ रोना परम भयावन है मानो कालदूत उल्लू बोलते हैं। पंजाबीजी लिखते हैं कि शृगालका दिनमें, गदहोंका रात्रिमें और कुत्तोंका दिन-रात दोनोंमें रोना भयदायक है। कौओंका रातमें और उलूकादिका दिनमें बोलना दुःखदायक है।

नोट—२ '*बोलहिं खग*..........' इति। (क) यथा—'*रटहिं कुभाँति कुखेत करारा*', '**द्विजाश्च नेदुर्घोराश्च**' '*गोमायु गीध कराल खररव स्वान बोलहिं अति घने। जनु कालदूत ऊलूक बोलहिं बचन परम भयावने।*' (७७ छंद) पुनश्च '**कुर्वत्यः कलहं घोरं सारिकास्तद्रथं प्रति। निपेतुः शतशस्तत्र दारुणं दारुणा रुताः॥**' (वाल्मी० १०६। ३१) अर्थात् जोरसे लड़ती हुई सैकड़ों मैनाओंके झुण्ड दारुण शब्द करते हुए रावणके रथपर गिरते हैं। पुनः भाव कि गीदड़, कुत्ते और गर्दभ पृथ्वीपर रोते हैं और गृद्ध्र नभपर रावणके रथपर उड़ते हुए शब्द करते हैं, इस तरह पृथ्वी और आकाश दोनोंमें अमङ्गल शब्द हो रहा है। (ख) '*जग आरति हेतू*' से जनाया कि पक्षी अमङ्गल शब्द कर रहे हैं। यथा—'**गृध्रैरनुगताश्चास्य वमन्तो ज्वलनं मुखैः। प्रणेदुर्मुखमीक्षन्त्यः संरब्धमशिवं शिवाः॥**' (वाल्मी० १०६। २७) अर्थात् पीछे-पीछे गृध्र और आगे-आगे शृगाल रावणका मुख देखते हुए ज्वालाएँ उगलते हुए अमङ्गल शब्द कर रहे हैं। करुणासिन्धुजी लिखते हैं कि '*जग आरति हेतू*' का भाव यह है कि वे अपनी बोलीसे जनाते हैं कि जगत्के प्राणी रावणसे पीड़ित हैं (इनका दुःख शीघ्र हरण कीजिये)। अथवा '*जग आरति हेतू*' 'खग' का विशेषण है अर्थात् जो जगत्में दुःखके कारणस्वरूप हैं—(रा० प्र०)।

नोट—३ '*प्रगट भए नभ*.......' इति। केतुका उदय जहाँ होता है वहाँ उत्पात, उपद्रव, घोर घटनाएँ, राजाकी मृत्यु, प्रजाको क्लेश इत्यादि अरिष्ट होते हैं। यथा—'*उदय केतु सम हित सबहीके*', '*दुष्ट उदय जग आरति हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू॥*' (उ० १२१) '*जग आरति हेतू*' दीपदेहरी है। केतुका उदय 'जग आरतिहेतु' है और पक्षियोंका शब्द भी।

दस दिसि दाह होन अति लागा। भएउ परब बिनु रबि उपरागा॥९॥

* बहु सृकाल खर—(का०)।

मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्त्रवहिं नयन मग बारी॥ १०॥

शब्दार्थ—उपराग=सूर्य वा चन्द्रग्रहण। परब (पर्वत)=पुण्यकाल। **'पर्व क्लीबं महे ग्रन्थौ प्रस्तावे लक्षणान्तरे। दर्शप्रतिपदोः संधौ विषुवत्प्रभृतिष्वपि॥'** (इति मेदिनी), **'पर्व स्यादुत्सवे ग्रन्थौ प्रस्तावे विषुवादिषु। दर्शप्रतिपदोः संधौ स्यात्तिभेः पञ्चकान्तरे॥'** (इति धरणिः)। (प० प० प्र०) यहाँ 'रवि' के सम्बन्ध अमावस्यासे तात्पर्य है। अमावस्या और प्रतिपदा एवं पूर्णिमा और प्रतिपद्की सन्धिमें ही ग्रहण पर्व होता है।

अर्थ—दसों दिशाओंमें अत्यन्त दाह होने लगा। बिना पर्वके (परिवाकी संधिबिना) ही सूर्यग्रहण होने लगे॥ ९॥ मन्दोदरीका हृदय बहुत काँप रहा है। प्रतिमाएँ नेत्रमार्गसे जल गिरा रही हैं अर्थात् रो रही हैं॥ १०॥

नोट—१ (क) *'दस दिसि दाह………'*, यह चिह्न छत्रभंगका सूचक है, यथा—*'हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी॥'* (२। १५९। १) सब ओर ऐसा ताप हो रहा है जैसा अग्नि लगी होनेसे होता है। वाल्मीकिजी लिखते हैं कि गुलदुपहरीके फूलके वा लालचन्दनके समान परम दारुण लाल रंगकी संध्यासे लंका आच्छादित हो गयी जिससे वहाँकी भूमि दिनमें भी जलती हुई-सी दिखायी देने लगी। यथा—**'सन्ध्यया चावृता लंका जपापुष्पनिकाशया। दृश्यते सम्प्रदीप्तेव दिवसेऽपि वसुन्धरा॥'** (वाल्मी० १०६। २३), **'रक्तचन्दनसंकाशा सन्ध्या परमदारुणा।'** (वाल्मी० २३। ६) वही भाव यहाँ *'दस दिसि दाह'* से सूचित किया है। (ख) *'अति लागा'* से जनाया कि कई दिनसे दाह होता था पर आज अत्यन्त बढ़ गया है।

पं०—'दसों दिशामें दाह' का भाव कि प्रातः-सन्ध्यामें पूर्व दिशा और सायं-सन्ध्यामें पश्चिम दिशा रक्तवर्ण रहती है।

नोट—२ *'भएउ परब बिनु………'* इति। भाव यह कि चैत्र कृ० १४ को रावणका वध हुआ। उसी दिन सूर्यग्रहण हो गया था, यह अघटित घटना हुई। इसीसे उसे उत्पात और अपशकुन कहा।

नोट—३ *'कंपति भारी'*—अपशकुन देखकर। अथवा यह स्वयं अपशकुन है। (ख) *'भारी'* का भाव कि जब सेना उतरकर आयी थी, तभी मन्दोदरी काँप उठी थी, उसको अपने सोहागकी चिन्ता हुई थी, यथा—*'अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात। नाथ भजहु रघुबीर पद अचल होइ अहिवात॥'* (दोहा ७) फिर राम-रावण-युद्धके आरम्भमें मातलिके घायल होनेपर जब प्रभु क्रुद्ध हुए उस समय मन्दोदरीके हृदयमें पुनः कम्प हुआ था, यथा—*'मंदोदरी उर कंप कंपति कमठ भू भूधर त्रसे।'* (९०) और अब तो रावणके मृत्युसूचक सब अपशकुन उपस्थित हैं, मृत्यु होनेको ही है, अतः अब *'उर कंपति भारी'*। पुनः, पहले जो उत्पात हुए (समुद्रादिका त्रसित होना) वह ('मनुजाद सब मारुत ग्रसेको छोड़ अन्य) सब मन्दोदरीने देखे नहीं थे, दिव्यदृष्टि देवता ही उसे जान पाये। इससे मन्दोदरीके हृदयमें तब कम्पमात्र था और अब सब उत्पात उसके दृष्टिगोचर हैं। अतः *'उर कंपति भारी'*।

पुनः प्र० स्वामीजी भी ठीक ही लिखते हैं कि 'उत्पातों और अपशकुनोंको देखनेसे मन्दोदरीका हृदय काँपने लगा' ऐसा समझनेकी आवश्यकता नहीं है। अत्यन्त दूरस्थित प्रेमी व्यक्तिपर जब कोई महान् संकट आ पड़ता है अथवा उसकी मृत्यु समीप आ जाती या हो जाती है तब सैकड़ों कोसोंपर स्थित दूसरे प्रेमी व्यक्तिके हृदयमें दृष्ट या श्रुत कारणके बिना भी कम्प होता है। यह अनेकोंकी अनुभूति है।

नोट—३ *'प्रतिमा स्त्रवहिं………'* यथा—'रुदन्ति देवलिङ्गानि स्विद्यन्ति प्रचलन्ति च'—(अ० रा० ५। २९; माल्यवंतवाक्य)।

छंद—प्रतिमा रुदहिं* पबिपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कच रज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ† सुर बिकल बोलहिं जय जए।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए॥

* स्त्रवहि † सुर मुनि।—(का०)।

अर्थ—प्रतिमाएँ रोती हैं, आकाशसे बहुत वज्रपात होते हैं, अत्यन्त प्रचण्ड वायु चलने लगी, पृथ्वी हिलती है, बादल रुधिर, बाल और रज बरस रहे हैं। इत्यादि, अत्यन्त अमङ्गल हो रहे हैं, उनको कौन कह सकता है? (अर्थात् इसीसे मैं इतनेहीसे बस करता हूँ।) असंख्यों उत्पात देखकर आकाशमें देवता व्याकुल होकर 'जय जय' बोल रहे हैं (भाव कि व्याकुल हैं फिर भी स्वार्थ सधते देख प्रसन्न हो रहे हैं कि अब अवश्य शत्रुवध होनेको है)। देवताओंको भयभीत जानकर कृपालु रघुनाथजी धनुषपर बाण सन्धान करने लगे।

नोट—१ (क) *'पबिपात नभ'* प्रथम चरणमें कहकर चौथे चरणमें *'बरषहिं बलाहक'* कहा। दोनोंको पृथक् करनेका भाव कि बिना बादलके वज्रपात होता है। यथा—'**निपेतुरिन्द्राशनयः सैन्ये चास्य समन्ततः। दुर्विषह्यस्वरा घोरा विना जलधरस्वनम्।**' (वाल्मी० १०६। २९) अर्थात् रावणकी सेनामें चारों ओर भयंकर और असह्य वज्रपात होने लगे और बिना बादलके ही आकाशसे बादलके गरजनेका शब्द सुन पड़ने लगा (च० सं०)। (ख) *'अति बात बह'।* भाव कि वायुमण्डल बाँधकर प्रचण्ड वेगसे वज्रपातका-सा शब्द करती हुई प्रतिकूल चल रही है। यथा—'**प्रतिलोम ववौ वायुर्निर्घातसमनिःस्वनः**'—(वाल्मी० ५१। २४; धूम्राक्षयुद्धके समय) अर्थात् वज्रके समान शब्द करता हुआ पवन सम्मुखसे बहने लगा। पुनः, यथा—'**वाता मण्डलिनस्तीव्रा व्यपसव्यं प्रचक्रमुः।**' (वाल्मी० १०६। २१) अर्थात् मण्डलाकार बवंडरके आकारकी वायु बायीं और चक्कर काटकर चलने लगी। यह वायु रावणके प्रतिकूल चल रही है जिससे उसके नेत्रोंमें धूलि भरनेसे उसके नेत्र बंद हो जाते हैं, यथा—'**प्रतिकूलं ववौ वायू रणे पांसून्समुत्किरन्। तस्य राक्षसराजस्य कुर्वन् दृष्टिविलोपनम्।**' (वाल्मी० १०६। २८) (ग) *'डोलति मही'* भाव कि जहाँ रावण है वहाँकी भूमि काँपने लगी, यथा—'**रावणश्च यतस्तत्र प्रचचाल वसुन्धरा**'—(वाल्मी० १०६। २५)। (घ) *'बरषहिं बलाहक रुधिर'* इति। रुधिर स्वयं ही भयंकर है, उसपर भी गर्म-गर्म बरस रहा है। यथा—'**शोणितेनाभिवर्षन्ति लङ्कामुष्णेन सर्वदा।**' (अ० रा० ५। २९; माल्यवंतवाक्य)। एवं '**ववर्ष रुधिरं देवो रावणस्य रथोपरि**'—(वाल्मी० १०६। २१)। (घ) *'असुभ अति'*। अर्थात् अमित और अत्यन्त अमङ्गल अशुभ हैं, राज्य-नष्ट-समय या मृत्युकालमें ही ऐसे अशुभ होते हैं। यथा—'**उल्कापाते च दिग्दाहे भूकम्पे केतुदर्शने। त्रयोदशदिने पक्षे क्षत्रभंगो न संशयः॥**' (वाराहीसंहिता) '**समुत्पेतुरथोत्पाता दारुणा रोमहर्षणाः। रावणस्य विनाशाय राघवस्य जयाय च॥**' (वाल्मी० १०६। १९) अर्थात् उल्कापात, दिशाओंका दाह, भूकम्प और केतुदर्शनसे तेरह दिनसे लेकर पक्षभरमें राज्य नष्ट-भ्रष्ट होता है इसमें संशय नहीं। रावणके नाश और रामजीके जयके लिये भी दारुण उत्पात होने लगे।

नोट—२ (क) *'उत्पात अमित·······'* इति। भाव कि इतने ही नहीं, सभी ओर और सभी मृत्युसूचक उत्पात हो रहे हैं। वाल्मी० १०६ में १३ श्लोकोंमें उत्पातोंका वर्णन कर फिर भी उन्होंने यही लिखा है कि रावणके विनाशके लिये इस तरहके बहुत-से दारुण उत्पात हुए जिनको देख देखनेवालोंको भय होता था। यथा—'**एवंप्रकारा बहवः समुत्पाता भयावहाः। रावणस्य विनाशाय दारुणाः संप्रजज्ञिरे॥**' (३३) (ख) *'सुर बिकल बोलहिं जय जए'*। सुरमुनि निज पक्षकी रक्षा एवं भलाईके लिये व्याकुल हैं, उनको चैन नहीं पड़ता। यथा—*'स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू।'* (२। २२०। २) अथवा, व्याकुलसे जनाया कि वाणी गद्गद है, मुँहसे वचन नहीं निकलता। फिर यह सोचकर कि प्रभुने रावण-वध-हेतु बाण लिया है और इसीसे ये उत्पात हो रहे हैं, वे जय-जयकार कर रहे हैं।' (रा० प्र०) पुनः, जो अमंगल हो रहे हैं वे रावणकी ओर हो रहे हैं और श्रीरामचन्द्रजीके सामने सब कल्याणकारक सौम्य निमित्त दिखायी दे रहे हैं, जो रघुनाथजीकी जय बता रहे थे। इन्हें देख श्रीरामजी हर्षित हुए। '**रामस्यापि निमित्तानि सौम्यानि च शिवानि च। बभूवुर्जयशंसीनि प्रादुर्भूतानि सर्वशः॥ निमित्तानि च सौम्यानि राघवस्य जयाय च। दृष्ट्वा परमसंहृष्टो हतं मेने च रावणम्॥**' (वाल्मी० १०६। ३४-३५) निज जयसूचक इस प्रकारके शुभ शकुनोंको देख श्रीरामजी अत्यन्त हर्षित हुए और रावणको मरा हुआ समझा। अतएव देवादिका व्याकुल होना इससे है कि यद्यपि लंकामें घोर उत्पात देख पड़ते हैं तथापि रावण मरता नहीं, न जाने मरे या न मरे। और श्रीरामजीकी ओर मङ्गलशकुन होते देख हर्ष होनेसे

जय-जयकार करते हैं। पंजाबीजीका मत है कि 'रावणका अद्भुत पराक्रम देख मरण निश्चय नहीं होता, न जानें कौन जीते यह संदेह है, अतः व्याकुल हुए और *'जय जए'* चालाकीके शब्द हैं, इसमें नाम किसीका नहीं है यद्यपि जीसे तो रघुनाथजीकी ही जय चाहते हैं पर अपनी बचत भी रखे हैं कि यदि रावणकी जय हुई तो हम कह देंगे कि तुम्हारी ही तो जय बोलते थे।'

दो०—खैंचि सरासन श्रवन लगि* छाँड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस॥१०१॥

अर्थ—कानोंतक धनुषको खींचकर श्रीरघुनाथजीने इकतीस बाण छोड़े। उनके बाण ऐसे चले मानो कालसर्प चल रहे हैं॥ १०१॥

☞ *'खैंचि सरासन श्रवन लगि'* इति। ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध और कबन्धादिके मारनेमें शरासन तानना नहीं कहा गया। बालिवधमें केवल तानना कहा है; यथा—*'मारा बालि राम तब हृदय माँझ सर तानि॥'* (४। ८) और खर-दूषण, कुम्भकर्ण और रावणयुद्धमें श्रवणपर्यन्त धनुषका तानना कहा गया है। क्रमसे प्रमाण यथा—

१ खरदूषण—*'तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छाँड़े निज तीर।.........॥'* (३। १९)
'तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु ब्याल॥'

२ कुम्भकर्ण—*'सभय देव करुनानिधि जानेउ। श्रवन प्रजंत सरासन तानेउ॥.........*
तब फिर कोपि तीब्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥' (७०। १, ४)

३ रावण—मातलिके मारे जानेपर कोप करके तब *'तानेउ चाप श्रवन लगि छाँड़े बिसिख कराल॥'* (९०) और फिर वधके समय यहाँ।

प० प० प्र०—कुम्भकर्ण-युद्धमें (प्रभुके बाण *'काल सर्प जनु चले सपच्छा॥'* (६७। ३) और रावणके साथ प्रथम युद्धमें *'चले बान सपच्छ जनु उरगा॥'*(९१। १) काल कुम्भकर्णके वशमें न था अतः वहाँ 'काल सर्प' कहा। रावणके घोड़े सर्पदंशसे मरने योग्य थे अतः उसके घोड़ों आदिके मारनेके लिये *'सपक्ष उरग समान'* बाण चलाये गये। पर काल रावणके वशमें था, फणीश रावणके वशमें न थे, अतः रावणका वध करनेके लिये *'काल फनीस'* समान बाणोंका चलाना कहा गया। कितनी सावधानी है!

पूर्ण बल लगाना होता है तब कानतक धनुष खींचा जाता है। ३१ बाण जोड़नेका कारण कवि † स्वयं आगे देते हैं—दस सिरोंके लिये १०, २० भुजाओंके लिये २० और एक हृदयवेधनके लिये।‡

पु० रा० कु०—फणीश अकेले ही समर्थ हैं और यहाँ तो ३१ फणीश हैं तब प्राण कैसे बच सकते हैं। 'कालफणीश' का भाव कि ये प्राण हरण करने जा रहे हैं, काल प्राण हरता ही है। यहाँ उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा है।

सायक एक नाभि सर सोषा। अपर लगे भुज सिर करि रोषा॥ १॥
लै सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुंड महि नाचा॥ २॥

अर्थ—एक बाणने नाभिके अमृत कुण्डको सोख लिया। अन्य ३० बाण कोप करके उसके सिर और भुजाओंमें जा लगे॥ १॥ बाण सिरों और भुजाओंको काटकर ले चले। सिरभुजरहित धड़ पृथ्वीपर नाचने लगा॥ २॥

---

* आकरषेउ धनु कान लगि—(क०)।

† रा० प्र०—'कानतक धनुष खींचनेका भाव कि रावण श्रुतिविरोधी है। और राम श्रुतिपालक हैं। अतः रावणवधहेतु श्रुति (कान) पर्यन्त खींचा। ३१ तीरका भाव कि २४ और ३० से परे।'—[पर ये भाव वाग्विलासके हैं।]

‡ 'पावकास्त्रेण संयोज्य नाभिं विव्याध रक्षसः।' (११। ५५), 'पावकास्त्रेण तच्छीघ्रं शोषयामास राघवः। ततः शिरांसि बाहूंश्च चिच्छेद रावणस्य सः॥' (२८०)